प्रेमचंद



मानसरोवर भाग–3

[हिन्दीकोश]

Tittle: Manasarovar Bhag−3

Author: Premchand

Release Date: 31 May 2020

Edition: 2.0

Language: Hindi

While every precaution has been taken in the preparation of this book, the publisher assumes no responsibility for errors or omissions, or for damages resulting from the use of the information contained herein.

Suggestions and corrections are welcome.

Visit https://www.hindikosh.in for more...

मानसरोवर भाग 3

विश्वास

उन दिनो मिस जोशी बम्बई सभ्य–समाज की राधिका थी। थी तो वह एक छोटी सी कन्या पाठशाला की अध्यापिका पर उसका ठाट–बाट, मान–सम्मान बड़ी–बड़ी धन–रानियों को भी लज्जित करता था। वह एक बड़े महल में रहती थी, जो किसी जमाने में सितारा के महाराज का निवास–स्थान था। वहाँ सारे दिन नगर के रईसों, राजों, राज–कर्मचारियों का ताँता लगा रहता था। वह सारे प्रांत के धन और कीर्ति के उपासकों की देवी थी। अगर किसी को खिताब का खब्त था तो वह मिस जोशी की खुशामद करता था। किसी को अपने या संबंधी के लिए कोई अच्छा ओहदा दिलाने की धुन थी तो वह मिस जोशी की आराधना करता था। सरकारी इमारतों के ठीके; नमक, शराब, अफीम आदि सरकारी चीजों के ठीके; लोहे–लकड़ी, कल–पुरजे आदि के ठीके सब मिस जोशी ही के हाथों में थे। जो कुछ करती थी वही करती थी, जो कुछ होता था उसी के हाथों होता था। जिस वक्त वह अपनी अरबी घोड़ों की फिटन पर सैर करने निकलती तो रईसों की सवारियाँ आप ही आप रास्ते से हट जाती थी, बड़े

दुकानदार खड़े हो-हो कर सलाम करने लगते थे। वह रूपवती थी, लेकिन नगर में उससे बढ़कर रूपवती रमणियाँ भी थी। वह सुशिक्षिता थीं, वक्चतुर थी, गाने में निपुण, हँसती तो अनोखी छवि से, बोलती तो निराली घटा से, ताकती तो बाँकी चितवन से; लेकिन इन गुणों में उसका एकाधिपत्य न था। उसकी प्रतिष्ठा, शक्ति और कीर्ति का कुछ और ही रहस्य था। सारा नगर ही नही ; सारे प्रान्त का बच्चा जानता था कि बम्बई के गवर्नर मिस्टर जौहरी मिस जोशी के बिना दामों के गुलाम है। मिस जोशी की आँखों का इशारा उनके लिए नादिरशाही हुक्म है। वह थिएटरों में दावतों में, जलसों में मिस जोशी के साथ साये की भाँति रहते है। और कभी-कभी उनकी मोटर रात के सन्नाटे में मिस जोशी के मकान से निकलती हुई लोगो को दिखाई देती है। इस प्रेम में वासना की मात्रा अधिक है या भक्ति की, यह कोई नही जानता। लेकिन मिस्टर जौहरी विवाहित है और मिस जोशी विधवा, इसलिए जो लोग उनके प्रेम को कलुषित कहते है, वे उन पर कोई अत्याचार नहीं करते।

बम्बई की व्यवस्थापिका-सभा ने अनाज पर कर लगा दिया था और जनता की ओर से उसका विरोध करने के लिए एक विराट सभा हो रही थी। सभी नगरों से प्रजा के प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित होने के लिए हजारों की संख्या में आये थे। मिस जोशी

के विशाल भवन के सामने, चौड़े मैदान में हरी-भरी घास पर बम्बई की जनता अपनी फरियाद सुनाने के लिए जमा थी। अभी तक सभापति न आये थे, इसलिए लोग बैठे गप-शप कर रहे थे। कोई कर्मचारी पर आक्षेप करता था, कोई देश की स्थिति पर, कोई अपनी दीनता पर — अगर हम लोगो में अकड़ने का जरा भी सामर्थ्य होता तो मजाल थी कि यह कर लगा दिया जाता, अधिकारियों का घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। हमारा जरुरत से ज्यादा सीधापन हमें अधिकारियों के हाथों का खिलौना बनाए हुए है। वे जानते हैं कि इन्हें जितना दबाते जाओ, उतना दबते जायेंगे, सिर नहीं उठा सकते। सरकार ने भी उपद्रव की आशंका से सशस्त्र पुलिस बुला ली। उस मैदान के चारों कोनों पर सिपाहियों के दल डेरा डाले पड़े थे। उनके अफसर, घोड़ों पर सवार, हाथ में हंटर लिए, जनता के बीच में निश्शंक भाव से घोड़े दौड़ाते फिरते थे, मानों साफ मैदान है। मिस जोशी के ऊँचे बरामदे में नगर के सभी बड़े-बड़े रईस और राज्याधिकारी तमाशा देखने के लिए बैठे हुए थे। मिस जोशी मेहमानों का आदर-सत्कार कर रही थीं और मिस्टर जौहरी, आराम-कुर्सी पर लेटे, इस जन-समूह को घृणा और भय की दृष्टि से देख रहे थे।

सहसा सभापति महाशय आपटे एक किराये के तांगे पर आते दिखाई दिये। चारों तरफ हलचल मच गई, लोग उठ-उठकर

उनका स्वागत करने दौड़े और उन्हें ला कर मंच पर बैठा दिया। आपटे की अवस्था 30–35 वर्ष से अधिक न थी ; दुबले–पतले आदमी थे, मुख पर चिन्ता का गाढ़ा रंग–चढ़ा हुआ था। बाल भी पक चले थे, पर मुख पर सरल हास्य की रेखा झलक रही थी। वह एक सफेद मोटा कुरता पहने थे, न पांव में जूते थे, न सिर पर टोपी। इस अद्धर्नग्न, दुर्बल, निस्तेज प्राणी में न जाने कौल–सा जादू था कि समस्त जनता उसकी पूजा करती थी, उसके पैरों पर सिर रगड़ती थी। इस एक प्राणी के हाथों में इतनी शक्ति थी कि वह क्षणमात्र में सारी मिलों को बन्द करा सकता था, शहर का सारा कारोबार मिटा सकता था। अधिकारियों को उसके भय से नींद न आती थी, रात को सोते–सोते चौंक पड़ते थे। उससे ज्यादा भयंकर जन्तु अधिकारियों की दृष्टि में दूसरा नथा। ये प्रचंड शासन–शक्ति उस एक हड्डी के आदमी से थरथर काँपती थी, क्योंकि उस हड्डी में एक पवित्र, निष्कलंक, बलवान और दिव्य आत्मा का निवास था।

आपटे नें मंच पर खड़े होकर पहले जनता को शान्त चित्त रहने और अहिंसा–व्रत पालन करने का आदेश दिया। फिर देश में राजनीतिक स्थिति का वर्णन करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि सामने मिस जोशी के बरामदे की ओर गई तो उनका प्रजा–दुख पीड़ित हृदय तिलमिला उठा। यहाँ अगणित प्राणी अपनी विपत्ति की फरियाद सुनने के लिए जमा थे और वहाँ मेजों पर चाय और बिस्कुट, मेवे और फल, बर्फ और शराब की रेल–पेल थी। वे लोग इन अभागों को देख–देख हँसते और तालियाँ बजाते थे। जीवन में पहली बार आपटे की जबान काबू से बाहर हो गयी। मेघ की भांति गरज कर बोले —

'इधर तो हमारे भाई दाने–दाने को मुहताज हो रहे है, उधर अनाज पर कर लगाया जा रहा है, केवल इसलिए कि राजकर्मचारियों के हलवे–पूरी में कमी न हो। हम जो देश जो देश के राजा हैं, जो छाती फाड़ कर धरती से धन निकालते हैं, भूखों मरते हैं; और वे लोग, जिन्हें हमने अपने सुख और शाति की व्यवस्था करने के लिए रखा है, हमारे स्वामी बने हुए शराबों की बोतलें उड़ाते हैं। कितनी अनोखी बात है कि स्वामी भूखों मरें और सेवक शराबें उड़ायें, मेवे खायें और इटली और स्पेन की मिठाइयाँ चलें! यह किसका अपराध है? क्या सेवकों का? नहीं, कदापि नहीं, हमारा ही अपराध है कि हमने अपने सेवकों को

इतना अधिकार दे रखा है। आज हम उच्च स्वर से कह देना चाहते हैं कि हम यह क्रूर और कुटिल व्यवहार नहीं सह सकते। यह हमारे लिए असह्य है कि हम और हमारे बाल–बच्चे दानों को तरसें और कर्मचारी लोग, विलास में डूबें हुए हमारे करूण–क्रन्दन की जरा भी परवा न करते हुए विहार करें। यह असह्य है कि हमारे घरों में चूल्हे न जलें और कर्मचारी लोग थिएटरों में ऐश करें, नाच–रंग की महफिलें सजायें, दावतें उड़ायें, वेश्याओं पर कंचन की वर्षा करें। संसार में और ऐसा कौन ऐसा देश होगा, जहाँ प्रजा तो भूखी मरती हो और प्रधान कर्मचारी अपनी प्रेम–क्रीड़ा में मग्न हो, जहाँ स्त्रियाँ गलियों में ठोकरें खाती फिरती हों और अध्यापिकाओं का वेष धारण करने वाली वेश्याएँ आमोद–प्रमोद के नशे में चूर हों...

3

एकाएक सशस्त्र सिपाहियों के दल में हलचल पड़ गई। उनका अफसर हुक्म दे रहा था — सभा भंग कर दो, नेताओं को पकड़ लो, कोई न जाने पाए। यह विद्रोहात्मक व्याख्यान है।

मिस्टर जौहरी ने पुलिस के अफसर को इशारे पर बुलाकर कहा — और किसी को गिरफ्तार करने की जरुरत नहीं। आपटे ही को पकड़ो। वही हमारा शत्रु है।

पुलिस ने डंडे चलने शुरु किये। और कई सिपाहियों के साथ जाकर अफसर ने आपटे का गिरफ्तार कर लिया।

जनता ने त्यौरियाँ बदलीं। अपने प्यारे नेता को यों गिरफ्तार होते देख कर उनका धैर्य हाथ से जाता रहा।

लेकिन उसी वक्त आपटे की ललकार सुनाई दी — तुमने अहिंसा–व्रत लिया है ओर अगर किसी ने उस व्रत को तोड़ा तो उसका दोष मेरे सिर होगा। मैं तुमसे सविनय अनुरोध करता हूँ कि अपने–अपने घर जाओं। अधिकारियों ने वही किया जो हम समझते थे। इस सभा से हमारा जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया। हम यहाँ बलवा करने नहीं , केवल संसार की नैतिक सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जमा हुए थे, और हमारा उद्देश्य पूरा हो गया।

एक क्षण में सभा भंग हो गयी और आपटे पुलिस की हवालात में भेज दिए गये

4

मिस्टर जौहरी ने कहा — बच्चा बहुत दिनों के बाद पंजे में आए हैं, राज–द्रोह का मुकदमा चलाकर कम से कम 10 साल के लिए अंडमान भेजूँगा।

मिस जोशी — इससे क्या फायदा?

'क्यों? उसको अपने किए की सजा मिल जाएगी।'

'लेकिन सोचिए, हमें उसका कितना मूल्य देना पड़ेगा। अभी जिस बात को गिने–गिनाये लोग जानते हैं, वह सारे संसार में फैलेगी और हम कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगें। आप अखबारों में संवाददाताओं की जबान तो नहीं बन्द कर सकते।'

'कुछ भी हो मैं इसे जोल में सड़ाना चाहता हूँ। कुछ दिनों के लिए तो चैन की नींद नसीब होगी। बदनामी से डरना ही व्यर्थ है। हम प्रांत के सारे समाचार–पत्रों को अपने सदाचार का राग अलापने के लिए मोल ले सकते हैं। हम प्रत्येक लांछन को झूठ साबित कर सकते हैं, आपटे पर मिथ्या दोषारोपण का अपराध लगा सकते हैं।'

‘मैं इससे सहज उपाय बतला सकती हूँ। आप आपटे को मेरे हाथ में छोड़ दीजिए। मैं उससे मिलूँगी और उन यंत्रों से, जिनका प्रयोग करने में हमारी जाति सिद्धहस्त है, उसके आंतरिक भावों और विचारों की थाह लेकर आपके सामने रख दूँगी। मैं ऐसे प्रमाण खोज निकालना चाहती हूँ जिनके उत्तर में उसे मुँह खोलने का साहस न हो, और संसार की सहानुभूति उसके बदले हमारे साथ हो। चारों ओर से यही आवाज आये कि यह कपटी ओर धूर्त था और सरकार ने उसके साथ वही व्यवहार किया है जो होना चाहिए। मुझे विश्वास है कि वह षंडयंत्रकारियों को मुखिया है और मैं इसे सिद्ध कर देना चाहती हूँ। मैं उसे जनता की दृष्टि में देवता नहीं बनाना चाहतीं हूँ, उसको राक्षस के रुप में दिखाना चाहती हूँ।

‘ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जिस पर युवती अपनी मोहिनी न डाल सके।’

‘अगर तुम्हें विश्वास है कि तुम यह काम पूरा कर दिखाओगी, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो केवल उसे दंड देना चाहता हूँ।’

‘तो हुक्म दे दीजिए कि वह इसी वक्त छोड़ दिया जाय।’

‘जनता कहीं यह तो न समझेगी कि सरकार डर गयी?’

‘नहीं, मेरे ख्याल में तो जनता पर इस व्यवहार का बहुत अच्छा असर पड़ेगा। लोग समझेंगे कि सरकार ने जनमत का सम्मान किया है।’

‘लेकिन तुम्हें उसके घर जाते लोग देखेंगे तो मन में क्या कहेंगे?’

‘नकाब डालकर जाऊँगी, किसी को कानोंकान खबर न होगी।’

‘मुझे तो अब भी भय है कि वह तुम्हें संदेह की दृष्टि से देखेगा और तुम्हारे पंजे में न आयेगा, लेकिन तुम्हारी इच्छा है तो आजमा देखो।’

यह कहकर मिस्टर जौहरी ने मिस जोशी को प्रेममय नेत्रों से देखा, हाथ मिलाया और चले गए।

आकाश पर तारे निकले हुए थे, चैत की शीतल, सुखद वायु चल रही थी, सामने के चौड़े मैदान में सन्नाटा छाया हुआ था, लेकिन मिस जोशी को ऐसा मालूम हुआ मानों आपटे मंच पर खड़ा बोल रहा है। उसके शान्त, सौम्य, विषादमय स्वरुप उसकी आँखों में समाया हुआ था।

प्रातःकाल मिस जोशी अपने भवन से निकली, लेकिन उसके वस्त्र बहुत साधारण थे और आभूषण के नाम शरीर पर एक धागा भी नथा। अलंकार-विहीन हो कर उसकी छवि स्वच्छ, जल की भांति और भी निखर गयी। उसने सड़क पर आकर एक तांगा लिया और चली।

आपटे का मकान गरीबों के एक दूर के मुहल्ले में था। तांगेवाला मकान का पता जानता था। कोई दिक्कत न हुई। मिस जोशी जब मकान के द्वार पर पहुँची तो न जाने क्यों उसका दिल धड़क रहा था। उसने काँपते हुए हाथों से कुंडी खटखटायी। एक अधेड़ औरत निकलकर द्वार खोल दिये। मिस जोशी उस घर की सादगी देख दंग रह गयी। एक किनारे चारपाई पड़ी हुई थी, एक टूटी आलमारी में कुछ किताबें चुनी हुई थीं, फर्श पर खिलने का डेस्क था ओर एक रस्सी की अलगनी पर कपड़े लटक रहे थे। कमरे के दूसरे हिस्से में एक लोहे का चूल्हा था और खाने के बरतन पड़े हुए थे। एक लम्बा-तगड़ा आदमी, जो उसी अधेड़ औरत का पति था, बैठा एक टूटे हुए ताले की मरम्मत कर रहा था और एक पाँच-छ वर्ष का तेजस्वी बालक आपटे की पीठ पर चढ़ने के लिए उनके गले में हाथ डाल रहा था। आपटे इसी लोहार के साथ उसी घर में रहते थे। समाचार-पत्रों के लेख

लिखकर जो कुछ मिलता उसे दे देते और इस भांति गृह–प्रबंध की चिंताओं से छुट्टी पाकर जीवन व्यतीत करते थे।

मिस जोशी को देखकर आपटे जरा चौंके, फिर खड़े होकर उनका स्वागत किया ओर सोचने लगे कि कहाँ बैठाऊँ। अपनी दरिद्रता पर आज उन्हें जितनी लाज आयी उतनी और कभी न आयी थी। मिस जोशी उनका असमंजस देखकर चारपाई पर बैठ गयी और जरा रुखाई से बोली — मैं बिना बुलाये आपके यहाँ आने के लिए क्षमा माँगती हूँ किंतु काम ऐसा जरूरी था कि मेरे आये बिना पूरा न हो सकता। क्या मैं एक मिनट के लिए आपसे एकांत में मिल सकती हूँ।

आपटे ने जगन्नाथ की ओर देख कर कमरे से बाहर चले जाने का इशारा किया। उसकी स्त्री भी बाहर चली गयी। केवल बालक रह गया। वह मिस जोशी की ओर बार–बार उत्सुक आँखों से देखता था। मानों पूछ रहा हो कि तुम आपटे दादा की कौन हो?

मिस जोशी ने चारपाई से उतर कर जमीन पर बैठते हुए कहा — आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कि इस वक्त क्यों आयी हूँ।

आपटे ने झेंपते हुए कहा — आपकी कृपा के सिवा और क्या कारण हो सकता है?

मिस जोशी — नहीं, संसार इतना उदार नहीं हुआ कि आप जिसे गालियाँ दें, वह आपको धन्यवाद दे। आपको याद है कि कल आपने अपने व्याख्यान में मुझ पर क्या–क्या आक्षेप किए थे? मैं आपसे जोर देकर कहती हूँ कि वे आक्षेप करके आपने मुझपर घोर अत्याचार किया है। आप जैसे सहृदय, शीलवान, विद्वान आदमी से मुझे ऐसी आशा न थी। मैं अबला हूँ, मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है? क्या आपको उचित था कि एक अबला पर मिथ्यारोपण करें? अगर मैं पुरुष होती तो आपसे ड्यूल (duel) खेलने काक आग्रह करती। अबला हूँ, इसलिए आपकी सज्जनता को स्पर्श करना ही मेरे हाथ में है। आपने मुझ पर जो लांछन लगाये हैं, वे सर्वथा निर्मूल हैं।

आपटे ने दृढ़ता से कहा — अनुमान तो बाहरी प्रमाणों से ही किया जाता है।

मिस जोशी — बाहरी प्रमाणों से आप किसी के अन्तस्तल की बात नहीं जान सकते।

आपटे — जिसका भीतर–बाहर एक न हो, उसे देख कर भ्रम में पड़ जाना स्वाभाविक है।

मिस जोशी — हाँ, तो वह आपका भ्रम है और मैं चाहती हूँ कि आप उस कलंक को मिटा दे जो आपने मुझ पर लगाया है। आप इसके लिए प्रायश्चित करेंगे?

आपटे — अगर न करूँ तो मुझसे बड़ा दुरात्मा संसार में न होगा।

मिस जोशी — आप मुझपर विश्वास करते हैं।

आपटे — मैंने आज तक किसी रमणी पर विश्वास नहीं किया।

मिस जोशी — क्या आपको यह संदेह हो रहा है कि मैं आपके साथ कौशल कर रही हूँ?

आपटे ने मिस जोशी की ओर अपने सदय, सजल, सरल नेत्रों से देख कर कहा — बाई जी, मैं गँवार और अशिष्ट प्राणी हूँ। लेकिन नारी-जाति के लिए मेरे हृदय में जो आदर है, वह श्रद्धा से कम नहीं है, जो मुझे देवताओं पर हैं। मैंने अपनी माता का मुख नहीं देखा, यह भी नहीं जानता कि मेरा पिता कौन था; किंतु जिस देवी के दया-वृक्ष की छाया में मेरा पालन-पोषण हुआ उनकी प्रेम-मूर्ति आज तक मेरी आँखों के सामने है और नारी के प्रति मेरी भक्ति को सजीव रखे हुए है। मै उन शब्दों को मुँह से निकालने के लिए अत्यंत दुःखी और लज्जित हूँ जो आवेश में

निकल गये, और मै आज ही समाचार–पत्रों में खेद प्रकट करके आपसे क्षमा की प्रार्थना करूँगा।

मिस जोशी का अब तक अधिकांश स्वार्थी आदमियों ही से साबिका पड़ा था, जिनके चिकने–चुपड़े शब्दों में मतलब छुपा हुआ था। आपटे के सरल विश्वास पर उसका चित्त आनन्द से गद्‌गद हो गया। शायद वह गंगा में खड़ी होकर अपने अन्य मित्रों से यह कहती तो उसके फैशनेबुल मिलने वालों में से किसी को उस पर विश्वास न आता। सब मुँह के सामने तो ’हाँ–हाँ’ करते, पर बाहर निकलते ही उसका मजाक उड़ाना शुरु करते। उन कपटी मित्रों के सम्मुख यह आदमी था जिसके एक–एक शब्द में सच्चाई झलक रही थी, जिसके शब्द अन्तस्तल से निकलते हुए मालूम होते थे।

आपटे उसे चुप देखकर किसी और ही चिंता में पड़े हुए थे। उन्हें भय हो रहा था अब मैं चाहे कितना क्षमा मागूँ, मिस जोशी के सामने कितनी सफाइयाँ पेश करूँ, मेरे आक्षेपों का असर कभी न मिटेगा।

इस भाव ने अज्ञात रुप से उन्हें अपने विषय की गुप्त बातें कहने की प्रेरणा की जो उन्हें उसकी दृष्टि में लघु बना दें, जिससे वह भी उन्हें नीच समझने लगे, उसको संतोष हो जाए कि यह भी

कलुषित आत्मा है। बोले — मैं जन्म से अभागा हूँ। माता–पिता का तो मुँह ही देखना नसीब न हुआ, जिस दयाशील महिला ने मुझे आश्रय दिया था, वह भी मुझे 13 वर्ष की अवस्था में अनाथ छोड़कर परलोक सिधार गयी। उस समय मेरे सिर पर जो कुछ बीती उसे याद करके इतनी लज्जा आती हे कि किसी को मुँह न दिखाऊँ। मैंने धोबी का काम किया; मोची का काम किया; घोड़े की साईसी की; एक होटल में बरतन माँजता रहा; यहाँ तक कि कितनी ही बार क्षुधा से व्याकुल होकर भीख माँगी। मजदूरी करने को बुरा नहीं समझता, आज भी मजदूरी ही करता हूँ। भीख माँगनी भी किसी–किसी दशा में क्षम्य है, लेकिन मैंने उस अवस्था में ऐसे–ऐसे कर्म किए, जिन्हें कहते लज्जा आती है — चोरी की, विश्वासघात किया, यहाँ तक कि चोरी के अपराध में कैद की सजा भी पायी।

मिस जोशी ने सजल नयन होकर कहा — आज यह सब बातें मुझसे क्यों कर रहे हैं? मैं इनका उल्लेख करके आपको कितना बदनाम कर सकतीं हूँ, इसका आपको भय नहीं है?

आपटे ने हंसकर कहा — नहीं, आपसे मुझे भय नहीं है।

मिस जोशी — अगर मैं आपसे बदला लेना चाहूँ, तो?

आपटे — जब मैं अपने अपराध पर लज्जित होकर आपसे क्षमा माँग रहा हूँ, तो मेरा अपराध रहा ही कहाँ, जिसका आप मुझसे बदला लेंगी। इससे तो मुझे भय होता है कि आपने मुझे क्षमा नहीं किया। लेकिन यदि मैंने आपसे क्षमा न माँगी तो मुझसे तो बदला न ले सकतीं। बदला लेने वाले की आँखें यो सजल नहीं हो जाया करतीं। मैं आपको कपट करने के अयोग्य समझता हूँ। आप यदि कपट करना चाहतीं तो यहाँ कभी न आतीं।

मिस जोशी — मैं आपका भेद लेने ही के लिए आयी हूँ।

आपटे — तो शौक से लीजिए। मैं बतला चुका हूँ कि मैंने चोरी के अपराध में कैद की सजा पायी थी। नासिक के जेल में रखा गया था। मेरा शरीर दुर्बल था, जेल की कड़ी मेहनत न हो सकती थी और अधिकारी लोग मुझे कामचोर समझ कर बेंतों से मारते थे। आखिर एक दिन मैं रात को जेल से भाग खड़ा हुआ।

मिस जोशी — आप तो छिपे रुस्तम निकले!

आपटे — ऐसा भागा कि किसी को खबर न हुई। आज तक मेरे नाम वारंट जारी है और 500 रुपए का इनाम भी है।

मिस जोशी — तब तो मैं आपको जरूर पकड़ा दूँगी।

आपटे — तो फिर मैं आपको अपना असल नाम भी बता देता हूँ। मेरा नाम दामोदर मोदी है। यह नाम तो पुलिस से बचने के लिए रख छोड़ा है।

बालक अब तक तो चुपचाप बैठा हुआ था। मिस जोशी के मुँह से पकड़ाने की बात सुनकर वह सजग हो गया। उन्हें डाँटकर बोला — हमाले दादा को कौन पकड़ेगा?

मिस जोशी — सिपाही और कौन?

बालक — हम सिपाही को मालेंगे।

यह कहकर वह एक कोने से अपने खेलने वाला डंडा उठा लाया और आपटे के पास वीरोचित भाव से खड़ा हो गया, मानो सिपाहियों से उनकी रक्षा कर रहा है।

मिस जोशी — आपका रक्षक तो बड़ा बहादुर मालूम होता है।

आपटे — इसकी भी एक कथा है। साल-भर होता है, यह लड़का खो गया था। मुझे रास्ते में मिला। मैं पूछता-पूछता इसे यहाँ लाया। उसी दिन से इन लोगों से मेरा इतना प्रेम हो गया कि मैं इनके साथ रहने लगा।

मिस जोशी — आप अनुमान कर सकते हैं कि आपका वृतान्त सुनकर मैं आपको क्या समझ रही हूँ।

आपटे — वही, जो मैं वास्तव में हूँ....नीच, कमीना धूर्त....

मिस जोशी — नहीं, आप मुझ पर फिर अन्याय कर रहे है। पहला अन्याय तो क्षमा कर सकती हूँ, यह अन्याय क्षमा नहीं कर सकती। इतनी प्रतिकूल दशाओं में पड़कर भी जिसका हृदय इतना पवित्र, इतना निष्कपट, इतना सदय हो, वह आदमी नहीं देवता है। भगवन्, आपने मुझ पर जो आक्षेप किये वह सत्य हैं। मैं आपके अनुमान से कहीं भ्रष्ट हूँ। मैं इस योग्य भी नहीं हूँ कि आपकी ओर ताक सकूँ। आपने अपने हृदय की विशालता दिखाकर मेरा असली स्वरुप मेरे सामने प्रकट कर दिया। मुझे क्षमा कीजिए, मुझ पर दया कीजिए।

यह कहते-कहते वह उनके पैंरों पर गिर पड़ी। आपटे ने उसे उठा लिया और बोले — ईश्वर के लिए मुझे लज्जित न करो।

मिस जोशी ने गद्‌गद कंठ से कहा — आप इन दुष्टों के हाथ से मेरा उद्धार कीजिए। मुझे इस योग्य बनाइए कि आपकी विश्वासपात्री बन सकूँ। ईश्वर साक्षी है कि मुझे कभी-कभी अपनी दशा पर कितना दुख होता है। मैं बार-बार चेष्टा करती हूँ कि अपनी दशा सुधारूँ; इस विलासिता के जाल को तोड़ दूँ, जो मेरी आत्मा को चारों तरफ से जकड़े हुए है, पर दुर्बल आत्मा अपने निश्चय पर स्थित नहीं रहती। मेरा पालन-पोषण जिस ढंग

से हुआ, उसका यह परिणाम होना स्वाभाविक–सा मालूम होता है। मेरी उच्च शिक्षा ने गृहिणी–जीवन से मेरे मन में घृणा पैदा कर दी। मुझे किसी पुरुष के अधीन रहने का विचार अस्वाभाविक जान पड़ता था। मैं गृहिणी की जिम्मेदारियों और चिंताओं को अपनी मानसिक स्वाधीनता के लिए विष–तुल्य समझती थी। मैं तर्कबुद्धि से अपने स्त्रीत्व को मिटा देना चाहती थी, मैं पुरुषों की भांति स्वतंत्र रहना चाहती थी। क्यों किसी की पाबन्द होकर रहूँ? क्यों अपनी इच्छाओं को किसी व्यक्ति के सांचे में ढालू? क्यों किसी को यह अधिकार दूँ कि तुमने यह क्यों किया, वह क्यों किया? दाम्पत्य मेरी निगाह में तुच्छ वस्तु थी। अपने माता–पिता की आलोचना करना मेरे लिए उचित नहीं, ईश्वर उन्हें सद्गति दे, उनकी राय किसी बात पर न मिलती थी। पिता विद्वान् थे, माता के लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' था। उनमें रात–दिन वाद–विवाद होता रहता था। पिताजी ऐसी स्त्री से विवाह हो जाना अपने जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य समझते थे। वह यह कहते कभी न थकते थे कि तुम मेरे पांव की बेड़ी बन गयीं, नहीं तो मैं न जाने कहाँ उड़कर पहुंचा होता। उनके विचार मे सारा दोष माता की अशिक्षा के सिर था। वह अपनी एकमात्र पुत्री को मूर्खा माता से संसर्ग से दूर रखना चाहते थे। माता कभी मुझसे कुछ कहतीं तो पिताजी उन पर टूट पड़ते — तुमसे

कितनी बार कह चुका कि लड़की को डाँटो मत, वह स्वयं अपना भला–बुरा सोच सकती है, तुम्हारे डाँटने से उसके आत्म–सम्मान का कितना धक्का लगेगा, यह तुम नहीं जान सकतीं। आखिर माताजी ने निराश होकर मुझे मेरे हाल पर छोड़ दिया और कदाचित् इसी शोक में चल बसीं। अपने घर की अशांति देखकर मुझे विवाह से और भी घृणा हो गयी। सबसे बड़ा असर मुझ पर मेरे कालेज की लेडी प्रिंसिपल का हुआ जो स्वयं अविवाहित थीं। मेरा तो अब यह विचार है कि युवकों की शिक्षा का भार केवल आदर्श चरित्रों पर रखना चाहिए। विलास में रत, कालेजों के शौकिन प्रोफेसर विद्यार्थियों पर कोई अच्छा असर नहीं डाल सकते। मैं इस वक्त ऐसी बात आपसे कह रही हूँ। पर अभी घर जाकर यह सब भूल जाऊँगी। मैं जिस संसार में हूँ, उसकी जलवायु ही दूषित है। वहाँ सभी मुझे कीचड़ में लतपत देखना चाहते है।, मेरे विलासासक्त रहने में ही उनका स्वार्थ है। आप वह पहले आदमी हैं जिसने मुझ पर विश्वास किया है, जिसने मुझसे निष्कपट व्यवहार किया है। ईश्वर के लिए अब मुझे भूल न जाइयेगा।

आपटे ने मिस जोशी की ओर वेदना पूर्ण दृष्टि से देखकर कहा — अगर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। मिस जोशी! हम सब मिट्टी के पुतले हैं,

कोई निर्दोष नहीं। मनुष्य बिगड़ता है तो परिस्थितियों से, या पूर्व संस्कारों से। परिस्थितियों का त्याग करने से ही बच सकता है, संस्कारों से गिरने वाले मनुष्य का मार्ग इससे कहीं कठिन है। आपकी आत्मा सुन्दर और पवित्र है, केवल परिस्थितियों ने उसे कुहरे की भांति ढँक लिया है। अब विवेक का सूर्य उदय हो गया है, ईश्वर ने चाहा तो कुहरा भी फट जाएगा। लेकिन सबसे पहले उन परिस्थितियों का त्याग करने को तैयार हो जाइए।

मिस जोशी — यही आपको करना होगा।

आपटे ने चुभती हुई निगाहों से देख कर कहा — वैद्य रोगी को जबरदस्ती दवा पिलाता है।

मिस जोशी —मैं सब कुछ करूँगी। मैं कड़वी से कड़वी दवा पियूँगी यदि आप पिलायेंगे। कल आप मेरे घर आने की कृपा करेंगे, शाम को?

आपटे — अवश्य आऊँगा।

मिस जोशी ने विदा देते हुए कहा — भूलिएगा नहीं, मैं आपकी राह देखती रहूँगी। अपने रक्षक को भी लाइएगा।

यह कहकर उसने बालक को गोद मे उठाया ओर उसे गले से लगा कर बाहर निकल आयी।

गर्व के मारे उसके पाँव जमीन पर न पड़ते थे। मालूम होता था, हवा में उड़ी जा रही है, प्यास से तड़पते हुए मनुष्य को नदी का तट नजर आने लगा था।

6

दूसरे दिन प्रातःकाल मिस जोशी ने मेहमानों के नाम दावती कार्ड भेजे और उत्सव मनाने की तैयारियाँ करने लगी। मिस्टर आपटे के सम्मान में पार्टी दी जा रही थी। मिस्टर जौहरी ने कार्ड देखा तो मुस्कराये। अब महाशय इस जाल से बचकर कहाँ जायेंगे। मिस जोशी ने ने उन्हें फँसाने के लिए यह अच्छी तरकीब निकाली। इस काम में निपुण मालूम होती है। मैंने समझा था, आपटे चालाक आदमी होगा, मगर इन आन्दोलनकारी विद्रोहियों को बकवास करने के सिवा और क्या सूझ सकती है।

चार ही बजे मेहमान लोग आने लगे। नगर के बड़े–बड़े अधिकारी, बड़े–बड़े व्यापारी, बड़े–बड़े विद्वान, समाचार–पत्रों के सम्पादक, अपनी–अपनी महिलाओं के साथ आने लगे। मिस जोशी ने आज अपने अच्छे–से–अच्छे वस्त्र और आभूषण निकाले हुए थे, जिधर निकल जाती थी मालूम होता था, अरुण प्रकाश की छटा

चली आ रही है। भवन में चारों ओर सुगंध की लपटें आ रही थीं और मधुर संगीत की ध्वनि हवा में गूंज रहीं थी।

पाँच बजते-बजते मिस्टर जौहरी आ पहुंचे और मिस जोशी से हाथ मिलाते हुए मुस्करा कर बोले — जी चाहता है तुम्हारे हाथ चूम लूँ। अब मुझे विश्वास हो गया कि यह महाशय तुम्हारे पंजे से नहीं निकल सकते।

मिसेज पेटिट बोलीं — मिस जोशी दिलों का शिकार करने के लिए ही बनाई गई है।

मिस्टर सोराबजी — मैंने सुना है, आपटे बिलकुल गँवार-सा आदमी है।

मिस्टर भरुचा — किसी यूनिवर्सिटी में शिक्षा ही नहीं पायी, सभ्यता कहाँ से आती?

मिस्टर भरुचा — आज उसे खूब बनाना चाहिए।

महंत वीरभद्र डाढ़ी के भीतर से बोले — मैंने सुना है नास्तिक है। वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करता।

मिस जोशी — नास्तिक तो मै भी हूँ। ईश्वर पर मेरा भी विश्वास नहीं है।

महंत — आप नास्तिक हों, पर आप कितने ही नास्तिकों को आस्तिक बना देती हैं।

मिस्टर जौहरी — आपने लाख की बात की कहीं महंतजी!

मिसेज भरुचा — क्यों महंतजी, आपको मिस जोशी ही न आस्तिक बनाया है क्या?

सहसा आपटे लोहार के बालक की उँगली पकड़े हुए भवन में दाखिल हुए। वह पूरे फैशनेबुल रईस बने हुए थे। बालक भी किसी रईस का लड़का मालूम होता था। आज आपटे को देखकर लोगो को विदित हुआ कि वह कितना सुदंर, सजीला आदमी है। मुख से शौर्य निकल रहा था, पोर-पोर से शिष्टता झलकती थी, मालूम होता था वह इसी समाज में पला है। लोग देख रहे थे कि वह कहीं चूके और तालियाँ बजायें, कही कदम फिसले और कहकहे लगायें पर आपटे मँजे हुए खिलाड़ी की भाँति, जो कदम उठाता था,वह सधा हुआ, जो हाथ दिखलाता था वह जमा हुआ। लोग उसे पहले तुच्छ समझते थे, अब उससे ईर्ष्या करने लगे, उस पर फबतियाँ उड़ानी शुरु कीं। लेकिन आपटे इस कला में भी एक ही निकला। बात मुँह से निकली ओर उसने जवाब दिया, पर उसके जवाब में मालिन्य या कटुता का लेश भी न होता था। उसका एक-एक शब्द सरल, स्वच्छ ,

चित्त को प्रसन्न करने वाले भावों में डूबा होता था। मिस जोशी उसकी वाक्यचातुरी पर फूल उठती थी?

सोराबजी — आपने किस यूनिवर्सिटी से शिक्षा पायी थी?

आपटे — यूनिवर्सिटी में शिक्षा पायी होती तो आज मैं भी शिक्षा–विभाग का अध्यक्ष होता।

मिसेज भरुचा — मैं तो आपको भयंकर जंतु समझती थी?

आपटे ने मुस्करा कर कहा — आपने मुझे महिलाओं के सामने न देखा होगा।

सहसा मिस जोशी अपने सोने के कमरे में गयी ओर अपने सारे वस्त्राभूषण उतार फेंके। उसके मुख से शुभ्र संकल्प का तेज निकल रहा था। नेत्रों से दबी ज्योति प्रस्फुटित हो रही थी, मानों किसी देवता ने उसे वरदान दिया हो। उसने सजे हुए कमरे को घृणा से देखा, अपने आभूषणों को पैरों से ठुकरा दिया और एक मोटी साफ साड़ी पहनकर बाहर निकली। आज प्रातःकाल ही उसने यह साड़ी मँगा ली थी।

उसे इस नये वेश में देख कर सब लोग चकित हो गये। कायापलट कैसी? सहसा किसी की आँखों को विश्वास न आया;

किंतु मिस्टर जौहरी बगलें बजाने लगे। मिस जोशी ने इसे फँसाने के लिए यह कोई नया स्वाँग रचा है।

मिस जोशी मेहमानों के सामने आकर बोली —

'मित्रों! आपको याद है, परसों महाशय आपटे ने मुझे कितनी गालियाँ दी थी। यह महाशय खड़े हैं। आज मैं इन्हें उस दुर्व्यवहार का दण्ड देना चाहती हूँ। मैं कल इनके मकान पर जाकर इनके जीवन के सारे गुप्त रहस्यों को जान आयी। यह जो जनता की भीड़ गरजते फिरते है, मेरे एक ही निशाने पर गिर पड़े। मैं उन रहस्यों के खोलने में अब विलम्ब न करूँगी, आप लोग अधीर हो रहे होगें। मैंने जो कुछ देखा, वह इतना भयंकर है कि उसका वृतांत सुनकर शायद आप लोगों को मूर्छा आ जायेगी। अब मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि यह महाशय पक्के विद्रोही है....'

मिस्टर जौहरी ने ताली बजायी ओर तालियों के हॉल गूँज उठा।

मिस जोशी — लेकिन राज के द्रोही नहीं, अन्याय के द्रोही, दमन के द्रोही, अभिमान के द्रोही...

चारों ओर सन्नाटा छा गया। लोग विस्मित होकर एक दूसरे की ओर ताकने लगे।

मिस जोशी — गुप्त रुप से शस्त्र जमा किए है और गुप्त रुप से हत्याएँ की हैं...

मिस्टर जौहरी ने तालियाँ बजायी और तालियाँ का दौगड़ा फिर बरस गया।

मिस जोशी — लेकिन किस की हत्या? दुःख की, दरिद्रता की, प्रजा के कष्टों की, हठधर्मी की ओर अपने स्वार्थ की।

चारों ओर फिर सन्नाटा छा गया और लोग चकित हो-होकर एक दूसरे की ओर ताकने लगे, मानो उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं है।

मिस जोशी — महाराज आपटे ने डकैतियाँ की और कर रहे हैं...

अब की किसी ने ताली न बजायी, लोग सुनना चाहते थे कि देखे आगे क्या कहती है।

'उन्होंने मुझ पर भी हाथ साफ किया है, मेरा सब कुछ अपहरण कर लिया है, यहाँ तक कि अब मैं निराधार हूँ और उनके चरणों के सिवा मेरे लिए कोई आश्रय नहीं है। प्राणाधार! इस अबला को अपने चरणों में स्थान दो, उसे डूबने से बचाओ। मैं जानती हूँ तुम मुझे निराश न करोगे।'

यह कहते–कहते वह जाकर आपटे के चरणों में गिर पड़ी। सारी मण्डली स्तंभित रह गयी।

7

एक सप्ताह गुजर चुका था। आपटे पुलिस की हिरासत में थे। उन पर चार अभियोग चलाने की तैयारियाँ चल रहीं थी। सारे प्रांत में हलचल मची हुई थी। नगर में रोज सभाएँ होती थीं, पुलिस रोज दस–पाँच आदमियों को पकड़ती थी। समाचार–पत्रों में जोरों के साथ वाद–विवाद हो रहा था।

रात के नौ बज गये थे। मिस्टर जौहरी राज–भवन में मेज पर बैठे हुए सोच रहे थे कि मिस जोशी को क्यों कर वापस लाएँ? उसी दिन से उनकी छाती पर साँप लोट रहा था। उसकी सूरत एक क्षण के लिए आँखों से न उतरती थी।

वह सोच रहे थे, इसने मेरे साथ ऐसी दगा की! मैंने इसके लिए क्या कुछ नहीं किया? इसकी कौन–सी इच्छा थी, जो मैने पूरी नहीं की इसी ने मुझसे बेवफाई की। नहीं, कभी नहीं, मैं इसके बगैर जिंदा नहीं रह सकता। दुनिया चाहे मुझे बदनाम करे, हत्यारा कहे, चाहे मुझे पद से हाथ धोना पड़े, लेकिन आपटे को

नहीं छोड़ूँगा। इस रोड़े को रास्ते से हटा दूँगा, इस काँटे को पहलू से निकाल बाहर करूँगा।

सहसा कमरे का दरवाजा खुला और मिस जोशी ने प्रवेश किया। मिस्टर जौहरी हकबकाकर कुर्सी पर से उठ खड़े हुए, यह सोच रहे थे कि शायद मिस जोशी ने निराश होकर मेरे पास आयी हैं, कुछ रुखे, लेकिन नम्र भाव से बोले — आओ बाला, तुम्हारी याद में बैठा था। तुम कितनी ही बेवफाई करो, पर तुम्हारी याद मेरे दिल से नहीं निकल सकती।

मिस जोशी — आप केवल जबान से कहते है।

मिस्टर जौहरी — क्या दिल चीरकर दिखा दूँ?

मिस जोशी — प्रेम प्रतिकार नहीं करता, प्रेम में दुराग्रह नहीं होता। आप मरे खून के प्यासे हो रहे हैं, उस पर भी आप कहते हैं, मैं तुम्हारी याद करता हूँ। आपने मेरे स्वामी को हिरासत में डाल रखा है, यह प्रेम है! आखिर आप मुझसे क्या चाहते हैं? अगर आप समझ रहे हों कि इन सख्तियों से डर कर मै आपकी शरण आ जाऊँगी तो आपका भ्रम है। आपको अख्तियार है कि आपटे को काले पानी भेज दें, फाँसी चढ़ा दें, लेकिन इसका मुझ पर कोई असर न होगा। वह मेरे स्वामी हैं, मैं उनको अपना स्वामी समझती हूँ। उन्होने अपनी विशाल उदारता से मेरा उद्धार किया। आप

मुझे विषय के फँदो में फँसाते थे, मेरी आत्मा को कलुषित करते थे। कभी आपको यह खयाल आया कि इसकी आत्मा पर क्या बीत रही होगी? आप मुझे आत्मशून्य समझते थे। इस देवपुरुष ने अपनी निर्मल स्वच्छ आत्मा के आकर्षण से मुझे पहली ही मुलाकात में खींच लिया। मैं उसकी हो गयी और मरते दम तक उसी की रहूँगी। उस मार्ग से अब आप हटा नहीं सकते। मुझे एक सच्ची आत्मा की जरुरत थी , वह मुझे मिल गयी। उसे पाकर अब तीनों लोक की सम्पदा मेरी आँखों में तुच्छ है। मैं उनके वियोग में चाहे प्राण दे दूँ, पर आपके काम नहीं आ सकती।

मिस्टर जौहरी — मिस जोशी! प्रेम उदार नहीं होता, क्षमाशील नहीं होता। मेरे लिए तुम सर्वस्व हो, जब तक मैं समझता हूँ कि तुम मेरी हो। अगर तुम मेरी नहीं हो सकती तो मुझे इसकी क्या चिंता हो सकती है कि तुम किस दिशा में हो?

मिस जोशी — यह आपका अन्तिम निर्णय है?

मिस्टर जौहरी — अगर मैं कह दूँ कि हाँ, तो?

मिस जोशी ने सीने से पिस्तौल निकाल कर कहा — तो पहले आप की लाश जमीन पर फड़कती होगी और आपके बाद मेरी। बोलिए, यह आपका अन्तिम निश्चय है?

यह कहकर मिस जोशी ने जौहरी की तरफ पिस्तौल सीधा किया। जौहरी कुर्सी से उठ खड़े हुए और मुस्करा बोले — क्या तुम मेरे लिए कभी इतना साहस कर सकती थीं? जाओं, तुम्हारा आपटे तुम्हें मुबारक हो। उस पर से अभियोग उठा लिया जाएगा। पवित्र प्रेम ही में यह साहस है। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हारा प्रेम पवित्र है। अगर कोई पुराना पापी भविष्यवाणी कर सकता है तो मैं कहता हूँ, वह दिन दूर नहीं है, जब तुम इस भवन की स्वामिनी होगी। आपटे ने मुझे प्रेम के क्षेत्र में नहीं, राजनीति के क्षेत्र में भी परास्त कर दिया। सच्चा आदमी एक मुलाकात में ही जीवन बदल सकता है, आत्मा को जगा सकता है और अज्ञान को मिटा कर प्रकाश की ज्योति फैला सकता है, यह आज सिद्ध हो गया।

.

नरक का मार्ग

.

रात “भक्तमाल” पढ़ते–पढ़ते न जाने कब नींद आ गयी। कैसे–कैसे महात्मा थे जिनके लिए भगवत्–प्रेम ही सब कुछ था, इसी में मग्न रहते थे। ऐसी भक्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। क्या मैं वह तपस्या नहीं कर सकती? इस जीवन में और कौन–सा सुख रखा है? आभूषणों से जिसे प्रेम हो जाने , यहाँ तो इनको देखकर आँखें फूटती है;धन–दौलत पर जो प्राण देता हो वह जाने, यहाँ तो इसका नाम सुनकर ज्वर–सा चढ़ आता हैं। कल पगली सुशीला ने कितनी उमंगों से मेरा श्रृंगार किया था, कितने प्रेम से बालों में फूल गूँथे। कितना मना करती रही, न मानी। आखिर वही हुआ जिसका मुझे भय था। जितनी देर उसके साथ हंसी थी, उससे कहीं ज्यादा रोयी। संसार में ऐसी भी कोई स्त्री है, जिसका पति उसका श्रृंगार देखकर सिर से पांव तक जल उठे? कौन ऐसी स्त्री है जो अपने पति के मुँह से ये शब्द सुने — तुम मेरा परलोक बिगाड़ोगी, और कुछ नहीं, तुम्हारे रंग–ढंग कहे देते हैं — और मनुष्य उसका दिल विष खा लेने को चाहे। भगवान्! संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं। आखिर मैं नीचे चली गयी और 'भक्तमाल'

पढ़ने लगी। अब वृंदावन बिहारी ही की सेवा करूँगी उन्हीं को अपना श्रृंगार दिखाऊँगी, वह तो देखकर न जलेंगे। वह तो हमारे मन का हाल जानते हैं।

2

भगवान! मैं अपने मन को कैसे समझाऊँ! तुम अन्तर्यामी हो, तुम मेरे रोम–रोम का हाल जानते हो। मैं चाहती हुं कि उन्हें अपना इष्ट समझूँ, उनके चरणों की सेवा करूँ, उनके इशारे पर चलूँ, उन्हें मेरी किसी बात से, किसी व्यवहार से नाममात्र, भी दुःख न हो। वह निर्दोष हैं, जो कुछ मेरे भाग्य में था वह हुआ, न उनका दोष है, न माता–पिता का, सारा दोष मेरे नसीबों ही का है। लेकिन यह सब जानते हुए भी जब उन्हें आते देखती हूँ, तो मेरा दिल बैठ जाता है, मुँह पर मुरदनी–सी छा जाती है, सिर भारी हो जाता है, जी चाहता है इनकी सूरत न देखूँ, बात तक करने को जी नही चाहता; कदाचित् शत्रु को भी देखकर किसी का मन इतना क्लांत नहीं होता होगा। उनके आने के समय दिल में धड़कन सी होने लगती है। दो–एक दिन के लिए कहीं चले जाते हैं तो दिल पर से बोझ उठ जाता है। हँसती भी हूँ, बोलती भी हूँ,

जीवन में कुछ आनन्द आने लगता है लेकिन उनके आने का समाचार पाते ही फिर चारों ओर अंधकार! चित्त की ऐसी दशा क्यों है, यह मैं नहीं कह सकती। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि पूर्वजन्म में हम दोनों में बैर था, उसी बैर का बदला लेने के लिए उन्होंने मुझसे विवाह किया है, वही पुराने संस्कार हमारे मन में बने हुए हैं। नहीं तो वह मुझे देख-देख कर क्यों जलते और मैं उनकी सूरत से क्यों घृणा करती? विवाह करने का तो यह मतलब नहीं हुआ करता! मैं अपने घर कहीं इससे सुखी थी। कदाचित् मैं जीवन-पर्यन्त अपने घर आनन्द से रह सकती थी। लेकिन इस लोक-प्रथा का बुरा हो, जो अभागिन कन्याओं को किसी-न-किसी पुरुष के गले में बाँध देना अनिवार्य समझती है। वह क्या जानता है कि कितनी युवतियाँ उसके नाम को रो रही है, कितने अभिलाषाओं से लहराते हुए, कोमल हृदय उसके पैरो तल रौंदे जा रहे है? युवती के लिए पति कैसी-कैसी मधुर कल्पनाओं का स्रोत्र होता है, पुरुष में जो उत्तम है, श्रेष्ठ है, दर्शनीय है, उसकी सजीव मूर्ति इस शब्द के ध्यान में आते ही उसकी नजरों के सामने आकर खड़ी हो जाती है। लेकिन मेरे लिए यह शब्द क्या है। हृदय में उठने वाला शूल, कलेजे में खटकनेवाला काँटा, आँखो में गड़ने वाली किरकिरी, अंतःकरण को बेधने वाला व्यंग बाण! सुशीला को हमेशा हंसते देखती हूँ। वह

कभी अपनी दरिद्रता का गिला नहीं करती; गहने नहीं हैं, कपड़े नहीं हैं, भाड़े के नन्हें–से मकान में रहती है, अपने हाथों घर का सारा काम–काज करती है , फिर भी उसे रोते नहीं देखती अगर अपने बस की बात होती तो आज अपने धन को उसकी दरिद्रता से बदल लेती। अपने पतिदेव को मुस्कराते हुए घर में आते देखकर उसका सारा दुःख दारिद्रय छूमंतर हो जाता है, छाती गज–भर की हो जाती है। उसके प्रेमालिंगन में वह सुख है, जिस पर तीनों लोक का धन न्योछावर कर दूँ।

3

आज मुझसे जब्त न हो सका। मैंने पूछा — तुमने मुझसे किसलिए विवाह किया था? यह प्रश्न महीनों से मेरे मन में उठता था, पर मन को रोकती चली आती थी। आज प्याला छलक पड़ा। यह प्रश्न सुनकर कुछ बौखला–से गये, बगलें झाँकने लगे, खीसें निकालकर बोले — घर संभालने के लिए, गृहस्थी का भार उठाने के लिए, और नहीं क्या भोग–विलास के लिए? घरनी के बिना यह आपको भूत का डेरा–सा मालूम होता था।
नौकर–चाकर घर की सम्पति उड़ाये देते थे। जो चीज जहाँ पड़ी

रहती थी, कोई उसको देखने वाला न था। तो अब मालूम हुआ कि मैं इस घर की चौकसी के लिए लाई गई हूँ। मुझे इस घर की रक्षा करनी चाहिए और अपने को धन्य समझना चाहिए कि यह सारी सम्पति मेरी है। मुख्य वस्तु सम्पत्ति है, मै तो केवल चौकीदारिन हूँ। ऐसे घर में आज ही आग लग जाये! अब तक तो मैं अनजान में घर की चौकसी करती थी, जितना वह चाहते हैं उतना न सही, पर अपनी बुद्धि के अनुसार अवश्य करती थी। आज से किसी चीज को भूलकर भी छूने की कसम खाती हूँ। यह मैं जानती हूँ। कोई पुरुष घर की चौकसी के लिए विवाह नहीं करता और इन महाशय ने चिढ़ कर यह बात मुझसे कही। लेकिन सुशीला ठीक कहती है, इन्हें स्त्री के बिना घर सुना लगता होगा, उसी तरह जैसे पिंजरे में चिड़िया को न देखकर पिंजरा सूना लगता है। यह हम स्त्रियों का भाग्य!

4

मालूम नहीं, इन्हें मुझ पर इतना संदेह क्यो होता है। जब से नसीब इस घर में लाया हैं, इन्हें बराबर संदेह-मूलक कटाक्ष करते देखती हूँ। क्या कारण है? जरा बाल गुँथवाकर बैठी और

यह होंठ चबाने लगे। कहीं जाती नहीं, कहीं आती नहीं, किसी से बोलती नहीं, फिर भी इतना संदेह! यह अपमान असह्य है। क्या मुझे अपनी आबरु प्यारी नहीं? यह मुझे इतनी छिछोरी क्यों समझते हैं, इन्हें मुझपर संदेह करते लज्जा भी नहीं आती? काना आदमी किसी को हंसते देखता है तो समझता है लोग मुझी पर हँस रहे है। शायद इन्हें भी यही बहम हो गया है कि मैं इन्हें चिढ़ाती हूँ। अपने अधिकार के बाहर से बाहर कोई काम कर बैठने से कदाचित् हमारे चित्त की यही वृत्ति हो जाती है। भिक्षुक राजा की गद्दी पर बैठकर चैन की नींद नहीं सो सकता। उसे अपने चारों तरफ शत्रु दिखायी देंगे। मै समझती हूँ, सभी शादी करने वाले बुड्ढों का यही हाल है।

आज सुशीला के कहने से मैं ठाकुर जी की झाँकी देखने जा रही थी। अब यह साधारण बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है कि फूहड़ बहू बनकर बाहर निकलना अपनी हँसी उड़ाना है, लेकिन आप उसी वक्त न जाने किधर से टपक पड़े और मेरी ओर तिरस्कारपूर्ण नेत्रों से देखकर बोले — कहाँ की तैयारी है?

मैंने कह दिया, जरा ठाकुर जी की झाँकी देखने जाती हूँ।

इतना सुनते ही त्योरियाँ चढ़ाकर बोले — तुम्हारे जाने की कुछ जरुरत नहीं। जो अपने पति की सेवा नहीं कर सकती, उसे

देवताओं के दर्शन से पुण्य के बदले पाप होता। मुझसे उड़ने चली हो। मैं औरतों की नस–नस पहचानता हूँ।

ऐसा क्रोध आया कि बस अब क्या कहूँ। उसी दम कपड़े बदल डाले और प्रण कर लिया कि अब कभी दर्शन करने जाऊँगी। इस अविश्वास का भी कुछ ठिकाना है! न जाने क्या सोचकर रुक गयी। उनकी बात का जवाब तो यही था कि उसी क्षण घर से चल खड़ी हुई होती, फिर देखती मेरा क्या कर लेते।

इन्हें मेरा उदास और विमन रहने पर आश्चर्य होता है। मुझे मन–में कृतघ्न समझते है। अपनी समझ में इन्होंने मेरे से विवाह करके शायद मुझ पर एहसान किया है। इतनी बड़ी जायदाद और विशाल सम्पत्ति की स्वामिनी होकर मुझे फूले न समाना चाहिए था, आठों पहर इनका यश गान करते रहना चाहिये था। मैं यह सब कुछ न करके उलटे और मुँह लटकाए रहती हूँ। कभी–कभी बेचारे पर दया आती है। यह नहीं समझते कि नारी–जीवन में कोई ऐसी वस्तु भी है जिसे देखकर उसकी आँखों में स्वर्ग भी नरक–तुल्य हो जाता है।

तीन दिन से बीमार हैं। डाक्टर कहते हैं, बचने की कोई आशा नहीं, निमोनिया हो गया है। पर मुझे न जाने क्यों इनका गम नहीं है। मैं इतनी वज्र–हृदय कभी न थी। न जाने वह मेरी कोमलता कहाँ चली गयी। किसी बीमार की सूरत देखकर मेरा हृदय करुणा से चंचल हो जाता था, मैं किसी का रोना नहीं सुन सकती थी। वही मैं हूँ कि आज तीन दिन से उन्हें बगल के कमरे में पड़े कराहते सुनती हूँ और एक बार भी उन्हें देखने न गयी, आँखो में आँसू का जिक्र ही क्या। मुझे ऐसा मालूम होता है, इनसे मेरा कोई नाता ही नहीं मुझे चाहे कोई पिशाचनी कहे, चाहे कुलटा, पर मुझे तो यह कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि इनकी बीमारी से मुझे एक प्रकार का ईर्ष्यामय आनन्द आ रहा है। इन्होंने मुझे यहाँ कारावास दे रखा था — मैं इसे विवाह का पवित्र नाम नहीं देना चाहती — यह कारावास ही है। मैं इतनी उदार नहीं हूँ कि जिसने मुझे कैद मे डाल रखा हो उसकी पूजा करूँ, जो मुझे लात से मारे उसके पैरो का चूमूँ। मुझे तो मालूम हो रहा था। ईश्वर इन्हें इस पाप का दण्ड दे रहे है। मै निस्सकोंच होकर कहती हूँ कि मेरा इनसे विवाह नहीं हुआ है। स्त्री किसी के गले बांध दिये जाने से ही उसकी विवाहिता नहीं हो जाती। वही संयोग विवाह का पद पा सकता है। जिसमें कम–से–कम एक बार तो हृदय प्रेम से पुलकित हो जाय! सुनती

हूँ, महाशय अपने कमरे में पड़े–पड़े मुझे कोसा करते हैं, अपनी बीमारी का सारा बुखार मुझ पर निकालते हैं, लेकिन यहाँ इसकी परवाह नहीं। जिसका जी चाहे जायदाद ले, धन ले, मुझे इसकी जरुरत नहीं!

6

आज तीन दिन हुए, मैं विधवा हो गयी, कम–से–कम लोग यही कहते हैं। जिसका जो जी चाहे कहे, पर मैं अपने को जो कुछ समझती हूँ वह समझती हूँ। मैंने चूड़ियाँ नहीं तोड़ी, क्यों तोड़ूँ? क्यों तोड़ूँ? माँग में सेंदुर पहले भी न डालती थी, अब भी नहीं डालती। बूढ़े बाबा का क्रिया–कर्म उनके सुपुत्र ने किया, मैं पास न फटकी। घर में मुझ पर मनमानी आलोचनाएँ होती हैं, कोई मेरे गुँथे हुए बालों को देखकर नाक सिंकोड़ता हैं, कोई मेरे आभूषणों पर आँख मटकाता है, यहाँ इसकी चिंता नहीं। उन्हें चिढ़ाने को मैं भी रंग–बिरंगी साड़ियाँ पहनती हूँ, और भी बनती–सँवरती हूँ, मुझे जरा भी दुःख नहीं हैं। मैं तो कैद से छूट गयी। इधर कई दिन सुशीला के घर गयी। छोटा–सा मकान है, कोई सजावट न सामान, चारपाइयाँ तक नहीं, पर सुशीला कितने

आनन्द से रहती है। उसका उल्लास देखकर मेरे मन में भी भांति–भांति की कल्पनाएँ उठने लगती हैं — उन्हें कुत्सित क्यों कहूँ, जब मेरा मन उन्हें कुत्सित नहीं समझता। इनके जीवन में कितना उत्साह है। आँखें मुस्कराती रहती हैं, ओठों पर मधुर हास्य खेलता रहता है, बातों में प्रेम का स्रोत बहता हुआ जान पड़ता है। इस आनन्द से, चाहे वह कितना ही क्षणिक हो, जीवन सफल हो जाता है, फिर उसे कोई भूल नहीं सकता, उसी स्मृति अन्त के लिए काफी हो जाती है, इस मिजराब की चोट हृदय के तारों को अन्तकाल तक मधुर स्वरों में कम्पित रख सकती है।

एक दिन मैने सुशीला से कहा — अगर तेरे पतिदेव कहीं परदेश चले जाए तो रोत–रोते मर जाएगी?

सुशीला गंभीर भाव से बोली — नहीं बहन, मरूँगी नहीं , उनकी याद सदैव प्रफुल्लित करती रहेगी, चाहे उन्हें परदेश में बरसों लग जाएँ।

मैं यही प्रेम चाहती हूँ, इसी चोट के लिए मेरा मन तड़पता रहता है, मै भी ऐसी ही स्मृति चाहती हूँ जिससे दिल के तार सदैव बजते रहें, जिसका नशा नित्य छाया रहे।

7

रात रोते–रोते हिचकियाँ बँध गयी। न–जाने क्यो दिल भर आता था। अपना जीवन सामने एक बीहड़ मैदान की भांति फैला हुआ मालूम होता था, जहाँ बगूलों के सिवा हरियाली का नाम नहीं। घर फाड़े खाता था, चित्त ऐसा चंचल हो रहा था कि कहीं उड़ जाऊँ। आजकल भक्ति के ग्रन्थों की ओर ताकने को जी नहीं चाहता, कही सैर करने जाने की भी इच्छा नहीं होती, क्या चाहती हूँ वह मैं स्वयं भी नहीं जानती। लेकिन मै जो जानती वह मेरा एक–एक रोम–रोम जानता है, मैं अपनी भावनाओं को संजीव मूर्ति हैं, मेरा एक–एक अंग मेरी आंतरिक वेदना का आर्तनाद हो रहा है। मेरे चित्त की चंचलता उस अंतिम दशा को पहुँच गयी है, जब मनुष्य को निंदा की न लज्जा रहती है और न भय। जिन लोभी, स्वार्थी माता–पिता ने मुझे कुएँ में ढकेला, जिस पाषाण–हृदय प्राणी ने मेरी माँग में सेंदुर डालने का स्वांग किया, उनके प्रति मेरे मन में बार–बार दुष्कामनाएँ उठती हैं। मैं उन्हे लज्जित करना चाहती हूँ। मैं अपने मुँह में कालिख लगा कर उनके मुख में कालिख लगाना चाहती हूँ। मैं अपने प्राण देकर उन्हे प्राणदण्ड दिलाना चाहती हूँ। मेरा नारीत्व लुप्त हो गया है,। मेरे हृदय में प्रचंड ज्वाला उठी हुई है।

घर के सारे आदमी सो रहे है थे। मैं चुपके से नीचे उतरी , द्वार खोला और घर से निकली, जैसे कोई प्राणी गर्मी से व्याकुल होकर घर से निकले और किसी खुली हुई जगह की ओर दौड़े। उस मकान में मेरा दम घुट रहा था।

सड़क पर सन्नाटा था, दुकानें बन्द हो चुकी थी। सहसा एक बुढ़िया आती हुई दिखायी दी। मैं डरी कहीं यह चुड़ैल न हो। बुढ़िया ने मेरे समीप आकर मुझे सिर से पाँव तक देखा और बोली — किसकी राह देख रही हो

मैंने चिढ़ कर कहा — मौत की!

बुढ़िया — तुम्हारे नसीबों में तो अभी जिन्दगी के बड़े-बड़े सुख भोगने लिखे हैं। अंधेरी रात गुजर गयी, आसमान पर सुबह की रोशनी नजर आ रही हैं।

मैंने हँसकर कहा — अंधेरे में भी तुम्हारी आँखें इतनी तेज हैं कि नसीबों की लिखावट पढ़ लेती हैं?

बुढ़िया — आँखो से नहीं पढ़ती बेटी, अक्ल से पढ़ती हूँ, धूप में चूड़े नही सुफेद किये हैं। तुम्हारे दिन गये और अच्छे दिन आ रहे है। हँसो मत बेटी, यही काम करते इतनी उम्र गुजर गयी। इसी बुढ़िया की बदौलत जो नदी में कूदने जा रही थीं, वे आज फूलों की सेज पर सो रही है, जो जहर का प्याला पीने को तैयार

थीं, वे आज दूध की कुल्लियाँ कर रही हैं। इसीलिए इतनी रात गये निकलती हू कि अपने हाथों किसी अभागिन का उद्धार हो सके तो करूँ। किसी से कुछ नहीं माँगती, भगवान् का दिया सब कुछ घर में है, केवल यही इच्छा है उन्हे धन, जिन्हे संतान की इच्छा है उन्हें संतान, बस और क्या कहूँ, वह मंत्र बता देती हूँ कि जिसकी जो इच्छा जो वह पूरी हो जाये।

मैंने कहा — मुझे न धन चाहिए न संतान। मेरी मनोकामना तुम्हारे बस की बात नहीं है।

बुढ़िया हँसी — बेटी, जो तुम चाहती हो वह मै जानती हूँ; तुम वह चीज चाहती हो जो संसार में होते हुए स्वर्ग की है, जो देवताओं के वरदान से भी ज्यादा आनन्दप्रद है, जो आकाश कुसुम है, गूलर का फूल है और अमावस का चाँद है। लेकिन मेरे मंत्र में वह शक्ति है जो भाग्य को भी संवार सकती है। तुम प्रेम की प्यासी हो, मैं तुम्हें उस नाव पर बैठा सकती हूँ जो प्रेम के सागर में, प्रेम की तरंगों पर क्रीड़ा करती हुई तुम्हें पार उतार दे।

मैने उत्कंठित होकर पूछा — माता, तुम्हारा घर कहाँ है।

बुढ़िया — बहुत नजदीक है बेटी, तुम चलो तो मैं अपनी आँखो पर बैठा कर ले चलूँ।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यह कोई आकाश की देवी है। उसके पीछ–पीछे चल पड़ी।

8

आह! वह बुढ़िया, जिसे मैं आकाश की देवी समझती थी, नरक की डाइन निकली। मेरा सर्वनाश हो गया। मैं अमृत खोजती थी, विष मिला, निर्मल स्वच्छ प्रेम की प्यासी थी, गन्दे विषाक्त नाले में गिर पड़ी वह वस्तु न मिलनी थी, न मिली। मैं सुशीला का–सा सुख चाहती थी, कुलटाओं की विषय–वासना नहीं। लेकिन जीवन–पथ में एक बार उलटी राह चलकर फिर सीधे मार्ग पर आना कठिन है?

लेकिन मेरे अधःपतन का अपराध मेरे सिर नहीं, मेरे माता–पिता और उस बूढ़े पर है जो मेरा स्वामी बनना चाहता था। मैं यह पंक्तियाँ न लिखती, लेकिन इस विचार से लिख रही हूँ कि मेरी आत्म–कथा पढ़कर लोगों की आँखें खुलें; मैं फिर कहती हूँ कि अब भी अपनी बालिकाओं के लिए मत देखो धन, मत देखो जायदाद, मत देखो कुलीनता, केवल वर देखो। अगर उसके लिए जोड़ा का वर नहीं पा सकते तो लड़की को क्वाँरी रख छोड़ो,

जहर दे कर मार डालो, गला घोंट डालो, पर किसी बूढ़े खूसट से मत ब्याहो। स्त्री सब–कुछ सह सकती है। दारुण से दारुण दुःख, बड़े से बड़ा संकट, अगर नहीं सह सकती तो अपने यौवन–काल की उमंगों का कुचला जाना।

रही मैं, मेरे लिए अब इस जीवन में कोई आशा नहीं। इस अधम दशा को भी उस दशा से न बदलूँगी, जिससे निकल कर आयी हूँ।

स्त्री और पुरुष

विपिन बाबू के लिए स्त्री ही संसार की सुन्दर वस्तु थी। वह कवि थे और उनकी कविता के लिए स्त्रियों के रुप और यौवन की प्रशंसा ही सबसे चित्ताकर्षक विषय था। उनकी दृष्टि में स्त्री जगत में व्याप्त कोमलता, माधुर्य और अलंकारों की सजीव प्रतिमा थी। जबान पर स्त्री का नाम आते ही उनकी आँखें जगमगा उठती थीं, कान खड़े हो जाते थे, मानो किसी रसिक ने गाने की

आवाज सुन ली हो। जब से होश संभाला, तभी से उन्होंने उस सुंदरी की कल्पना करनी शुरु की जो उसके हृदय की रानी होगी; उसमें ऊषा की प्रफुल्लता होगी, पुष्प की कोमलता, कुंदन की चमक, बसंत की छवि, कोयल की ध्वनि — वह कवि वर्णित सभी उपमाओं से विभूषित होगी। वह उस कल्पित मूर्ति के उपासक थे, कविताओं में उसका गुण गाते, वह दिन भी समीप आ गया था, जब उनकी आशाएँ हरे-हरे पत्तों से लहरायेंगी, उनकी मुरादें पूरी हो होगी। कालेज की अन्तिम परीक्षा समाप्त हो गयी थी और विवाह के संदेश आने लगे थे।

2

विवाह तय हो गया। विपिन बाबू ने कन्या को देखने का बहुत आग्रह किया, लेकिन जब उनके मामू ने विश्वास दिलाया कि लड़की बहुत ही रूपवती है, मैंने अपनी आँखों से देखा है, तब वह राजी हो गये। धूमधाम से बारात निकली और विवाह का मुहूर्त आया। वधू आभूषणों से सजी हुई मंडप में आयी तो विपिन को उसके हाथ-पाँव नजर आये। कितनी सुंदर उँगलियाँ थीं, मानों दीपशिखाएँ हो, अंगों की शोभा कितनी मनोहारिणी थी। विपिन

फूले न समाये। दूसरे दिन वधू विदा हुई तो वह उसके दर्शनों के लिए इतने अधीर हुए कि ज्यों ही रास्ते में कहारों ने पालकी रखकर मुँह–हाथ धोना शुरु किया, आप चुपके से वधू के पास जा पहुंचे। वह घूँघट हटाये, पालकी से सिर निकाले बाहर झाँक रही थी। विपिन की निगाह उस पर पड़ गयी। यह वह परम सुंदर रमणी न थी जिसकी उन्होने कल्पना की थी, जिसकी वह बरसों से कल्पना कर रहे थे — यह एक चौड़े मुँह, चिपटी नाक, और फूले हुए गालों वाली कुरूपा स्त्री थी। रंग गोरा था, पर उसमें लाली के बदले सुफेदी थी; और फिर रंग कैसा ही सुंदर हो, रूप की कमी नहीं पूरी कर सकता। विपिन का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया — हाँ! इसे मेरे ही गले पड़ना था। क्या इसके लिए समस्त संसार में और कोई न मिलता था? उन्हें अपने मामू पर क्रोध आया जिसने वधू की तारीफों के पुल बाँध दिये थे। अगर इस वक्त वह मिल जाते तो विपिन उनकी ऐसी खबर लेता कि वह भी याद करते।

जब कहारों ने फिर पालकियाँ उठायीं तो विपिन मन में सोचने लगा, इस स्त्री के साथ कैसे मैं बोलूँगा, कैसे इसके साथ जीवन काटूँगा। इसकी ओर तो ताकने ही से घृणा होती है। ऐसी कुरूपा स्त्रियाँ भी संसार में हैं, इसका मुझे अब तक पता न था। क्या मुँह ईश्वर ने बनाया है, क्या आँखें है! मैं और सारे ऐबों की

ओर से आँखें बन्द कर लेता, लेकिन वह चौड़ा-सा मुँह! भगवान्! क्या तुम्हें मुझी पर यह वज्रपात करना था।

3

विपिन हो अपना जीवन नरक-सा जान पड़ता था। वह अपने मामू से लड़ा। ससुर को लम्बा खर्रा लिखकर फटकारा, माँ-बाप से हुज्जत की और जब इससे शान्ति न हुई तो कहीं भाग जाने की बात सोचने लगा। आशा पर उसे दया अवश्य आती थी। वह अपने का समझाता कि इसमें उस बेचारी का क्या दोष है, उसने जबरदस्ती तो मुझसे विवाह किया नहीं। लेकिन यह दया और यह विचार उस घृणा को न जीत सकता था जो आशा को देखते ही उसके रोम-रोम में व्याप्त हो जाती थी। आशा अपने अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनती; तरह-तरह से बाल सँवारती, घंटो आइने के सामने खड़ी होकर अपना श्रृंगार करती, लेकिन विपिन को यह शुतुरगमजे-से मालूम होते। वह दिल से चाहती थी कि उन्हें प्रसन्न करूँ, उनकी सेवा करने के लिए अवसर खोजा करती थी; लेकिन विपिन उससे भागा-भागा फिरता था। अगर कभी भेंट

हो जाती तो कुछ ऐसी जली–कटी बातें करने लगता कि आशा रोती हुई वहाँ से चली जाती।

सबसे बुरी बात यह थी कि उसका चरित्र भ्रष्ट होने लगा। वह यह भूल जाने की चेष्टा करने लगा कि मेरा विवाह हो गया है। कई–कई दिनों क आशा को उसके दर्शन भी न होते। वह उसके कह–कहे की आवाजें बाहर से आती हुई सुनती, झरोखे से देखती कि वह दोस्तों के गले में हाथ डालें सैर करने जा रहे है और तड़प कर रहे जाती।

एक दिन खाना खाते समय उसने कहा — अब तो आपके दर्शन ही नहीं होते। मेरे कारण घर छोड़ दीजिएगा क्या?

विपिन ने मुँह फेर कर कहा — घर ही पर तो रहता हूँ। आजकल जरा नौकरी की तलाश है इसलिए दौड़–धूप ज्यादा करनी पड़ती है।

आशा — किसी डाक्टर से मेरी सूरत क्यों नहीं बनवा देते? सुनती हूँ, आजकल सूरत बनाने वाले डाक्टर पैदा हुए है।

विपिन — क्यों नाहक चिढ़ती हो, यहाँ तुम्हें किसने बुलाया था?

आशा — आखिर इस मर्ज की दवा कौन करेगा?

विपिन — इस मर्ज की दवा नहीं है। जो काम ईश्वर से ने करते बना उसे आदमी क्या बना सकता है?

आशा — यह तो तुम्हीं सोचो कि ईश्वर की भूल के लिए मुझे दंड दे रहे हो। संसार में कौन ऐसा आदमी है जिसे अच्छी सूरत बुरी लगती हो, लेकिन तुमने किसी मर्द को केवल रूपहीन होने के कारण क्वाँरा रहते देखा है, रूपहीन लड़कियाँ भी माँ–बाप के घर नहीं बैठी रहतीं। किसी–न–किसी तरह उनका निर्वाह हो ही जाता है; उसका पति उस पर प्राण ने देता हो, लेकिन दूध की मक्खी नहीं समझता।

विपिन ने झुँझलाकर कहा — क्यों नाहक सिर खाती हो, मै तुमसे बहस तो नहीं कर रहा हूँ। दिल पर जब्र नहीं किया जा सकता और न दलीलों का उस पर कोई असर पड़ सकता है। मैं तुम्हें कुछ कहता तो नहीं हूँ, फिर तुम क्यों मुझसे हुज्जत करती हो?

आशा यह झिड़की सुन कर चली गयी। उसे मालूम हो गया कि इन्होंने मेरी ओर से सदा के लिए हृदय कठोर कर लिया है।

विपिन तो रोज सैर–सपाटे करते, कभी–कभी रात को गायब रहते। इधर आशा चिंता और नैराश्य से घुलते–घुलते बीमार पड़ गयी। लेकिन विपिन भूल कर भी उसे देखने न आता, सेवा करना तो दूर रहा। इतना ही नहीं, वह दिल में मानता था कि वह मर जाती तो गला छूटता, अबकी खूब देखभाल कर अपनी पसंद का विवाह करता।

अब वह और भी खुल खेला। पहले आशा से कुछ दबता था, कम–से–कम उसे यह धड़का लगा रहता था कि कोई मेरी चाल–ढ़ाल पर निगाह रखने वाला भी है। अब वह धड़का छुट गया। कुवासनाओं में ऐसा लिप्त हो गया कि मरदाने कमरे में ही जमघटे होने लगे। लेकिन विषय–भोग में धन ही का सर्वनाश होता, इससे कहीं अधिक बुद्धि और बल का सर्वनाश होता है। विपिन का चेहरा पीला लगा, देह भी क्षीण होने लगी, पसलियों की हड्डियाँ निकल आयीं आँखों के इर्द–गिर्द गढ़े पड़ गये। अब वह पहले से कहीं ज्यादा शोक करता, नित्य तेल लगता, बाल बनवाता, कपड़े बदलता, किन्तु मुख पर कांति न थी, रंग–रोगन से क्या हो सकता?

एक दिन आशा बरामदे में चारपाई पर लेटी हुई थी। इधर हफ्तों से उसने विपिन को न देखा था। उन्हे देखने की इच्छा हुई। उसे भय था कि वह सन आयेंगे, फिर भी वह मन को न

रोक सकी। विपिन को बुला भेजा। विपिन को भी उस पर कुछ दया आ गयी आ गयी। आकार सामने खड़े हो गये। आशा ने उनके मुँह की ओर देखा तो चौक पड़ी। वह इतने दुर्बल हो गये थे कि पहचानना मुश्किल था। बोली — तुम भी बीमार हो क्या? तुम तो मुझसे भी ज्यादा घुल गये हो।

विपिन — उंह, जिंदगी में रखा ही क्या है जिसके लिए जीने की फिक्र करूँ!

आशा — जीने की फिक्र न करने से कोई इतना दुबला नहीं हो जाता। तुम अपनी कोई दवा क्यों नहीं करते?

यह कह कर उसने विपिन का दाहिना हाथ पकड़ कर अपनी चारपाई पर बैठा लिया। विपिन ने भी हाथ छुड़ाने की चेष्टा न की। उनके स्वभाव में इस समय एक विचित्र नम्रता थी, जो आशा ने कभी ने देखी थी। बातों से भी निराशा टपकती थी। अक्खड़पन या क्रोध की गंध भी न थी। आशा का ऐसा मालूम हुआ कि उनकी आँखों में आँसू भरे हुए है।

विपिन चारपाई पर बैठते हुए बोले — मेरी दवा अब मौत करेगी। मै तुम्हें जलाने के लिए नहीं कहता। ईश्वर जानता है, मैं तुम्हें चोट नहीं पहुँचाना चाहता। मै अब ज्यादा दिनों तक न जिऊँगा। मुझे किसी भयंकर रोग के लक्षण दिखाई दे रहे है।

डाक्टर नें भी वही कहा है। मुझे इसका खेद है कि मेरे हाथों तुम्हें कष्ट पहुंचा पर क्षमा करना। कभी–कभी बैठे–बैठे मेरा दिल डूब दिल डूब जाता है, मूर्च्छा–सी आ जाती है।

यह कहते–कहते एकाएक वह काँप उठे। सारी देह में सनसनी सी दौड़ गयी। मूर्छित हो कर चारपाई पर गिर पड़े और हाथ–पैर पटकने लगे। मुँह से फिचकुर निकलने लगा। सारी देह पसीने से तर हो गयी।

आशा का सारा रोग हवा हो गया। वह महीनों से बिस्तर न छोड़ सकी थी। पर इस समय उसके शिथिल अंगों में विचित्र स्फूर्ति दौड़ गयी। उसने तेजी से उठ कर विपिन को अच्छी तरह लेटा दिया और उनके मुख पर पानी के छींटे देने लगी। महरी भी दौड़ी आयी और पंखा झलने लगी। पर भी विपिन ने आँखें न खोलीं। संध्या होते–होते उनका मुँह टेढ़ा हो गया और बायाँ अंग शून्य पड़ गया। हिलाना तो दूर रहा, मुँह से बात निकालना भी मुश्किल हो गया। यह मूर्च्छा न थी, फालिज था।

फालिज के भयंकर रोग में रोगी की सेवा करना आसान काम नहीं है। उस पर आशा महीनों से बीमार थी। लेकिन उस रोग के सामने वह पना रोग भूल गई। 15 दिनों तक विपिन की हालत बहुत नाजुक रही। आशा दिन–के–दिन और रात–की–रात उनके पास बैठी रहती। उनके लिए पथ्य बनाना, उन्हें गोद में सम्भाल कर दवा पिलाना, उनके जरा–जरा से इशारों को समझाना उसी जैसी धैर्यशाली स्त्री का काम था। अपना सिर दर्द से फटा करता, ज्वर से देह तपा करती, पर इसकी उसे जरा भी परवाह न थी।

15 दिनों बाद विपिन की हालत कुछ सँभली। उनका दाहिना पैर तो लुंज पड़ गया था, पर तोतली भाषा में कुछ बोलने लगे थे। सबसे बुरी गत उनके सुन्दर मुख की हुई थी। वह इतना टेढ़ा हो गया था जैसे कोई रबर के खिलौने को खींच कर बढ़ा दें। बैटरी की मदद से जरा देर के लिए बैठे या खड़े तो हो जाते थे; लेकिन चलने–फिरने की ताकत न थी।

एक दिनों लेटे–लेटे उन्हे क्या ख्याल आया। आईना उठा कर अपना मुँह देखने लगे। ऐसा कुरूप आदमी उन्होने कभी न देखा था। आहिस्ता से बोले — आशा, ईश्वर ने मुझे गरूर की सजा दे दी। वास्तव में मुझे यह उसी बुराई का बदला मिला है, जो मैंने तुम्हारे साथ की। अब तुम अगर मेरा मुँह देखकर घृणा से मुँह

फेर लो तो मुझ से उस दुर्व्यवहार का बदला लो, जो मैंने, तुम्हारे साथ किए है।

आशा ने पति की ओर कोमल भाव से देखकर कहा — मै तो आपको अब भी उसी निगाह से देखती हूँ। मुझे तो आप में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता।

विपिन — वाह, बन्दर का-सा मुँह हो गया है, तुम कहती हो, कोई अन्तर ही नहीं। मैं तो अब कभी बाहर न निकलूँगा। ईश्वर ने सचमुच दंड दिया है!

6

बहुत यत्न किए गए पर विपिन का मुँह सीधा न हुआ। मुख्य का बायाँ भाग इतना टेढ़ा हो गया था कि चेहरा देखकर डर मालूम होता था। हाँ, पैरों में इतनी शक्ति आ गई कि अब वह चलने-फिरने लगे। आशा ने पति की बीमारी में देवी की मनौती की थी। आज उसी की पूजा का उत्सव था। मुहल्ले की स्त्रियाँ बनाव-सिंगार किये जमा थीं। गाना-बजाना हो रहा था।

एक सहेली ने पूछा — क्यों आशा, अब तो तुम्हें उनका मुँह जरा भी अच्छा न लगता होगा।

आशा ने गम्भीर होकर कहा — मुझे तो पहले से कहीं मुँह जरा भी अच्छा न लगता होगा।

'चलो, बातें बनाती हो।'

'नही बहन, सच कहती हूँ; रूप के बदले मुझे उनकी आत्मा मिल गई जो रूप से कहीं बढ़कर है।'

विपिन कमरे में बैठे हुए थे। कई मित्र जमा थे। ताश हो रहा था।

कमरे में एक खिड़की थी जो आँगन में खुलती थी। इस वक्त वह बन्द थी। एक मित्र ने उसे चुपके से खोल दिया। एक मित्र ने उसे चुपके दिया और शीशे से झाँक कर विपिन से कहा — आज तो तुम्हारे यहाँ परियों का अच्छा जमघट है।

विपिन — बन्द कर दो।

'अजी जरा देखो तो, कैसी–कैसी सूरतें है! तुम्हें इन सबों में कौन सबसे अच्छी मालूम होती है?

विपिन ने उड़ती हुई नजरों से देखकर कहा — मुझे तो वहीं सबसे अच्छी मालूम होती है जो थाल में फूल रख रही है।

‘वाह री आपकी निगाह! क्या सूरत के साथ तुम्हारी निगाह भी बिगड़ गई? मुझे तो वह सबसे बदसूरत मालूम होती है।’

‘इसलिए कि तुम उसकी सूरत देखते हो और मै उसकी आत्मा देखता हूँ।’

‘अच्छा, यही मिसेज विपिन हैं?’

‘जी हाँ, यह वही देवी है।

उद्धार

.

हिंदू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दूषित, इतनी चिंताजनक, इतनी भयंकर हो गयी है कि कुछ समझ में नहीं आता, उसका सुधार क्योंकर हो। बिरले ही ऐसे माता–पिता होंगे जिनके सात पुत्रों के बाद एक भी कन्या उत्पन्न हो जाय तो वह सहर्ष उसका स्वागत करें। कन्या का जन्म होते ही उसके विवाह की चिंता सिर पर सवार हो जाती है और आदमी उसी में डुबकियाँ खाने लगता है। अवस्था इतनी निराशमय और भयानक हो गई है कि ऐसे माता–पिताओं की कमी नहीं है जो कन्या की मृत्यु पर हृदय से प्रसन्न होते है, मानों सिर से बाधा टली। इसका कारण केवल यही है कि दहेज की दर, दिन दूनी रात चौगुनी, पावस–काल के जल–गुजरे कि एक या दो हजारों तक नौबत पहुँच गई है। अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि एक या दो हजार रुपये दहेज केवल बड़े घरों की बात थी, छोटी–छोटी शादियों पाँच सौ से एक हजार तक तय हो जाती थीं; अब मामूली–मामूली विवाह भी तीन–चार हजार के नीचे तय नहीं होते। खर्च का तो यह हाल है और शिक्षित समाज की निर्धनता और दरिद्रता दिन बढ़ती जाती है।

इसका अन्त क्या होगा ईश्वर ही जाने। बेटे एक दर्जन भी हों तो माता–पिता का चिंता नहीं होती। वह अपने ऊपर उनके विवाह–भार का अनिवार्य नहीं समझता, यह उसके लिए ’कम्पलसरी’ विषय नहीं, ‘आप्शनल’ विषय है। होगा तो कर देंगे; नही कह देंगे — बेटा, खाओं कमाओं, कमाई हो तो विवाह कर लेना। बेटों की कुचरित्रता कलंक की बात नहीं समझी जाती; लेकिन कन्या का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उससे भागकर कहाँ जायेंगे? अगर विवाह में विलम्ब हुआ और कन्या के पांव कहीं ऊँचे नीचे पड़ गये तो फिर कुटुम्ब की नाक कट गयी; वह पतित हो गया, टाट बाहर कर दिया गया। अगर वह इस दुर्घटना को सफलता के साथ गुप्त रख सका तब तो कोई बात नहीं; उसको कलंकित करने का किसी का साहस नहीं; लेकिन अभाग्यवश यदि वह इसे छिपा न सका, भंडाफोड़ हो गया तो फिर माता–पिता के लिए, भाई–बंधुओं के लिए संसार में मुँह दिखाने को नहीं रहता। कोई अपमान इससे दुस्सह, कोई विपत्ति इससे भीषण नहीं। किसी भी व्याधि की इससे भयंकर कल्पना नहीं की जा सकती। लुत्फ तो यह है कि जो लोग बेटियों के विवाह की कठिनाइयों को भोग चुके होते है वहीं अपने बेटों के विवाह के अवसर पर बिलकुल भूल जाते है कि हमें कितनी ठोकरें खानी पड़ी थीं, जरा भी सहानुभूति नही प्रकट करते, बल्कि कन्या के विवाह में जो तावान

उठाया था उसे चक्र–वृद्धि ब्याज के साथ बेटे के विवाह में वसूल करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं। कितने ही माता–पिता इसी चिंता में ग्रहण कर लेता है, कोई बूढ़े के गले कन्या का मढ़ कर अपना गला छुड़ाता है, पात्र–कुपात्र के विचार करने का मौका कहाँ, ठेलमठेल है।

मुंशी गुलजारीलाल ऐसे ही हतभागे पिताओं में थे। यों उनकी स्थिति बुरी न थी। दो–ढ़ाई सौ रुपये महीने वकालत से पीट लेते थे, पर खानदानी आदमी थे, उदार हृदय, बहुत किफायत करने पर भी माकूल बचत न हो सकती थी। संबंधियों का आदर–सत्कार न करें तो नहीं बनता, मित्रों की खातिरदारी न करें तो नही बनता। फिर ईश्वर के दिये हुए दो पुत्र थे, उनका पालन–पोषण, शिक्षण का भार था, क्या करते! पहली कन्या का विवाह टेढ़ी खीर हो रहा था। यह आवश्यक था कि विवाह अच्छे घराने में हो, अन्यथा लोग हँसेंगे और अच्छे घराने के लिए कम–से–कम पाँच हजार का तखमीना था। उधर पुत्री सयानी होती जाती थी। वह अनाज जो लड़के खाते थे, वह भी खाती थी; लेकिन लड़कों को देखो तो जैसे सूखे का रोग लगा हो और लड़की शुक्ल पक्ष का चाँद हो रही थी। बहुत दौड़–धूप करने पर बेचारे को एक लड़का मिला। बाप आबकारी के विभाग में 400) रुपये का नौकर था, लड़का सुशिक्षित। स्त्री से आकार बोले, लड़का तो मिला और

घर–बार एक भी काटने योग्य नहीं; पर कठिनाई यही है कि लड़का कहता है, मैं अपना विवाह न करूँगा। बाप ने समझाया, मैंने कितना समझाया, औरों ने समझाया, पर वह टस से मस नहीं होता। कहता है, मै कभी विवाह न करूँगा। समझ में नहीं आता, विवाह से क्यों इतनी घृणा करता है। कोई कारण नहीं बतलाता, बस यही कहता है, मेरी इच्छा। माँ बाप का एकलौता लड़का है। उनकी परम इच्छा है कि इसका विवाह हो जाय, पर करें क्या? यों उन्होने फलदान तो रख लिया है पर मुझसे कह दिया है कि लड़का स्वभाव का हठीला है, अगर न मानेगा तो फलदान आपको लौटा दिया जायेगा।

स्त्री ने कहा — तुमने लड़के को एकांत में बुलवाकर पूछा नहीं?

गुलजारीलाल — बुलाया था। बैठा रोता रहा, फिर उठकर चला गया। तुमसे क्या कहूँ, उसके पैरों पर गिर पड़ा; लेकिन बिना कुछ कहे उठाकर चला गया।

स्त्री — देखो, इस लड़की के पीछे क्या–क्या झेलना पड़ता है?

गुलजारीलाल — कुछ नहीं, आजकल के लौंडे सैलानी होते हैं। अंगरेजी पुस्तकों में पढ़ते है कि विलायत में कितने ही लोग अविवाहित रहना ही पसंद करते है। बस यही सनक सवार हो जाती है कि निर्द्वन्द्व रहने में ही जीवन की सुख और शांति है।

जितनी मुसीबतें है वह सब विवाह ही में है। मैं भी कालेज में था तब सोचा करता था कि अकेला रहूँगा और मजे से सैर–सपाटा करूँगा।

स्त्री — है तो वास्तव में बात यही। विवाह ही तो सारी मुसीबतों की जड़ है। तुमने विवाह न किया होता तो क्यों ये चिंताएँ होतीं? मैं भी क्वाँरी रहती तो चैन करती।

2

इसके एक महीना बाद मुंशी गुलजारीलाल के पास वर ने यह पत्र लिखा —

'पूज्यवर,

सादर प्रणाम।

मैं आज बहुत असमंजस में पड़कर यह पत्र लिखने का साहस कर रहा हूँ। इस धृष्टता को क्षमा कीजिएगा।

आपके जाने के बाद से मेरे पिताजी और माताजी दोनों मुझ पर विवाह करने के लिए नाना प्रकार से दबाव डाल रहे है। माताजी रोती है, पिताजी नाराज होते हैं। वह समझते है कि मैं अपनी जिद

के कारण विवाह से भागता हूँ। कदाचित उन्हे यह भी सन्देह हो रहा है कि मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया है। मैं वास्तविक कारण बताते हुए डरता हूँ कि इन लोगों को दुःख होगा और आश्चर्य नहीं कि शोक में उनके प्राणों पर ही बन जाय। इसलिए अब तक मैंने जो बात गुप्त रखी थी, वह आज विवश होकर आपसे प्रकट करता हूँ और आपसे साग्रह निवेदन करता हूँ कि आप इसे गोपनीय समझिएगा और किसी दशा में भी उन लोगों के कानों में इसकी भनक न पड़ने दीजिएगा। जो होना है वह तो होगा है, पहले ही से क्यों उन्हे शोक में डुबाऊँ। मुझे 5–6 महीनों से यह अनुभव हो रहा है कि मैं क्षय रोग से ग्रसित हूँ। उसके सभी लक्षण प्रकट होते जाते है। डाक्टरों की भी यही राय है। यहाँ सबसे अनुभवी जो दो डाक्टर हैं, उन दोनों ही से मैंने अपनी आरोग्य–परीक्षा करायी और दोनो ही ने स्पष्ट कहा कि तुम्हें सिल है। अगर माता–पिता से यह कह दूँ तो वह रो–रो कर मर जायेंगे। जब यह निश्चय है कि मैं संसार में थोड़े ही दिनों का मेहमान हूँ तो मेरे लिए विवाह की कल्पना करना भी पाप है। संभव है कि मैं विशेष प्रयत्न करके साल दो साल जीवित रहूँ, पर वह दशा और भी भयंकर होगी, क्योंकि अगर कोई संतान हुई तो वह भी मेरे संस्कार से अकाल मृत्यु पायेगी और कदाचित् स्त्री को भी इसी रोग–राक्षस का भक्ष्य बनना पड़े। मेरे अविवाहित

रहने से जो बीतेगी, मुझ पर बीतेगी। विवाहित हो जाने से मेरे साथ और कई जीवों का नाश हो जायगा। इसलिए आपसे मेरी प्रार्थना है कि मुझे इस बन्धन में डालने के लिए आग्रह न कीजिए, अन्यथा आपको पछताना पड़ेगा।

सेवक

'हजारीलाल।'

पत्र पढ़कर गुलजारीलाल ने स्त्री की ओर देखा और बोले — इस पत्र के विषय में तुम्हारा क्या विचार हैं।

स्त्री — मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि उसने बहाना रचा है।

गुलजारीलाल — बस-बस, ठीक यही मेरा भी विचार है। उसने समझा है कि बीमारी का बहाना कर दूँगा तो आप ही हट जायेंगे। असल में बीमारी कुछ नहीं। मैंने तो देखा ही था, चेहरा चमक रहा था। बीमार का मुँह छिपा नहीं रहता।

स्त्री — राम नाम ले के विवाह करो, कोई किसी का भाग्य थोड़े ही पढ़े बैठा है।

गुलजारीलाल — यही तो मै सोच रहा हूँ।

स्त्री — न हो किसी डाक्टर से लड़के को दिखाओं। कहीं सचमुच यह बीमारी हो तो बेचारी अम्बा कहीं की न रहे।

गुलजारीलाल–तुम भी पागल हो क्या? सब हीले–हवाले हैं। इन छोकरों के दिल का हाल मैं खूब जानता हूँ। सोचता होगा अभी सैर–सपाटे कर रहा हूँ, विवाह हो जायगा तो यह गुलछर्रे कैसे उड़ेंगे!

स्त्री — तो शुभ मुहूर्त देखकर लग्न भिजवाने की तैयारी करो।

3

हजारीलाल बड़े धर्म–संदेह में था। उसके पैरों में जबरदस्ती विवाह की बेड़ी डाली जा रही थी और वह कुछ न कर सकता था। उसने ससुर का अपना कच्चा चिट्ठा कह सुनाया; मगर किसी ने उसकी बालों पर विश्वास न किया। माँ–बाप से अपनी बीमारी का हाल कहने का उसे साहस न होता था। न जाने उनके दिल पर क्या गुजरे, न जाने क्या कर बैठें? कभी सोचता किसी डाक्टर की शहादत लेकर ससुर के पास भेज दूँ, मगर फिर ध्यान आता, यदि उन लोगों को उस पर भी विश्वास न आया, तो? आजकल डाक्टरी से सनद ले लेना कौन–सा मुश्किल काम है। सोचेंगे,

किसी डाक्टर को कुछ दे दिलाकर लिखा लिया होगा। शादी के लिए तो इतना आग्रह हो रहा था, उधर डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया था कि अगर तुमने शादी की तो तुम्हारा जीवन–सूत्र और भी निर्बल हो जाएगा। महीनों की जगह दिनों में वारा–न्यारा हो जाने की सम्भावना है।

लग्न आ चुकी थी। विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं, मेहमान आते–जाते थे और हजारीलाल घर से भागा–भागा फिरता था। कहाँ चला जाऊँ? विवाह की कल्पना ही से उसके प्राण सूख जाते थे। आह! उस अबला की क्या गति होगी? जब उसे यह बात मालूम होगी तो वह मुझे अपने मन में क्या कहेगी? कौन इस पाप का प्रायश्चित करेगा? नहीं, उस अबला पर घोर अत्याचार न करूँगा, उसे वैधव्य की आग में न जलाऊँगा। मेरी जिन्दगी ही क्या, आज न मरा कल मरूँगा, कल नहीं तो परसों, तो क्यों न आज ही मर जाऊँ। आज ही जीवन का और उसके साथ सारी चिंताओं को, सारी विपत्तियों का अन्त कर दूँ। पिता जी रोयेंगे, अम्माँ प्राण त्याग देंगी; लेकिन एक बालिका का जीवन तो सफल हो जाएगा, मेरे बाद कोई अभागा अनाथ तो न रोयेगा।

क्यों न चलकर पिताजी से कह दूँ? वह एक–दो दिन दुःखी रहेंगे, अम्माँ जी दो–एक रोज शोक से निराहार रह जायेंगी, कोई चिंता

नहीं। अगर माता–पिता के इतने कष्ट से एक युवती की प्राण–रक्षा हो जाए तो क्या छोटी बात है?

यह सोचकर वह धीरे से उठा और आकर पिता के सामने खड़ा हो गया।

रात के दस बज गये थे। बाबू दरबारीलाल चारपाई पर लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। आज उन्हे सारा दिन दौड़ते गुजरा था। शामियाना तय किया; बाजे वालों को बयाना दिया; आतिशबाजी, फुलवारी आदि का प्रबन्ध किया। घंटो ब्राह्मणों के साथ सिर मारते रहे, इस वक्त जरा कमर सीधी कर रहें थे कि सहसा हजारीलाल को सामने देखकर चौंक पड़ें। उसका उतरा हुआ चेहरा सजल आँखें और कुंठित मुख देखा तो कुछ चिंतित होकर बोले — क्यों लालू, तबीयत तो अच्छी है न? कुछ उदास मालूम होते हो।

हजारीलाल — मै आपसे कुछ कहना चाहता हूँ; पर भय होता है कि कहीं आप अप्रसन्न न हों।

दरबारीलाल — समझ गया, वही पुरानी बात है न? उसके सिवा कोई दूसरी बात हो शौक से कहो।

हजारीलाल — खेद है कि मैं उसी विषय में कुछ कहना चाहता हूँ।

दरबारीलाल — यही कहना चाहता हो न मुझे इस बन्धन में न डालिए, मैं इसके अयोग्य हूँ, मै यह भार सह नहीं सकता, बेड़ी मेरी गर्दन को तोड़ देगी, आदि या और कोई नई बात?

हजारीलाल — जी नहीं नई बात है। मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए सब प्रकार तैयार हूँ; पर एक ऐसी बात है, जिसे मैने अब तक छिपाया था, उसे भी प्रकट कर देना चाहता हूँ। इसके बाद आप जो कुछ निश्चय करेंगे उसे मैं शिरोधार्य करूँगा।

हजारीलाल ने बड़े विनीत शब्दों में अपना आशय कहा, डाक्टरों की राय भी बयान की और अन्त में बोलें — ऐसी दशा में मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे विवाह करने के लिए बाध्य न करेंगें। दरबारीलाल ने पुत्र के मुख की और गौर से देखा, कहे जर्दी का नाम न था, इस कथन पर विश्वास न आया; पर अपना अविश्वास छिपाने और अपना हार्दिक शोक प्रकट करने के लिए वह कई मिनट तक गहरी चिंता में मग्न रहे। इसके बाद पीड़ित कंठ से बोले — बेटा, इस दशा में तो विवाह करना और भी आवश्यक है। ईश्वर न करें कि हम वह बुरा दिन देखने के लिए जीते रहे, पर विवाह हो जाने से तुम्हारी कोई निशानी तो रह जाएगी। ईश्वर ने कोई संतान दे दी तो वही हमारे बुढ़ापे की लाठी होगी, उसी का मुँह देखरेख कर दिल को समझायेंगे, जीवन का कुछ आधार तो रहेगा। फिर आगे क्या होगा, यह कौन कह

सकता है? डाक्टर किसी की कर्म–रेखा तो नहीं पढ़ते, ईश्वर की लीला अपरम्पार है, डाक्टर उसे नहीं समझ सकते। तुम निश्चिंत होकर बैठों, हम जो कुछ करते है, करने दो। भगवान चाहेंगे तो सब कल्याण ही होगा।

हजारीलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। आँखें डबडबा आयीं, कंठावरोध के कारण मुँह तक न खोल सका। चुपके से आकर अपने कमरे मे लेट रहा।

तीन दिन और गुजर गये, पर हजारीलाल कुछ निश्चय न कर सका। विवाह की तैयारियों में रखे जा चुके थे। आँगन मे मंडप गड़ गया था, डाल, गहने सन्दूकों में रखे जा चुके थे। मैत्रेयी की पूजा हो चूकी थी और द्वार पर बाजों का शोर मचा हुआ था। मुहल्ले के लड़के जमा होकर बाजा सुनते थे और उल्लास से इधर–उधर दौड़ते थे।

संध्या हो गयी थी। बरात आज रात की गाड़ी से जाने वाली थी। बरातियों ने अपने वस्त्राभूषण पहनने शुरु किये। कोई नाई से बाल बनवाता था और चाहता था कि खत ऐसा साफ हो जाय मानों वहाँ बाल कभी थे ही नहीं, बूढ़े अपने पके बाल को उखड़वाकर जवान बनने की चेष्टा कर रहे थे। तेल, साबुन,

उबटन की लूट मची हुई थी और हजारीलाल बगीचे मे एक वृक्ष के नीचे उदास बैठा हुआ सोच रहा था, क्या करूँ?

अन्तिम निश्चय की घड़ी सिर पर खड़ी थी। अब एक क्षण भी विलम्ब करने का मौका न था। अपनी वेदना किससे कहें, कोई सुनने वाला न था।

उसने सोचा हमारे माता–पिता कितने अदूरदर्शी है, अपनी उमंग में इन्हे इतना भी नही सूझता कि वधु पर क्या गुजरेगी। वधू के माता–पिता कितने अदूरदर्शी है, अपनी उमंग मे भी इतने अन्धे हो रहे है कि देखकर भी नहीं देखते, जान कर नहीं जानते।

क्या यह विवाह है? कदापि नहीं। यह तो लड़की का कुएँ में डालना है, भाड़ मे झोंकना है, कुन्द छुरे से रेतना है। कोई यातना इतनी दुस्सह, कर अपनी पुत्री का वैधव्य के अग्नि–कुंड में डाल देते है। यह माता–पिता है? कदापि नहीं। यह लड़की के शत्रु है, कसाई है, बधिक हैं, हत्यारे है। क्या इनके लिए कोई दण्ड नहीं? जो जानबूझ कर अपनी प्रिय संतान के खून से अपने हाथ रंगते है, उसके लिए कोई दंड नहीं? समाज भी उन्हे दंड नहीं देता, कोई कुछ नहीं कहता। हाय!

यह सोचकर हजारीलाल उठा और एक ओर चुपचाप चल दिया। उसके मुख पर तेज छाया हुआ था। उसने आत्म–बलिदान से

इस कष्ट का निवारण करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। उसे मृत्यु का लेशमात्र भी भय न था। वह उस दशा का पहुँच गया था जब सारी आशाएँ मृत्यु पर ही अवलम्बित हो जाती है।

उस दिन से फिर किसी ने हजारीलाल की सूरत नहीं देखी। मालूम नहीं जमीन खा गई या आसमान। नदियों मे जाल डाले गए, कुँओं में बांस पड़ गए, पुलिस में हुलिया गया, समाचार–पत्रों मे विज्ञप्ति निकाली गई, पर कहीं पता न चला।

कई हफ्तों के बाद, छावनी रेलवे से एक मील पश्चिम की ओर सड़क पर कुछ हड्डियाँ मिलीं। लोगो को अनुमान हुआ कि हजारीलाल ने गाड़ी के नीचे दबकर जान दी, पर निश्चित रूप से कुछ न मालूम हुआ।

4

भादों का महीना था और तीज का दिन था। घरों में सफाई हो रही थी। सौभाग्यवती रमणियाँ सोलहों श्रृंगार किए गंगा–स्नान करने जा रही थीं। अम्बा स्नान करके लौट आयी थी और तुलसी के कच्चे चबूतरे के सामने खड़ी वंदना कर रही थी। पतिगृह में उसे यह पहली ही तीज थी, बड़ी उमंगों से व्रत रखा

था। सहसा उसके पति ने अन्दर आ कर उसे सहास नेत्रों से देखा और बोला — मुंशी दरबारी लाल तुम्हारे कौन होते है, यह उनके यहाँ से तुम्हारे लिए तीज पठौनी आयी है। अभी डाकिया दे गया है।

यह कहकर उसने एक पार्सल चारपाई पर रख दिया।
दरबारीलाल का नाम सुनते ही अम्बा की आँखें सजल हो गयीं। वह लपकी हुई आयी और पार्सल स्मृतियाँ जीवित हो गयीं, हृदय में हजारीलाल के प्रति श्रद्धा का एक उद्‌गार-सा उठ पड़ा। आह! यह उसी देवात्मा के आत्मबलिदान का पुनीत फल है कि मुझे यह दिन देखना नसीब हुआ। ईश्वर उन्हे सद्‌गति दें। वह आदमी नहीं, देवता थे, जिसने अपने कल्याण के निमित्त अपने प्राण तक समर्पण कर दिए।

पति ने पूछा — दरबारी लाल तुम्हारी चचा हैं।

अम्बा — हाँ।

पति — इस पत्र में हजारीलाल का नाम लिखा है, यह कौन है?

अम्बा — यह मुंशी दरबारी लाल के बेटे हैं।

पति — तुम्हारे चचेरे भाई?

अम्बा — नहीं, मेरे परम दयालु उद्धारक, जीवनदाता, मुझे अथाह जल में डूबने से बचाने वाले, मुझे सौभाग्य का वरदान देने वाले।

पति ने इस भाव कहा मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो — आह! मैं समझ गया। वास्तव में वह मनुष्य नहीं देवता थे।

निर्वासन

.

परशुराम —वहीं — वहीं दालान में ठहरो!

मर्यादा — क्यों, क्या मुझमें कुछ छूत लग गई!

परशुराम — पहले यह बताओं तुम इतने दिनों से कहाँ रहीं, किसके साथ रहीं, किस तरह रहीं और फिर यहाँ किसके साथ आयीं? तब, तब विचार...देखी जाएगी।

मर्यादा — क्या इन बातों को पूछने का यही वक्त है; फिर अवसर न मिलेगा?

परशुराम — हाँ, यही बात है। तुम स्नान करके नदी से तो मेरे साथ ही निकली थीं। मेरे पीछे–पीछे कुछ देर तक आयीं भी; मै पीछे फिर–फिर कर तुम्हें देखता जाता था,फिर एकाएक तुम कहाँ गायब हो गयीं?

मर्यादा — तुमने देखा नहीं, नागा साधुओं का एक दल सामने से आ गया। सब आदमी इधर–उधर दौड़ने लगे। मै भी धक्के में पड़कर जाने किधर चली गई। जरा भीड़ कम हुई तो तुम्हें ढूँढ़ने

लगी। बासू का नाम ले-ले कर पुकारने लगी, पर तुम न दिखाई दिये।

परशुराम — अच्छा तब?

मर्यादा — तब मै एक किनारे बैठकर रोने लगी, कुछ सूझ ही न पड़ता कि कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ, आदमियों से डर लगता था। संध्या तक वहीं बैठी रोती रही।

परशुराम — इतना तूल क्यों देती हो? वहाँ से फिर कहाँ गयीं?

मर्यादा — संध्या को एक युवक ने आ कर मुझसे पूछा, तुम्हारे घर के लोग कहीं खो तो नहीं गए है? मैने कहा — हाँ। तब उसने तुम्हारा नाम, पता, ठिकाना पूछा। उसने सब एक किताब पर लिख लिया और मुझसे बोला — मेरे साथ आओ, मै तुम्हें तुम्हारे घर भेज दूँगा।

परशुराम — वह आदमी कौन था?

मर्यादा — वहाँ की सेवा-समिति का स्वयंसेवक था।

परशुराम —तो तुम उसके साथ हो लीं?

मर्यादा — और क्या करती? वह मुझे समिति के कार्यालय में ले गया। वहाँ एक शामियाने में एक लम्बी दाढ़ीवाला मनुष्य बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। वही उन सेवकों का अध्यक्ष था। और

भी कितने ही सेवक वहाँ खड़े थे। उसने मेरा पता–ठिकाना रजिस्टर में लिखकर मुझे एक अलग शामियाने में भेज दिया, जहाँ और भी कितनी खोयी हुई स्त्रियों बैठी हुई थीं।

परशुराम — तुमने उसी वक्त अध्यक्ष से क्यों न कहा कि मुझे पहुँचा दीजिए?

मर्यादा — मैंने एक बार नहीं सैंकड़ों बार कहा; लेकिन वह यह कहते रहे, जब तक मेला न खत्म हो जाए और सब खोयी हुई स्त्रियाँ एकत्र न हो जाएँ, मैं भेजने का प्रबन्ध नहीं कर सकता। मेरे पास न इतने आदमी हैं, न इतना धन?

परशुराम — धन की तुम्हें क्या कमी थी, कोई एक सोने की चीज बेच देती तो काफी रुपए मिल जाते।

मर्यादा — आदमी तो नहीं थे।

परशुराम — तुमने यह कहा था कि खर्च की कुछ चिन्ता न कीजिए, मैं अपने गहने बेचकर अदा कर दूँगी?

मर्यादा — सब स्त्रियाँ कहने लगीं, घबरायी क्यों जाती हो? यहाँ किस बात का डर है। हम सभी जल्द अपने घर पहुँचना चाहती है; मगर क्या करें? तब मैं भी चुप हो रही।

परशुराम — और सब स्त्रियाँ कुएँ में गिर पड़ती तो तुम भी गिर पड़ती?

मर्यादा — जानती तो थी कि यह लोग धर्म के नाते मेरी रक्षा कर रहे हैं, कुछ मेरे नौकरी या मजूर नहीं हैं, फिर आग्रह किस मुँह से करती? यह बात भी है कि बहुत-सी स्त्रियों को वहाँ देखकर मुझे कुछ तसल्ली हो गई।

परशुराम — हाँ, इससे बढ़कर तस्कीन की और क्या बात हो सकती थी? अच्छा, वहाँ के दिन तस्कीन का आनन्द उठाती रही? मेला तो दूसरे ही दिन उठ गया होगा?

मर्यादा — रात- भर मैं स्त्रियों के साथ उसी शामियाने में रही।

परशुराम — अच्छा, तुमने मुझे तार क्यों न दिलवा दिया?

मर्यादा — मैंने समझा, जब यह लोग पहुँचाने की कहते ही हैं तो तार क्यों दूँ?

परशुराम — खैर, रात को तुम वहीं रही। युवक बार-बार भीतर आते रहे होंगे?

मर्यादा — केवल एक बार एक सेवक भोजन के लिए पूछने आयास था, जब हम सबों ने खाने से इन्कार कर दिया तो वह चला गया और फिर कोई न आया। मैं रात-भर जगती रही।

परशुराम — यह मैं कभी न मानूँगा कि इतने युवक वहाँ थे और कोई अन्दर न गया होगा। समिति के युवक आकाश के देवता नहीं होते। खैर, वह दाढ़ी वाला अध्यक्ष तो जरूर ही देखभाल करने गया होगा?

मर्यादा — हाँ, वह आते थे। पर द्वार पर से पूछ-पूछ कर लौट जाते थे। हाँ, जब एक महिला के पेट में दर्द होने लगा था तो दो-तीन बार दवाएँ पिलाने आए थे।

परशुराम — निकली न वही बात! मै इन धूर्तों की नस-नस पहचानता हूँ। विशेषकर तिलक-मालाधारी दढ़ियलों को मैं गुरू घंटाल ही समझता हूँ। तो वे महाशय कई बार दवाई देने गये? क्यों तुम्हारे पेट में तो दर्द नहीं होने लगा था?

मर्यादा — तुम एक साधु पुरूष पर आक्षेप कर रहे हो। वह बेचारे एक तो मेरे बाप के बराबर थे, दूसरे आँखें नीची किए रहने के सिवाय कभी किसी पर सीधी निगाह नहीं करते थे।

परशुराम — हाँ, वहाँ सब देवता ही देवता जमा थे। खैर, तुम रात-भर वहाँ रहीं। दूसरे दिन क्या हुआ?

मर्यादा — दूसरे दिन भी वहीं रही। एक स्वयंसेवक हम सब स्त्रियों को साथ में लेकर मुख्य-मुख्य पवित्र स्थानों का दर्शन कराने गया। दो पहर को लौट कर सबों ने भोजन किया।

परशुराम — तो वहाँ तुमने सैर–सपाटा भी खूब किया, कोई कष्ट न होने पाया। भोजन के बाद गाना–बजाना हुआ होगा?

मर्यादा — गाना बजाना तो नहीं, हाँ, सब अपना–अपना दुखड़ा रोती रहीं, शाम तक मेला उठ गया तो दो सेवक हम लोगों को ले कर स्टेशन पर आए।

परशुराम — मगर तुम तो आज सातवें दिन आ रही हो और वह भी अकेली?

मर्यादा — स्टेशन पर एक दुर्घटना हो गयी।

परशुराम — हाँ, यह तो मैं समझ ही रहा था। क्या दुर्घटना हुई?

मर्यादा — जब सेवक टिकट लेने जा रहा था, तो एक आदमी ने आ कर उससे कहा — यहाँ गोपीनाथ के धर्मशाला में एक आदमी ठहरे हुए हैं, उनकी स्त्री खो गयी है, उनका भला–सास नाम है, गोरे–गोरे लम्बे–से खूबसूरत आदमी हैं, लखनऊ मकान है, झवाई टोले में। तुम्हारा हुलिया उसने ऐसा ठीक बयान किया कि मुझे उस पर विश्वास आ गया। मैं सामने आकर बोली, तुम बाबूजी को जानते हो? वह हँसकर बोला, जानता नहीं हूँ तो तुम्हें तलाश क्यो करता फिरता हूँ। तुम्हारा बच्चा रो–रो कर हलकान हो रहा है। सब औरतें कहने लगीं, चली जाओं, तुम्हारे स्वामीजी घबरा रहे होंगे। स्वयंसेवक ने उससे दो–चार बातें पूछ कर मुझे

उसके साथ कर दिया। मुझे क्या मालूम था कि मैं किसी नर–पिशाच के हाथों पड़ी जाती हूँ। दिल में खुशी थी कि अब बासू को देखूँगी तुम्हारे दर्शन करूँगी। शायद इसी उत्सुकता ने मुझे असावधान कर दिया।

परशुराम — तो तुम उस आदमी के साथ चल दी? वह कौन था?

मर्यादा — क्या बतलाऊँ कौन था? मैं तो समझती हूँ, कोई दलाल था?

परशुराम — तुम्हें यह न सूझी कि उससे कहतीं, जा कर बाबू जी को भेज दो?

मर्यादा — अदिन आते हैं तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

परशुराम — कोई आ रहा है।

मर्यादा — मैं गुसलखाने में छिपी जाती हूँ।

परशुराम —आओ भाभी, क्या अभी सोयी नहीं, दस तो बज गए होंगे।

भाभी — वासुदेव को देखने को जी चाहता था भैया, क्या सो गया?

परशुराम — हाँ, वह तो अभी रोते–रोते सो गया।

भाभी — कुछ मर्यादा का पता मिला? अब पता मिले तो भी तुम्हारे किस काम की। घर से निकली स्त्रियाँ थान से छूटी हुई घोड़ी हैं। जिसका कुछ भरोसा नहीं।

परशुराम — कहाँ से कहाँ लेकर मैं उसे नहाने लगा।

भाभी — होनहार हैं, भैया होनहार। अच्छा, तो मै जाती हूँ।

मर्यादा — (बाहर आकर) होनहार नहीं हूँ, तुम्हारी चाल है। वासुदेव को प्यार करने के बहाने तुम इस घर पर अधिकार जमाना चाहती हो।

परशुराम —बको मत! वह दलाल तुम्हें कहाँ ले गया।

मर्यादा — स्वामी, यह न पूछिए, मुझे कहते लज्जा आती है।

परशुराम — यहाँ आते तो और भी लज्जा आनी चाहिए थी।

मर्यादा — मै परमात्मा को साक्षी देती हूँ, कि मैंने उसे अपना अंग भी स्पर्श नहीं करने दिया।

परशुराम — उसका हुलिया बयान कर सकती हो।

मर्यादा — साँवला सा छोटे डील डौल का आदमी था। नीचा कुरता पहने हुए था।

परशुराम — गले में ताबीज भी थी?

मर्यादा — हाँ,थी तो।

परशुराम — वह धर्मशाले का मेहतर था।मैंने उसे तुम्हारे गुम हो जाने की चर्चा की थी। वह उस दुष्ट ने उसका वह स्वाँग रचा।

मर्यादा — मुझे तो वह कोई ब्राह्मण मालूम होता था।

परशुराम — नहीं मेहतर था। वह तुम्हें अपने घर ले गया?

मर्यादा — हाँ, उसने मुझे तांगे पर बैठाया और एक तंग गली में, एक छोटे- से मकान के अन्दर ले जाकर बोला, तुम यहीं बैठो, तुम्हारे बाबूजी यहीं आयेंगे। अब मुझे विदित हुआ कि मुझे धोखा दिया गया। रोने लगी। वह आदमी थोड़ी देर बाद चला गया और एक बुढ़िया आ कर मुझे भाँति–भाँति के प्रलोभन देने लगी। सारी रात रो–रोकर काटी दूसरे दिन दोनों फिर मुझे समझाने लगे कि रो–रो कर जान दे दोगी, मगर यहाँ कोई तुम्हारी मदद को न आयेगा। तुम्हारा एक घर छूट गया। हम तुम्हें उससे कहीं अच्छा घर देंगे जहाँ तुम सोने के कौर खाओगी और सोने से लद जाओगी। लब मैंने देखा कि यहाँ से किसी तरह नहीं निकल सकती तो मैंने कौशल करने का निश्चय किया।

परशुराम — खैर, सुन चुका। मैं तुम्हारा ही कहना मान लेता हूँ कि तुमने अपने सतीत्व की रक्षा की, पर मेरा हृदय तुमसे घृणा

करता है, तुम मेरे लिए फिर वह नहीं निकल सकती जो पहले थीं। इस घर में तुम्हारे लिए स्थान नहीं है।

मर्यादा — स्वामी जी, यह अन्याय न कीजिए, मैं आपकी वही स्त्री हूँ जो पहले थी। सोचिए मेरी दशा क्या होगी?

परशुराम — मै यह सब सोच चुका और निश्चय कर चुका। आज छः दिन से यह सोच रहा हूँ। तुम जानती हो कि मुझे समाज का भय नहीं। छूत-विचार को मैंने पहले ही तिलांजलि दे दी, देवी-देवताओं को पहले ही विदा कर चुका, पर जिस स्त्री पर दूसरी निगाहें पड चुकी, जो एक सप्ताह तक न-जाने कहाँ और किस दशा में रही, उसे अंगीकार करना मेरे लिए असम्भव है। अगर अन्याय है तो ईश्वर की ओर से है, मेरा दोष नहीं।

मर्यादा — मेरी विवशता पर आपको जरा भी दया नहीं आती?

परशुराम — जहाँ घृणा है, वहाँ दया कहाँ? मै अब भी तुम्हारा भरण-पोषण करने को तैयार हूँ। जब तक जीऊँगा, तुम्हें अन्न-वस्त्र का कष्ट न होगा पर तुम मेरी स्त्री नहीं हो सकतीं।

मर्यादा — मैं अपने पुत्र का मुँह न देखूँ अगर किसी ने स्पर्श भी किया हो।

परशुराम — तुम्हारा किसी अन्य पुरूष के साथ क्षण-भर भी एकान्त में रहना तुम्हारे पतिव्रत को नष्ट करने के लिए बहुत है। यह विचित्र बंधन है, रहे तो जन्म-जन्मान्तर तक रहे, टूटे तो क्षण-भर में टूट जाए। तुम्हीं बताओं, किसी मुसलमान ने जबरदस्ती मुझे अपना उच्छिष्ट भोजन खिला दिया होता तो मुझे स्वीकार करतीं?

मर्यादा — वह.... वह.. तो दूसरी बात है।

परशुराम — नहीं, एक ही बात है। जहाँ भावों का संबंध है, वहाँ तर्क और न्याय से काम नहीं चलता। यहाँ तक अगर कोई कह दे कि तुम्हारे पानी को मेहतर ने छू लिया है तब भी उसे ग्रहण करने से तुम्हें घृणा आयेगी। अपने ही दिन से सोचो कि तुम्हारे साथ न्याय कर रहा हूँ या अन्याय।

मर्यादा — मै तुम्हारी छुई चीजें न खाती, तुमसे पृथक रहती पर तुम्हें घर से तो न निकाल सकती थी। मुझे इसलिए न दुत्कार रहे हो कि तुम घर के स्वामी हो और कि मैं इसका पालन करता हूँ।

परशुराम — यह बात नहीं है। मै इतना नीच नहीं हूँ।

मर्यादा — तो तुम्हारा यहीं अंतिम निश्चय है?

परशुराम — हाँ, अंतिम।

मर्यादा — जानते हो इसका परिणाम क्या होगा?

परशुराम — जानता भी हूँ और नहीं भी जानता।

मर्यादा — मुझे वासुदेव ले जाने दोगे?

परशुराम — वासुदेव मेरा पुत्र है।

मर्यादा — उसे एक बार प्यार कर लेने दोगे?

परशुराम — अपनी इच्छा से नहीं, तुम्हारी इच्छा हो तो दूर से देख सकती हो।

मर्यादा — तो जाने दो, न देखूँगी। समझ लूँगी कि विधवा हूँ और बांझ भी। चलो मन, अब इस घर में तुम्हारा निबाह नहीं है। चलो जहाँ भाग्य ले जाय।

नैराश्य लीला

.

पंडित हृदयनाथ अयोध्या के एक सम्मानित पुरूष थे। धनवान तो नहीं लेकिन खाने–पीने से खुश थे। कई मकान थे, उन्ही के किराये पर गुजर होता था। इधर किराये बढ़ गये थे, उन्होंने अपनी सवारी भी रख ली थी। बहुत विचार शील आदमी थे, अच्छी शिक्षा पायी थी। संसार का काफी तजुरबा था, पर क्रियात्मक शक्ति से वंचित थे, सब कुछ न जानते थे। समाज उनकी आँखों में एक भयंकर भूत था जिससे सदैव डरना चाहिए। उसे जरा भी रुष्ट किया तो फिर जाने की खैर नहीं। उनकी स्त्री जागेश्वरी उनका प्रतिबिम्ब, पति के विचार उसके विचार और पति की इच्छा उसकी इच्छा थी, दोनों प्राणियों में कभी मतभेद न होता था। जागेश्चरी शिव की उपासक थी। हृदयनाथ वैष्णव थे, दोनो धर्मनिष्ठ थे। उससे कहीं अधिक ,जितने सामान्यतः शिक्षित लोग हुआ करते है। इसका कदाचित् यह कारण था कि एक कन्या के सिवा उनके और कोई सन्तान न थी। उनका विवाह तेरहवें वर्ष में हो गया था और माता–पिता की अब यही लालसा

थी कि भगवान इसे पुत्रवती करें तो हम लोग नवासे के नाम अपना सब–कुछ लिख–लिखाकर निश्चिन्त हो जायें।

किन्तु विधाता को कुछ और ही मंजूर था। कैलाश कुमारी का अभी गौना भी न हुआ था, वह अभी तक यह भी न जानने पायी थी कि विवाह का आशय क्या है कि उसका सोहाग उठ गया। वैधव्य ने उसके जीवन की अभिलाषाओं का दीपक बुझा दिया।

माता और पिता विलाप कर रहे थे, घर में कुहराम मचा हुआ था, पर कैलाशकुमारी भौंचक्की हो–होकर सबके मुँह की ओर ताकती थी। उसकी समझ में यह न आता था कि ये लोग रोते क्यों हैं। माँ बाप की इकलौती बेटी थी। माँ–बाप के अतिरिक्त वह किसी तीसरे व्यक्ति को अपने लिए आवश्यक न समझती थी। उसकी सुख कल्पनाओं में अभी तक पति का प्रवेश न हुआ था। वह समझती थी, स्त्रियाँ पति के मरने पर इसलिए रोती है कि वह उनका और बच्चों का पालन करता है। मेरे घर में किस बात की कमी है? मुझे इसकी क्या चिन्ता है कि खायेंगे क्या, पहनेंगे क्या? मुझे जिस चीज की जरूरत होगी बाबूजी तुरन्त ला देंगे, अम्मा से जो चीज मागूँगी वह दे देंगी। फिर रोऊँ क्यों? वह अपनी माँ को रोते देखती तो रोती, पति के शोक से नहीं, माँ के प्रेम से। कभी सोचती, शायद यह लोग इसलिए रोते हैं कि कहीं मैं कोई ऐसी चीज न माँग बैठूँ जिसे वह दे न सकें। तो मै ऐसी

चीज माँगूँगी ही क्यो? मै अब भी तो उन से कुछ नहीं माँगती, वह आप ही मेरे लिए एक न एक चीज नित्य लाते रहते हैं? क्या मैं अब कुछ और हो जाऊँगीं? इधर माता का यहाँ हाल था कि बेटी की सूरत देखते ही आँखों से आँसू की झडी लग जाती। बाप की दशा और भी करुणाजनक थी। घर में आना-जाना छोड़ दिया। सिर पर हाथ धरे कमरे में अकेले उदास बैठे रहते। उसे विशेष दुःख इस बात का था कि सहेलियाँ भी अब उसके साथ खेलने न आती। उसने उनके घर लाने की माता से आज्ञा माँगी तो फूट-फूट कर रोने लगीं माता-पिता की यह दशा देखी तो उसने उनके सामने जाना छोड़ दिया, बैठी किस्से कहानियाँ पढ़ा करती। उसकी एकान्तप्रियता का माँ-बाप ने कुछ और ही अर्थ समझा। लड़की शोक के मारे घुली जाती है, इस वज्राघात ने उसके हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर डाला है।

एक दिन हृदयनाथ ने जागेश्वरी से कहा — जी चाहता है घर छोड़कर कहीं भाग जाऊँ। इसका कष्ट अब नहीं देखा जाता।

जागेश्वरी — मेरी तो भगवान से यही प्रार्थना है कि मुझे संसार से उठा लें। कहाँ तक छाती पर पत्थर की सिल रखूँ।

हृदयनाथ — किसी भाँति इसका मन बहलाना चाहिए, जिसमें शोकमय विचार आने ही न पायें। हम लोगों को दुःखी और रोते देख कर उसका दुःख और भी दारुण हो जाता है।

जागेश्वरी — मेरी तो बुद्धि कुछ काम नहीं करती।

हृदयनाथ — हम लोग यों ही मातम करते रहे तो लड़की की जान पर बन जायेगी। अब कभी कभी थिएटर दिखा दिया, कभी घर में गाना-बजाना करा दिया। इन बातों से उसका दिल बहलता रहेगा।

जागेशवरी — मै तो उसे देखते ही रो पड़ती हूँ। लेकिन अब जब्त करूँगी तुम्हारा विचार बहुत अच्छा है। विना दिल बहलाव के उसका शोक न दूर होगा।

हृदयनाथ — मैं भी अब उससे दिल बहलाने वाली बातें किया करूँगा। कल एक सैरबीं लाऊगा, अच्छे-अच्छे दृश्य जमा करूँगा। ग्रामोफोन तो अज ही मँगवाये देता हूँ। बस उसे हर वक्त किसी न किसी कात में लगाये रहना चाहिए। एकान्तवास शोक-ज्वाला के लिए समीर के समान है।

उस दिन से जागेश्वरी ने कैलाश कुमारी के लिए विनोद और प्रमोद के समान जमा करने शुरू किये। कैलासी माँ के पास आती तो उसकी आँखों में आँसू की बूँदे न देखती, होठों पर हँसी

की आभा दिखाई देती। वह मुस्करा कर कहती —बेटी, आज थिएटर में बहुत अच्छा तमाशा होने वाला है, चलो देख आयें। कभी गंगा–स्नान की ठहरती, वहाँ माँ–बेटी किश्ती पर बैठकर नदी में जल विहार करतीं, कभी दोनों संध्या–समय पार्क की ओर चली जातीं। धीरे–धीरे सहेलियाँ भी आने लगीं। कभी सब की सब बैठकर ताश खेलतीं। कभी गाती–बजातीं। पण्डित हृदय नाथ ने भी विनोद की सामग्रियाँ जुटायीं। कैलासी को देखते ही मग्न होकर बोलते — बेटी आओ, तुम्हें आज काश्मीर के दृश्य दिखाऊँ, कभी ग्रामोफोन बजाकर उसे सुनाते। कैलासी इन सैर–सपाटों का खूब आनन्द उठाती। इतने सुख से उसके दिन कभी न गुजरे थे।

2

इस भाँति दो वर्ष बीत गये। कैलासी सैर–तमाशे की इतनी आदि हो गयी कि एक दिन भी थिएटर न जाती तो बेकल–सी होने लगती। मनोरंजन नवीननता का दास है और समानता का शत्रु। थिएटरों के बाद सिनेमा की सनक सवार हुई। सिनेमा के बाद मिस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म के तमाशों की सनक सवार हुई।

सिनेमा के बाद मिस्मेरिज्म और हिप्नोटिज्म के तमाशों की। ग्रामोफोन के नये रिकार्ड आने लगे। संगीत का चस्का पड गया। बिरादरी में कहीं उत्सव होता तो माँ–बेटी अवश्य जातीं। कैलासी नित्य इसी नशे में डूबी रहती, चलती तो कुछ गुनगुनती हुई, किसी से बातें करती तो वही थिएटर की और सिनेमा की। भौतिक संसार से अब कोई वास्ता न था, अब उसका निवास कल्पना संसार में था। दूसरे लोक की निवासिनी होकर उसे प्राणियों से कोई सहानुभूति न रहीं, किसी के दुःख पर जरा दया न आती। स्वभाव में उच्छृंखलता का विकास हुआ, अपनी सुरुचि पर गर्व करने लगी। सहेलियों से डींगे मारती, यहाँ के लोग मूर्ख है, यह सिनेमा की कद्र क्या करेंगें। इसकी कद्र तो पश्चिम के लोग करते है। वहाँ मनोरंजन की सामग्रियाँ उतनी ही आवश्यक है जितनी हवा। जभी तो वे उतने प्रसन्न–चित्त रहते है, मानो किसी बात की चिंता ही नहीं। यहाँ किसी को इसका रस ही नहीं। जिन्हें भगवान ने सामर्थ्य भी दिया है वह भी सरेशाम से मुँह ढाँक कर पड़े रहते हैं। सहेलियाँ कैलासी की यह गर्व–पूर्ण बातें सुनतीं और उसकी और भी प्रशंसा करतीं। वह उनका अपमान करने के आवेश में आप ही हास्यास्पद बन जाती थी।

पड़ोसियों में इन सैर–सपाटों की चर्चा होने लगी। लोक–सम्मति किसी की रिआयत करती। किसी ने सिर पर टोपी टेढी रखी

और पड़ोसियों की आँखों में खुबा कोई जरा अकड़कर चला और पड़ोसियों ने आवाजें कसीं। विधवा के लिए पूजा–पाठ है, तीर्थ–व्रत है, मोटा खाना पहनना है, उसे विनोद और विलास, राग और रंग की क्या जरूरत? विधाता ने उसके द्वार बन्द कर दिये है। लड़की प्यारी सही, लेकिन शर्म और हया भी कोई चीज होती है। जब माँ–बाप ही उसे सिर चढ़ाये हुए है तो उसका क्या दोष? मगर एक दिन आँखें खुलेगी अवश्य। महिलाएँ कहतीं, बाप तो मर्द है, लेकिन माँ कैसी है। उसको जरा भी विचार नहीं कि दुनियाँ क्या कहेगी। कुछ उन्हीं की एक दुलारी बेटी थोडे ही है, इस भांति मन बढाना अच्छा नहीं।

कुछ दिनों तक तो यह खिचड़ी आपस में पकती रही। अन्त को एक दिन कई महिलाओं ने जागेश्वरी के घर पदार्पण किया। जागेश्वरी ने उनका बड़ा आदर–सत्कार किया। कुछ देर तक इधर–उधर की बातें करने के बाद एक महिला बोली — महिलाएँ रहस्य की बातें करने में बहुत अभ्यस्त होती है — बहन, तुम्हीं मजे में हो कि हँसी–खुशी में दिन काट देती हो। हमें तो दिन पहाड़ हो जाता है। न कोई काम न धंधा, कोई कहाँ तक बातें करें?

दूसरी देवी ने आँखें मटकाते हुए कहा — अरे, तो यह तो बदे की बात है। सभी के दिन हँसी–खुशी से कटें तो रोये कौन। यहाँ

तो सुबह से शाम तक चक्की–चूल्हे से छुट्टी नहीं मिलती, किसी बच्चे को दस्त आ रहें तो किसी को ज्वर चढा हुआ हैः कोई मिठाइयों की रट कहा हैः तो कोई पैसों के लिए महनामथ मचाये हुए है। दिन भर हाय–हाय करते बीत जाता है। सारे दिन कठपुतलियों की भांति नाचती रहती हूँ।

तीसरी रमणी ने इस कथन का रहस्यमय भाव से विरोध किया — बदे की बात नहीं, वैसा दिल चाहिए। तुम्हें तो कोई राजसिंहासन पर बिठा दे तब भी तस्कीन न होगी। तब और भी हाय–हाय करोगी।

इस पर एक वृद्धा ने कहा — नौज ऐसा दिल! यह भी कोई दिल है कि घर में चाहे आग लग जाय, दुनिया में कितना ही उपहास हो रहा हो, लेकिन आदमी अपने राग–रंग में मस्त रह। वह दिल है कि पत्थर! हम गृहिणी कहलाती है, हमारा काम है अपनी गृहस्थी में रत रहना। आमोद–प्रमोद में दिन काटना हमारा काम नहीं।

और महिलाओं ने इन निर्दय व्यंग्य पर लज्जित हो कर सिर झुका लिया। वे जागेश्वरी की चुटकियाँ लेना चाहती थीं। उसके साथ बिल्ली और चूहे की निर्दयी क्रीडा करना चाहती थीं। आहत को तड़पाना उनका उद्देश्य था। इस खुली हुई चोट ने उनके

पर–पीड़न प्रेम के लिए कोई गुंजाइश न छोड़ी। किंतु जागेश्वरी को ताड़ना मिल गयी। स्त्रियों के विदा होने के बाद उसने जाकर पति से यह सारी कथा सुनायी। हृदयनाथ उन पुरूषों में न थे जो प्रत्येक अवसर पर अपनी आत्मिक स्वाधीनता का स्वाँग भरते है, हठधर्मी को आत्म–स्वातन्त्र्य के नाम से छिपाते है। वह सचिन्त भाव से बोले — तो अब क्या होगा?

जागेश्वरी — तुम्हीं कोई उपाय सोचो।

हृदयनाथ — पड़ोसियों ने जो आक्षेप किया है वह सर्वथा उचित है। कैलाशकुमारी के स्वभाव में मुझे एक विचित्र अन्तर दिखाई दे रहा है। मुझे स्वयं ज्ञात हो रहा है कि उसके मन बहलाव के लिए हम लोगों ने जो उपाय निकाला है वह मुनासिब नहीं है। उनका यह कथन सत्य है कि विधवाओं के लिए आमोद–विनोद वर्जित है। अब हमें यह परिपाटी छोड़नी पड़ेगी।

जागेश्वरी — लेकिन कैलासी तो अन खेल–तमाशों के बिना एक दिन भी नहीं रह सकती।

हृदयनाथ — उसकी मनोवृत्तियों को बदलना पड़ेगा।

3

शनैः–शैनेः यह विलोसोल्माद शान्त होने लगा। वासना का तिरस्कार किया जाने लगा। पंडित जी संध्या समय ग्रामोफोन न बजाकर कोई धर्म–ग्रंथ सुनते। स्वाध्याय, संयम उपासना में माँ–बेटी रत रहने लगीं। कैलासी को गुरू जी ने दीक्षा दी, मुहल्ले और बिरादरी की स्त्रियाँ आयीं, उत्सव मनाया गया।

माँ–बेटी अब किश्ती पर सैर करने के लिए गंगा न जातीं, बल्कि स्नान करने के लिए। मंदिरों में नित्य जातीं। दोनों एकादशी का निर्जल व्रत रखने लगीं। कैलासी को गुरूजी नित्य संध्या–समय धर्मोपदेश करते। कुछ दिनों तक तो कैलासी को यह विचार–परिर्वतन बहुत कष्टजनक मालूम हुआ, पर धर्मनिष्ठा नारियों का स्वाभाविक गुण है, थोडे ही दिनो में उसे धर्म से रुचि हो गयी। अब उसे अपनी अवस्था का ज्ञान होने लगा था। विषय–वासना से चित्त आप ही आप खिंचने लगा। पति का यथार्थ आशय समझ में आने लगा था। पति ही स्त्री का सच्चा पथ प्रदर्शक और सच्चा सहायक है। पतिविहीन होना किसी घोर पाप का प्रायश्चित है। मैने पूर्व–जन्म में कोई अकर्म किया होगा। पतिदेव जीवित होते तो मै फिर माया में फंस जाती। प्रायश्चित

कर अवसर कहाँ मिलता। गुरूजी का वचन सत्य है कि परमात्मा ने तुम्हें पूर्व कर्मों के प्रायश्चित का अवसर दिया है। वैधव्य यातना नहीं है, जीवोद्धार का साधन है। मेरा उद्धार त्याग, विराग, भक्ति और उपासना से होगा।

कुछ दिनों के बाद उसकी धार्मिक वृत्ति इतनी प्रबल हो गयी, कि अन्य प्राणियों से वह पृथक् रहने लगी। किसी को न छूती, महरियों से दूर रहती, सहेलियों से गले तक न मिलती, दिन में दो–दो तीन–तीन बार स्नान करती, हमेशा कोई न कोई धर्म–ग्रन्थ पढा करती। साधु–महात्माओं के सेवा–सत्कार में उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता। जहाँ किसी महात्मा के आने की खबर पाती, उनके दर्शनों के लिए विकल हो जाती। उनकी अमृतवाणी सुनने से जी न भरता। मन संसार से विरक्त होने लगा। तल्लीनता की अवस्था प्राप्त हो गयी। घंटो ध्यान और चिंतन में मग्न रहती। सामाजिक बंधनों से घृणा हो गयी। घंटो ध्यान और चिंतन में मग्न रहती। हृदय स्वाधीनता के लिए लालायित हो गयाः यहाँ तक कि तीन ही बरसों में उसने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय कर लिया।

माँ–बाप को यह समाचार ज्ञात हुआ तो होश उड़ गये। माँ बोली — बेटी, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है कि तुम ऐसी बातें सोचती हो।

कैलाशकुमारी — माया–मोह से जितनी जल्द निवृत्ति हो जाय उतना ही अच्छा।

हृदयनाथ — क्या अपने घर मे रहकर माया–मोह से मुक्त नहीं हो सकती हो? माया–मोह का स्थान मन है, घर नहीं।

जागेश्वरी — कितनी बदनामी होगी।

कैलाशकुमारी — अपने को भगवान् के चरणों पर अर्पण कर चुकी तो बदनामी क्या चिंता?

जागेश्वरी — बेटी, तुम्हें न हो , हमको तो है। हमें तो तुम्हारा ही सहारा है। तुमने जो संन्यास लिया तो हम किस आधार पर जियेंगे?

कैलाशकुमारी — परमात्मा ही सबका आधार है। किसी दूसरे प्राणी का आश्रय लेना भूल है।

दूसरे दिन यह बात मुहल्ले वालों के कानों में पहुँच गयी। जब कोई अवस्था असाध्य हो जाती है तो हम उस पर व्यंग करने लगते है। 'यह तो होना ही था, नयी बात क्या हुई, लड़कियों को इस तरह स्वच्छंद नहीं कर दिया जाता, फूले न समाते थे कि लड़की ने कुल का नाम उज्जवल कर दिया। पुराण पढ़ती है, उपनिषद् और वेदांत का पाठ करती है, धार्मिक समस्याओं पर

ऐसी–ऐसी दलीलें करती है कि बडे–बडे विद्वानों की जबान बन्द हो जाती है तो अब क्यों पछताते है?'

भद्र पुरूषों में कई दिनों तक यही आलोचना होती रही। लेकिन जैसे अपने बच्चे के दौड़ते–दौड़ते धम से गिर पड़ने पर हम पहले क्रोध के आवेश में उसे झिड़कियाँ सुनाते है, इसके बाद गोद में बिठाकर आँसू पोछतें और फुसलाने का लगते हैः उसी तरह इन भद्र पुरूषों ने व्यंग्य के बाद इस गुत्थी के सुलझाने का उपाय सोचना शुरू किया। कई सज्जन हृदयनाथ के पास आये और सिर झुकाकर बैठ गये। विषय का आरम्भ कैसे हो?

कई मिनट के बाद एक सज्जन ने कहा — सुना है डाक्टर गौड का प्रस्ताव आज बहुमत से स्वीकृत हो गया।

दूसरे महाशय बोले — यह लोग हिंदू–धर्म का सर्वनाश करके छोड़ेंगे। कोई क्या करेगा, जब हमारे साधु–महात्मा, हिंदू–जाति के स्तंभ है, इतने पतित हो गए हैं कि भोली–भाली युवतियों को बहकाने में संकोच नहीं करते तो सर्वनाश होने में रह ही क्या गया।

हृदयनाथ — यह विपत्ति तो मेरे सिर ही पड़ी हुई है। आप लोगों को तो मालूम होगा।

पहले महाशय — आप ही के सिर क्यों, हम सभी के सिर पड़ी हुई है।

दूसरे महाशय — समस्त जाति के सिर कहिए।

हृदयनाथ — उद्धार का कोई उपाय सोचिए।

पहले महाशय — अपने समझाया नहीं?

हृदयनाथ — समझा के हार गया। कुछ सुनती ही नहीं।

तीसरे महाशय — पहले ही भूल हुई। उसे इस रास्ते पर उतरना ही नहीं चाहिए था।

पहले महाशय — उस पर पछताने से क्या होगा? सिर पर जो पड़ी है, उसका उपाय सोचना चाहिए। आपने समाचार–पत्रों में देखा होगा, कुछ लोगों की सलाह है कि विधवाओं से अध्यापकों का काम लेना चाहिए। यद्यपि मैं इसे भी बहुत अच्छा नहीं समझता,पर संन्यासिनी बनने से तो कहीं अच्छा है। लड़की अपनी आँखों के सामने तो रहेगी। अभिप्राय केवल यही है कि कोई ऐसा काम होना चाहिए जिसमें लड़की का मन लगें। किसी अवलम्ब के बिना मनुष्य को भटक जाने की शंका सदैव बनी रहती है। जिस घर में कोई नहीं रहता उसमें चमगादड़ बसेरा कर लेते हैं।

दूसरे महाशय — सलाह तो अच्छी है। मुहल्ले की दस-पाँच कन्याएँ पढने के लिए बुला ली जाएँ। उन्हे किताबें, गुड़िया आदि इनाम मिलता रहे तो बडे शौक से आयेंगी। लड़की का मन तो लग जायेगा।

हृदयनाथ — देखना चाहिए। भरसक समझाऊँगा।

ज्योंही यह लोग विदा हुए, हृदयनाथ ने कैलाशकुमारी के सामने यह तजवीज पेश की कैलासी को सन्यस्त के उच्च पद के सामने अध्यापिका बनना अपमानजनक जान पड़ता था। कहाँ वह महात्माओं का सत्संग, वह पर्वतों की गुफा, वह सुरम्य प्राकृतिक दृश्य वह हिमराशि की ज्ञानमय ज्योति, वह मानसरोवर और कैलास की शुभ्र छटा, वह आत्मदर्शन की विशाल कल्पनाएँ, और कहाँ बालिकाओं को चिड़ियों की भांति पढ़ाना। लेकिन हृदयनाथ कई दिनों तक लगातार सेवाधर्म का महात्म्य उसके हृदय पर अंकित करते रहे। सेवा ही वास्तविक संन्यास है। संन्यासी केवल अपनी मुक्ति का इच्छुक होता है, सेवा व्रतधारी अपने को परमार्थ की वेदी पर बलि दे देता है। इसका गौरव कहीं अधिक है। देखो, ऋषियों में दधीचि का जो यश है, हरिश्चन्द्र की जो कीर्ति है, सेवा त्याग है, आदि। उन्होंने इस कथन की उपनिषदों और वेदमंत्रों से पुष्टि की यहाँ तक कि धीरे-धीरे कैलासी के विचारों में परिवर्तन होने लगा। पंडित जी ने मुहल्ले वालों की

लड़कियों को एकत्र किया, पाठशाला का जन्म हो गया। नाना प्रकार के चित्र और खिलौने मंगाए। पंडित जी स्वयं कैलाशकुमारी के साथ लड़कियों को पढाते। कन्याएँ शौक से आतीं। उन्हे यहाँ की पढाई खेल मालूम होता। थोडे ही दिनों में पाठशाला की धूम हो गयी, अन्य मुहल्लों की कन्याएँ भी आने लगीं।

4

कैलासकुमारी की सेवा–प्रवृत्ति दिनों–दिन तीव्र होने लगी। दिन भर लड़कियों को लिए रहती, कभी पढ़ाती, कभी उनके साथ खेलती, कभी सीना–पिरोना सिखाती। पाठशाला ने परिवार का रूप धारण कर लिया। कोई लड़की बीमार हो जाती तो तुरन्त उसके घर जाती, उसकी सेवा–सुश्रूषा करती, गाकर या कहानियाँ सुनाकर उसका दिल बहलाती।

पाठशाला को खुले हुए साल–भर हुआ था। एक लड़की को, जिससे वह बहुत प्रेम करती थी, चेचक निकल आयी। कैलासी उसे देखने गई। माँ–बाप ने बहुत मना किया, पर उसने न

माना। कहा, तुरन्त लौट आऊँगी। लड़की की हालत खराब थी। कहाँ तो रोते-रोते तालू सूखता था, कहाँ कैलासी को देखते ही सारे कष्ट भाग गये। कैलासी एक घंटे तक वहाँ रही। लड़की बराबर उससे बातें करती रही। लेकिन जब वह चलने को उठी तो लड़की ने रोना शुरू कर दिया। कैलासी मजबूर होकर बैठ गयी। थोड़ी देर बाद वह फिर उठी तो फिर लड़की की यह दशा हो गयी। लड़की उसे किसी तरह छोड़ती ही न थी। सारा दिन गुजर गया। रात को भी रात को लड़की ने जाने न दिया। हृदयनाथ उसे बुलाने को बार-बार आदमी भेजते, पर वह लड़की को छोड़कर न जा सकती। उसे ऐसी शंका होती थी कि मैं यहाँ से चली और लड़की हाथ से गयी। उसकी माँ विमाता थी। इससे कैलासी को उसके ममत्व पर विश्वास न होता था। इस प्रकार तीन दिनों तक वह वहाँ राही। आठों पहर बालिका के सिरहाने बैठी पंखा झलती रहती। बहुत थक जाती तो दीवार से पीठ टेक लेती। चौथे दिन लड़की की हालत कुछ संभलती हुई मालूम हुई तो वह अपने घर आयी। मगर अभी स्नान भी न करने पायी थी कि आदमी पहुंचा — जल्द चलिए, लड़की रो-रो कर जान दे रही है।

हृदयनाथ ने कहा — कह दो, अस्पताल से कोई नर्स बुला लें।

कैलसकुमारी — दादा, आप व्यर्थ में झुँझलाते हैं। उस बेचारी की जान बच जाय, मै तीन दिन नहीं, तीन महीने उसकी सेवा करने को तैयार हूँ। आखिर यह देह किस काम आएगी।

हृदयनाथ — तो कन्याएँ कैसे पढ़ेगी?

कैलासी — दो एक दिन में वह अच्छी हो जाएगी, दाने मुरझाने लगे हैं, तब तक आप जरा इन लड़कियों की देखभाल करते रहिएगा।

हृदयनाथ — यह बीमारी छूत फैलाती है।

कैलासी — (हँसकर) मर जाऊँगी तो आपके सिर से एक विपत्ति टल जाएगी। यह कहकर उसने उधर की राह ली। भोजन की थाली परसी रह गयी।

तब हृदयनाथ ने जागेश्वरी से कहा — जान पड़ता है, बहुत जल्द यह पाठशाला भी बन्द करनी पड़ेगी।

जागेश्वरी — बिना माँझी के नाव पार लगाना बहुत कठिन है। जिधर हवा पाती है, उधर बह जाती है।

हृदयनाथ — जो रास्ता निकालता हूँ वही कुछ दिनों के बाद किसी दलदल में फंसा देता है। अब फिर बदनामी के समान होते नजर आ रहे है। लोग कहेंगें, लड़की दूसरों के घर जाती है

और कई–कई दिन पड़ी रहती है। क्या करूँ, कह दूँ, लड़कियों को न पढ़ाया करो?

जागेश्वरी —इसके सिवा और हो क्या सकता है।

कैलाशकुमारी दो दिन बाद लौटी तो हृदयनाथ ने पाठशाला बन्द कर देने की समस्या उसके सामने रखी। कैलासी ने तीव्र स्वर से कहा — अगर आपको बदनामी का इतना भय है तो मुझे विष दे दीजिए। इसके सिवा बदनामी से बचने का और कोई उपाय नहीं है।

हृदयनाथ — बेटी संसार में रहकर तो संसार की–सी करनी पड़ेगी।

कैलासी तो कुछ मालूम भी तो हो कि संसार मुझसे क्या चाहता है। मुझमें जीव है, चेतना है, जड क्योंकर बन जाऊँ। मुझसे यह नहीं हो सकता कि अपने को अभागिनी, दुखिया समझूँ और एक टुकड़ा रोटी खाकर पड़ी रहूँ। ऐसा क्यों करूँ? संसार मुझे जो चाहे समझे, मै अपने को अभागिनी नहीं समझती। मै अपने आत्म–सम्मान की रक्षा आप कर सकती हूँ। मैं इसे घोर अपमान समझती हूँ कि पग–पग पर मुझ पर शंका की जाए, नित्य कोई चरवाहों की भांति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता रहे कि किसी खेत में न जाने पडूँ। यह दशा मेरे लिए असह्य हैं।

यह कहकर कैलाशकुमारी वहाँ से चली गयी कि कहीं मुँह से अनर्गल शब्द न निकल पड़ें। इधर कुछ दिनों से उसे अपनी बेकसी का यथार्थ ज्ञान होने लगा था स्त्री पुरूष की कितनी अधीन है, मानो स्त्री को विधाता ने इसलिए बनाया है कि पुरूषों के अधीन रहे! यह सोचकर वह समाज के अत्याचार पर दांत पीसने लगती थी।

पाठशाला तो दूसरे दिन बन्द हो गयी, किन्तु उसी दिन कैलाशकुमारी को पुरूषों से जलन होने लगी। जिस सुख-भोग से प्रारब्ध हमें वंचित कर देता है उससे हमे द्वेष हो जाता है। गरीब आदमी इसीलिए तो अमीरों से जलता है और धन की निन्दा करता है। कैलाशी बार-बार झुँझलाती कि स्त्री क्यों पुरूष पर इतनी अवलम्बित है? पुरुष क्यों स्त्री के भाग्य का विधायक है? स्त्री क्यों नित्य पुरूषों का आश्रय चाहे, उनका मुँह ताके? इसलिए न कि स्त्रियों में अभिमान नहीं है, आत्म सम्मान नहीं है। नारी हृदय के कोमल भाव, उसे कुत्ते का दुम हिलाना मालूम होने लगे। प्रेम कैसा। यह सब ढोंग है, स्त्री पुरूष के अधीन है, उसकी खुशामद न करे, सेवा न करे, तो उसका निर्वाह कैसे हो।

एक दिन उसने अपने बाल गूँथे और जूड़े में एक गुलाब का फूल लगा लिया। माँ ने देखा तो ओंठ से जीभ दबा ली। महरियों ने छाती पर हाथ रखे।

इसी तरह एक दिन उसने रंगीन रेशमी साडी पहन ली। पड़ोसिनों में इस पर खूब आलोचनाएँ हुईं।

उसने एकादशी का व्रत रखना छोड़ दिया जो पिछले आठ वर्षों से रखती आयीं थी। कंघी और आइने को वह अब त्याज्य न समझती थी।

सहालग के दिन आए। नित्य प्रति उसके द्वार पर से बरातें निकलतीं। मुहल्ले की स्त्रियाँ अपनी अटारियों पर खड़ी होकर देखती। वर के रंग–रूप, आकर–प्रकार पर टीकाएँ होती, जागेश्वरी से भी बिना एक आँख देखे रहा न जाता। लेकिन कैलाशकुमारी कभी भूलकर भी इन जलूसों को न देखती। कोई बरात या विवाह की बात चलाता तो वह मुँह फेर लेती। उसकी दृष्टि में वह विवाह नहीं, भोली–भाली कन्याओं का शिकार था। बरातों को वह शिकारियों के कुत्ते समझती। यह विवाह नहीं बलिदान है।

5

तीज का व्रत आया। घरों की सफाई होने लगी। रमणियाँ इस व्रत को तैयारियाँ करने लगीं। जागेश्वरी ने भी व्रत का सामान

किया। नयी–नयी साड़ियाँ मँगवायीं। कैलाशकुमारी के ससुराल से इस अवसर पर कपड़े ,मिठाइयाँ और खिलौने आया करते थे। अबकी भी आए। यह विवाहिता स्त्रियों का व्रत है। इसका फल है पति का कल्याण। विधवाएँ भी इस व्रत का यथोचित रीति से पालन करती है। पति से उनका सम्बन्ध शारीरिक नहीं वरन् आध्यात्मिक होता है। उसका इस जीवन के साथ अन्त नहीं होता, अनन्तकाल तक जीवित रहता है। कैलाशकुमारी अब तक यह व्रत रखती आयी थी। अब उसने निश्चय किया मै व्रत न रखूँगी। माँ ने तो माथा ठोंक लिया। बोली — बेटी, यह व्रत रखना धर्म है।

कैलाशकुमारी — पुरुष भी स्त्रियों के लिए कोई व्रत रखते है?

जागेश्वरी — मर्दों में इसकी प्रथा नहीं है।

कैलाशकुमारी — इसलिए न कि पुरूषों की जान उतनी प्यारी नही होती जितनी स्त्रियों को पुरूषों की जान?

जागेश्वरी — स्त्रियाँ पुरूषों की बराबरी कैसे कर सकती हैं? उनका तो धर्म है अपने पुरूष की सेवा करना।

कैलाशकुमारी — मै अपना धर्म नहीं समझती। मेरे लिए अपनी आत्मा की रक्षा के सिवा और कोई धर्म नहीं?

जागेश्वरी — बेटी गजब हो जायेगा, दुनिया क्या कहेगी?

कैलाशकुमारी —फिर वही दुनिया? अपनी आत्मा के सिवा मुझे किसी का भय नहीं।

हृदयनाथ ने जागेश्वरी से यह बातें सुनीं तो चिन्ता सागर में डूब गए। इन बातों का क्या आशय? क्या आत्म–सम्मान को भाव जाग्रत हुआ है या नैराश्य की क्रूर क्रीडा है? धनहीन प्राणी को जब कष्ट–निवारण का कोई उपाय नहीं रह जाता तो वह लज्जा को त्याग देता है। निस्संदेह नैराश्य ने यह भीषण रूप धारण किया है। सामान्य दशाओं में नैराश्य अपने यथार्थ रूप मे आता है, पर गर्वशील प्राणियों में वह परिमार्जित रूप ग्रहण कर लेता है। यहाँ पर हृदयगत कोमल भावों को अपहरण कर लेता है — चरित्र में अस्वाभाविक विकास उत्पन्न कर देता है — मनुष्य लोकलाज और उपहास की ओर से उदासीन हो जाता है, नैतिक बन्धन टूट जाते है। यह नैराश्य की अंतिम अवस्था है।

हृदयनाथ इन्हीं विचारों मे मग्न थे कि जागेश्वरी ने कहा —अब क्या करना होगा?

जागेश्वरी — कोई उपाय है?

हृदयनाथ — बस एक ही उपाय है, पर उसे जबान पर नहीं ला सकता!

कौशल

पंडित बलराम शास्त्री की धर्मपत्नी माया को बहुत दिनों से एक हार की लालसा थी और वह सैंकड़ो ही बार पंडित जी से उसके लिए आग्रह कर चुकी थी, किन्तु पंडित जी हीला-हवाला करते रहते थे। यह तो साफ-साफ ने कहते थे कि मेरे पास रूपये नही है — इनसे उनके पराक्रम में बट्टा लगता था — तर्कनाओं की शरण लिया करते थे। गहनों से कुछ लाभ नहीं एक तो धातु अच्छी नहीं मिलती, उस पर सोनार रुपसे के आठ-आठ आने कर देता है और सबसे बड़ी बात यह है कि घर में गहने रखना चोरों को नेवता देन है। घडी-भर श्रृंगार के लिए इतनी विपत्ति सिर पर लेना मूर्खों का काम है। बेचारी माया तर्क-शास्त्र न पढ़ी थी, इन युक्तियों के सामने निरूत्तर हो जाती थी। पड़ोसिनों को देख-देख कर उसका जी ललचा करता था, पर दुख किससे कहे। यदि पंडित जी ज्यादा मेहनत करने के योग्य होते तो यह मुश्किल आसान हो जाती। पर वे आलसी जीव थे, अधिकांश समय भोजन और विश्राम में व्यतीत किया करते थे। पत्नी जी

की कटूक्तियाँ सुननी मंजूर थीं, लेकिन निद्रा की मात्रा में कमी न कर सकते थे।

एक दिन पंडित जी पाठशाला से आये तो देखा कि माया के गले में सोने का हार विराज रहा है। हार की चमक से उसकी मुख–ज्योति चमक उठी थी। उन्होने उसे कभी इतनी सुन्दर न समझा था। पूछा —यह हार किसका है?

माया बोली — पडोस में जो बाबूजी रहते हैं उन्ही की स्त्री का है।

आज उनसे मिलने गयी थी, यह हार देखा , बहुत पसंद आया। तुम्हें दिखाने के लिए पहन कर चली आई। बस, ऐसा ही एक हार मुझे बनवा दो।

पंडित — दूसरे की चीज नाहक माँग लायी। कहीं चोरी हो जाए तो हार तो बनवाना ही पड़े, उपर से बदनामी भी हो।

माया — मैं तो ऐसा ही हार लूँगी। 20 तोले का है।

पंडित — फिर वही जिद।

माया — जब सभी पहनती हैं तो मै ही क्यों न पहनूँ?

पंडित — सब कुएँ में गिर पड़े तो तुम भी कुएँ में गिर पड़ोगी। सोचो तो, इस वक्त इस हार के बनवाने में 600 रुपये लगेंगे।

अगर 1 रुपए प्रति सैकडा ब्याज रख लिया जाय तो — वर्ष मे 600 रुपए के लगभग 100 रुपए हो जायेंगे। लेकिन 5 वर्ष में तुम्हारा हार मुश्किल से 300 रुपए का रह जायेगा। इतना बड़ा नुकसान उठाकर हार पहनने से क्या सुख? सह हार वापस कर दो, भोजन करो और आराम से पड़ी रहो। यह कहते हुए पंडित जी बाहर चले गये।

रात को एकाएक माया ने शोर मचाकर कहा —चोर,चोर,हाय, घर में चोर , मुझे घसीटे लिए जाते हैं।

पंडित जी हकबकाकर उठे और बोले —कहाँ, कहाँ? दौड़ो,दौड़ो।

माया — मेरी कोठारी में गया है। मैनें उसकी परछाईं देखी।

पंडित — लालटेन लाओ, जरा मेरी लकडी उठा लेना।

माया — मुझसे तो डर के उठा नहीं जाता।

कई आदमी बाहर से बोले — कहाँ है पंडित जी, कोई सेंध पड़ी है क्या?

माया — नहीं, नहीं, खपरैल पर से उतरे हैं। मेरी नींद खुली तो कोई मेरे ऊपर झुका हुआ था। हाय रे, यह तो हार ही ले गया, पहने–पहने सो गई थी। मुए ने गले से निकाल लिया। हाय भगवान,

पंडित — तुमने हार उतार क्यों न दिया था?

माया–मै क्या जानती थी कि आज ही यह मुसीबत सिर पड़ने वाली है, हाय भगवान्,

पंडित — अब हाय–हाय करने से क्या होगा? अपने कर्मों को रोओ। इसीलिए कहा करता था कि सब घडी बराबर नहीं जाती, न जाने कब क्या हो जाए। अब आयी समझ में मेरी बात, देखो, और कुछ तो न ले गया?

पडोसी लालटेन लिए आ पहुँचे। घर में कोना —कोना देखा। करियाँ देखीं, छत पर चढ़कर देखा, अगवाड़े–पिछवाड़े देखा, शौच गृह में झाँका, कहीं चोर का पता न था।

एक पडोसी — किसी जानकार आदमी का काम है।

दूसरा पडोसी — बिना घर के भेदिये के कभी चोरी नहीं होती। और कुछ तो नहीं ले गया?

माया — और तो कुछ नहीं गया। बरतन सब पड़े हुए हैं। सन्दूक भी बन्द पड़े है। निगोड़े को ले ही जाना था तो मेरी चीजें ले जाता। परायी चीज ठहरी। भगवान् उन्हें कौन मुँह दिखाऊँगी।

पंडित — अब गहने का मजा मिल गया न?

माया — हाय, भगवान्, यह अपजस बदा था।

पंडित — कितना समझा के हार गया, तुम न मानीं, न मानीं। बात की बात में 600 रुपए निकल गए, अब देखूँ भगवान कैसे लाज रखते हैं।

माया — अभागे मेरे घर का एक–एक तिनका चुन ले जाते तो मुझे इतना दुःख न होता। अभी बेचारी ने नया ही बनवाया था।

पंडित — खूब मालूम है, 20 तोले का था?

माया — 20 ही तोले को तो कहती थी?

पंडित — बधिया बैठ गई और क्या?

माया — कह दूँगी घर में चोरी हो गयी। क्या लेगी? अब उनके लिए कोई चोरी थोडे ही करने जायेगा।

पंडित — तुम्हारे घर से चीज गयी, तुम्हें देनी पड़ेगी। उन्हे इससे क्या प्रयोजन कि चोर ले गया या तुमने उठाकर रख लिया। पतिययेगी ही नही।

माया —तो इतने रुपये कहाँ से आयेंगे?

पंडित — कहीं न कहीं से तो आयेंगे ही,नहीं तो लाज कैसे रहेगी, मगर की तुमने बड़ी भूल।

माया — भगवान् से मंगनी की चीज भी न देखी गयी। मुझे काल ने घेरा था, नहीं तो इस घडी भर गले में डाल लेने से ऐसा कौन-सा बड़ा सुख मिल गया? मै हूँ ही अभागिनी।

पंडित — अब पछताने और अपने को कोसने से क्या फायदा? चुप हो के बैठो, पड़ोसन से कह देना, घबराओ नहीं, तुम्हारी चीज जब तक लौटा न देंगे, तब तक हमें चैन न आयेगा।

2

पंडित बालकराम को अब नित्य ही चिंता रहने लगी कि किसी तरह हार बने। यों अगर टाट उलट देते तो कोई बात न थी। पड़ोसन को सन्तोष ही करना पड़ता, ब्राह्मण से डाँड़ कौन लेता, किन्तु पंडित जी ब्राह्मणत्व के गौरव को इतने सस्ते दामों न बेचना चाहते थे। आलस्य छोड़कर धनोपार्जन में दत्तचित्त हो गये।

छः महीने तक उन्होने दिन को दिन और रात को रात नहीं जाना। दोपहर को सोना छोड़ दिया, रात को भी बहुत देर तक जागते। पहले केवल एक पाठशाला में पढ़ाया करते थे। इसके सिवा वह ब्राह्मण के लिए खुले हुए एक सौ एक व्यवसायों में

सभी को निंदनीय समझते थे। अब पाठशाला से आकर संध्या एक जगह 'भगवत् की कथा' कहने जाते वहाँ से लौट कर 11–12 बजे रात तक जन्म कुंडलियाँ, वर्ष–फल आदि बनाया करते। प्रातःकाल मन्दिर में 'दुर्गा जी का पाठ' करते। माया पंडित जी का अध्यवसाय देखकर कभी–कभी पछताती कि कहाँ से मैंने यह विपत्ति सिर पर लीं कहीं बीमार पड जायें तो लेने के देने पड़े। उनका शरीर क्षीण होते देखकर उसे अब यह चिन्ता व्यथित करने जगी। यहाँ तक कि पाँच महीने गुजर गये।

एक दिन संध्या समय वह दिया–बत्ती करने जा रही थी कि पंडित जी आये, जेब से पुड़िया निकाल कर उसके सामने फेंक दी और बोले — लो, आज तुम्हारे ऋण से मुक्त हो गया।

माया ने पुड़िया खोली तो उसमें सोने का हार था, उसकी चमक–दमक, उसकी सुन्दर बनावट देखकर उसके अन्तःस्थल में गुदगुदी–सी होने लगी। मुख पर आनन्द की आभा दौड गई। उसने कातर नेत्रों से देखकर पूछा — खुश हो कर दे रहे हो या नाराज होकर?

पंडित — इससे क्या मतलब? ऋण तो चुकाना ही पड़ेगा, चाहे खुशी हो या नाखुशी।

माया — यह ऋण नहीं है।

पंडित — और क्या है, बदला सही।

माया — बदला भी नहीं है।

पंडित फिर क्या है।

माया — तुम्हारी ... निशानी?

पंडित — तो क्या ऋण के लिए कोई दूसरा हार बनवाना पड़ेगा?

माया — नहीं–नहीं, वह हार चोरी नहीं गया था। मैनें झूठ–मूठ शोर मचाया था।

पंडित — सच?

माया — हाँ, सच कहती हूँ।

पंडित — मेरी कसम?

माया — तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ।

पंडित — तो तुमने मुझसे कौशल किया था?

माया — हाँ?

पंडित — तुम्हें मालूम है, तुम्हारे कौशल का मुझे क्या मूल्य देना पडा।

माया — क्या 600 रुपए से ऊपर?

पंडित — बहुत ऊपर? इसके लिए मुझे अपने आत्मस्वातंत्र्य को बलिदान करना पडा।

स्वर्ग की देवी

.

भाग्य की बात! शादी विवाह में आदमी का क्या अख्तियार! जिससे ईश्वर ने, या उनके नायबों–ब्राह्मण — ने तय कर दी, उससे हो गयी। बाबू भारतदास ने लीला के लिए सुयोग्य वर खोजने में कोई बात उठा नही रखी। लेकिन जैसा घर–घर चाहते थे, वैसा न पा सके। वह लड़की को सुखी देखना चाहते थे, जैसा हर एक पिता का धर्म है ; किंतु इसके लिए उनकी समझ में सम्पत्ति ही सबसे जरूरी चीज थी। चरित्र या शिक्षा का स्थान गौण था। चरित्र तो किसी के माथे पर लिखा नही रहता और शिक्षा का आजकल के जमाने में मूल्य ही क्या? हाँ, सम्पत्ति के साथ शिक्षा भी हो तो क्या पूछना! ऐसा घर बहुत ढूँढ़ा पर न मिला तो अपनी विरादरी के न थे। बिरादरी भी मिली, तो ज़ायचा न मिला! ज़ायचा भी मिला तो शर्ते तय न हो सकी। इस तरह मजबूर होकर भारतदास को लीला का विवाह लाला सन्तसरन के लड़के सीतासरन से करना पडा। अपने बाप का इकलौता बेटा था, थोड़ी बहुत शिक्षा भी पायी थी, बातचीत सलीके से करता था, मामले–मुकदमें समझता था और जरा दिल का रंगीला भी था।

सबसे बड़ी बात यह थी कि रूपवान, बलिष्ठ, प्रसन्न मुख, साहसी आदमी था ; मगर विचार वही बाबा आदम के जमाने के थे। पुरानी जितनी बातें है, सब अच्छी; नयी जितनी बातें है, सब खराब है। जायदाद के विषय में जमींदार साहब नये से नये दफों का व्यवहार करते थे, वहाँ अपना कोई अख्तियार न था ; लेकिन सामाजिक प्रथाओं के कट्टर पक्षपाती थे। सीतासरन अपने बाप को जो करते या कहते वही खुद भी कहता था। उसमें खुद सोचने की शक्ति ही न थी। बुद्धि की मंदता बहुधा सामाजिक अनुदारता के रूप में प्रकट होती है।

2

लीला ने जिस दिन घर में पाँव रखा उसी दिन उसकी परीक्षा शुरू हुई। वे सभी काम, जिनकी उसके घर में तारीफ होती थी यहाँ वर्जित थे। उसे बचपन से ताजी हवा पर जान देना सिखाया गया था, यहाँ उसके सामने मुँह खोलना भी पाप था। बचपन से सिखाया गया था रोशनी ही जीवन है, यहाँ रोशनी के दर्शन दुर्लभ थे। घर पर अहिंसा, क्षमा और दया ईश्वरीय गुण बताये गये थे, यहाँ इनका नाम लेने की भी स्वाधीनता थी। सन्तसरन बडे तीखे,

गुस्सेवर आदमी थे, नाक पर मक्खी न बैठने देते। धूर्तता और छल–कपट से ही उन्होने जायदाद पैदा की थी। और उसी को सफल जीवन का मंत्र समझते थे। उनकी पत्नी उनसे भी दो अंगुल ऊँची थीं। मजाल क्या है कि बहू अपनी अंधेरी कोठरी के द्वार पर खड़ी हो जाय, या कभी छत पर टहल सकें। प्रलय आ जाता, आसमान सिर पर उठा लेती। उन्हें बकने का मर्ज था। दाल में नमक का जरा तेज हो जाना उन्हें दिन भर बकने के लिए काफी बहाना था। मोटी–ताजी महिला थी, छींट का घाँघरेदार लहँगा पहने, पानदान बगल में रखे, गहनों से लदी हुई, सारे दिन बरोठे में माची पर बैठी रहती थी। क्या मजाल कि घर में उनकी इच्छा के विरुद्ध एक पत्ता भी हिल जाय! बहू की नयी–नयी आदतें देख-देख जला करती थी। अब काहे की आबरू होगी। मुंडेर पर खड़ी हो कर झाँकती है। मेरी लड़की ऐसी दीदा–दिलेर होती तो गला घोंट देती। न जाने इसके देश में कौन लोग बसते है! गहने नही पहनती। जब देखो नंगी–बुच्ची बनी बैठी रहती है। यह भी कोई अच्छे लच्छन है। लीला के पीछे सीतासरन पर भी फटकार पड़ती। तुझे भी चाँदनी में सोना अच्छा लगता है, क्यों? तू भी अपने को मर्द कहता कहेगा? यह मर्द कैसा कि औरत उसके कहने में न रहे। दिन–भर घर में घुसा रहता है। मुँह में जबान नही है? समझता क्यों नही?

सीतासरन कहता — अम्माँ, जब कोई मेरे समझाने से माने तब तो?

माँ — मानेगी क्यो नही, तू मर्द है कि नही? मर्द वह चाहिए कि कड़ी निगाह से देखे तो औरत काँप उठे।

सीतासरन — तुम तो समझाती ही रहती हो।

माँ — मेरी उसे क्या परवाह? समझती होगी, बुढ़िया चार दिन में मर जायगी तब मैं मालकिन हो ही जाऊँगी।

सीतासरन — तो मैं भी तो उसकी बातों का जबाब नही दे पाता। देखती नही हो कितनी दुर्बल हो गयी है। वह रंग ही नही रहा। उस कोठरी में पड़े–पड़े उसकी दशा बिगड़ती जाती है।

बेटे के मुँह से ऐसी बातें सुन माता आग हो जाती और सारे दिन जलती; कभी भाग्य को कोसती, कभी समय को।

सीतासरन माता के सामने तो ऐसी बातें करता ; लेकिन लीला के सामने जाते ही उसकी मति बदल जाती थी। वह वही बातें करता था जो लीला को अच्छी लगती। यहाँ तक कि दोनों वृद्धा की हँसी उड़ाते। लीला को इस में ओर कोई सुख न था। वह सारे दिन कुढ़ती रहती। कभी चूल्हे के सामने न बैठी थी ; पर यहाँ पसेरियों आटा थोपना पड़ता, मजूरों और टहलुओं के लिए

रोटी पकानी पड़ती। कभी–कभी वह चूल्हे के सामने बैठी घंटो रोती। यह बात न थी कि यह लोग कोई महाराज–रसोइया न रख सकते हो; पर घर की पुरानी प्रथा यही थी कि बहू खाना पकाये और उस प्रथा का निभाना जरूरी था। सीतासरन को देखकर लीला का संतप्त हृदय एक क्षण के लिए शान्त हो जाता था।

गर्मी के दिन थे और सन्ध्या का समय था। बाहर हवा चलती, भीतर देह फुँकती थी। लीला कोठरी में बैठी एक किताब देख रही थी कि सीतासरन ने आकर कहा — यहाँ तो बड़ी गर्मी है, बाहर बैठो।

लीला — यह गर्मी तो उन तानों से अच्छी है जो अभी सुनने पड़ेंगे।

सीतासरन — आज अगर बोली तो मैं भी बिगड़ जाऊँगा।

लीला — तब तो मेरा घर में रहना भी मुश्किल हो जायेगा।

सीतासरन — बला से अलग ही रहेंगे!

लीला — मैं मर भी लाऊँ तो भी अलग रहूँ। वह जो कुछ कहती सुनती है, अपनी समझ से मेरे भले ही के लिए कहती–सुनती है। उन्हें मुझसे कोई दुश्मनी थोडे ही है। हाँ, हमें

उनकी बातें अच्छी न लगें, यह दूसरी बात है। उन्होंने खुद वह सब कष्ट झेले है, जो वह मुझे झेलवाना चाहती है। उनके स्वास्थ्य पर उन कष्टों का जरा भी असर नही पडा। वह इस 65 वर्ष की उम्र में मुझसे कहीं टाँठी है। फिर उन्हें कैसे मालूम हो कि इन कष्टों से स्वास्थ्य बिगड़ सकता है।

सीतासरन ने उसके मुरझाये हुए मुख की ओर करुणा नेत्रों से देख कर कहा — तुम्हें इस घर में आकर बहुत दुःख सहना पडा। यह घर तुम्हारे योग्य न था। तुमने पूर्व जन्म में जरूर कोई पाप किया होगा।

लीला ने पति के हाथों से खेलते हुए कहा — यहाँ न आती तो तुम्हारा प्रेम कैसे पाती?

3

पाँच साल गुजर गये। लीला दो बच्चों की माँ हो गयी। एक लडका था, दूसरी लड़की। लड़के का नाम जानकीसरन रखा गया और लड़की का नाम कामिनी। दोनो बच्चे घर को गुलजार किये रहते थे। लड़की लड़की दादा से हिली थी, लडका दादी से। दोनों शोख और शरीर थे। गाली दे बैठना, मुँह चिढ़ा देना तो

उनके लिए मामूली बात थी। दिन-भर खाते और आये दिन बीमार पड़े रहते। लीला ने खुद सभी कष्ट सह लिये थे पर बच्चों में बुरी आदतों का पडना उसे बहुत बुरा मालूम होता था; किन्तु उसकी कौन सुनता था। बच्चों की माता होकर उसकी अब गणना ही न रही थी। जो कुछ थे बच्चे थे, वह कुछ न थी। उसे किसी बच्चे को डाँटने का भी अधिकार न था, सास फाड़ खाती थी।

सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि उसका स्वास्थ्य अब और भी खराब हो गया था। प्रसवकाल में उसे वे भी अत्याचार सहने पड़े जो अज्ञान, मूर्खता और अंध विश्वास ने सौर की रक्षा के लिए गढ़ रखे है। उस काल-कोठरी में, जहाँ न हवा का गुजर था, न प्रकाश का, न सफाई का, चारों और दुर्गन्ध, और सील और गन्दगी भरी हुई थी, उसका कोमल शरीर सूख गया। एक बार जो कसर रह गयी वह दूसरी बार पूरी हो गयी। चेहरा पीला पड गया, आँखें घँस गयीं। ऐसा मालूम होता, बदन में खून ही नही रहा। सूरत ही बदल गयी।

गर्मियों के दिन थे। एक तरफ आम पके, दूसरी तरफ खरबूजे। इन दोनो फलो की ऐसी अच्छी फसल कभी न हुई थी अबकी इनमें इतनी मिठास न जाने कहा से आयी थी कि कितना ही खाओ मन न भरे। सन्तसरन के इलाके से आम और खरबूजे के

टोकरे भरे चले आते थे। सारा घर खूब उछल-उछल खाता था। बाबू साहब पुरानी हड्डी के आदमी थे। सबेरे एक सैकडे आमों का नाश्ता करते, फिर पसेरी-भर खरबूजे चट कर जाते। मालकिन उनसे पीछे रहने वाली न थी। उन्होने तो एक वक्त का भोजन ही बन्द कर दिया। अनाज सड़ने वाली चीज नही। आज नही कल खर्च हो जायेगा। आम और खरबूजे तो एक दिन भी नही ठहर सकते। शुदनी थी और क्या? योंही हर साल दोनों चीजों की रेल-पेल होती थी; पर किसी को कभी कोई शिकायत न होती थी। कभी पेट में गिरानी मालूम हुई तो हड़ की फंकी मार ली। एक दिन बाबू सन्तसरन के पेट में मीठा-मीठा दर्द होने लगा। आपने उसकी परवाह न की। आम खाने बैठ गये। सैंकड़ा पूरा करके उठे ही थे कि कै हुई। गिर पड़े फिर तो तिल-तिल करके पर कै और दस्त होने लगे। हैजा हो गया। शहर के डाक्टर बुलाये गये, लेकिन आने के पहले ही बाबू साहब चल बसे थे। रोना-पीटना मच गया। संध्या होते-होते लाश घर से निकली। लोग दाह-क्रिया करके आधी रात को लौटे तो मालकिन को भी कै दस्त हो रहे थे। फिर दौड धूप शुरू हुई; लेकिन सूर्य निकलते-निकलते वह भी सिधार गयी। स्त्री-पुरूष जीवनपर्यन्त एक दिन के लिए भी अलग न हुए थे। संसार से भी

साथ ही साथ गये, सूर्यास्त के समय पति ने प्रस्थान किया, सूर्योदय के समय पत्नी ने।

लेकिन मुसीबत का अभी अन्त न हुआ था। लीला तो संस्कार की तैयारियों मे लगी थी; मकान की सफाई की तरफ किसी ने ध्यान न दिया। तीसरे दिन दोनो बच्चे दादा–दादी के लिए रोते–रोते बैठक में जा पहुँचे। वहाँ एक आले का खरबूजा कटा हुआ पडा था; दो–तीन कलमी आम भी रखे थे। इन पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। जानकी ने एक तिपाई पर चढ़ कर दोनों चीजें उतार लीं और दोनों ने मिलकर खाई। शाम होते–होते दोनों को हैजा हो गया और दोनों माँ–बाप को रोता छोड़ चल बसे। घर में अंधेरा हो गया। तीन दिन पहले जहाँ चारों तरफ चहल–पहल थी, वहाँ अब सन्नाटा छाया हुआ था, किसी के रोने की आवाज भी सुनायी न देती थी। रोता ही कौन? ले–दे के कुल दो प्राणी रह गये थे। और उन्हें रोने की सुधि न थी।

4

लीला का स्वास्थ्य पहले भी कुछ अच्छा न था, अब तो वह और भी बेजान हो गयी। उठने–बैठने की शक्ति भी न रही। हरदम

खोयी सी रहती, न कपड़े-लत्ते की सुधि थी, न खाने-पीने की। उसे न घर से वास्ता था, न बाहर से। जहाँ बैठती, वही बैठी रह जाती। महीनों कपड़े न बदलती, सिर में तेल न डालती बच्चे ही उसके प्राणो के आधार थे। जब वही न रहे तो मरना और जीना बराबर था। रात-दिन यही मनाया करती कि भगवान् यहाँ से ले चलो। सुख-दुःख सब भुगत चुकी। अब सुख की लालसा नही है; लेकिन बुलाने से मौत किसी को आयी है?

सीतासरन भी पहले तो बहुत रोया-धोया; यहाँ तक कि घर छोड़कर भागा जाता था; लेकिन ज्यों-ज्यो दिन गुजरते थे बच्चों का शोक उसके दिल से मिटता था; संतान का दुःख तो कुछ माता ही को होता है। धीरे-धीरे उसका जी संभल गया। पहले की भाँति मित्रों के साथ हँसी-दिल्लगी होने लगी। यारों ने और भी चंग पर चढ़ाया। अब घर का मालिक था, जो चाहे कर सकता था, कोई उसका हाथ रोकने वाला नही था। सैर'-सपाटे करने लगा। तो लीला को रोते देख उसकी आँखें सजग हो जाती थीं, कहाँ अब उसे उदास और शोक-मग्न देखकर झुँझला उठता। जिंदगी रोने ही के लिए तो नही है। ईश्वर ने लड़के दिये थे, ईश्वर ने ही छीन लिये। क्या लड़कों के पीछे प्राण दे देना होगा? लीला यह बातें सुनकर भौंचक रह जाती। पिता के मुँह से ऐसे शब्द निकल सकते है। संसार में ऐसे प्राणी भी है।

होली के दिन थे। मर्दाना में गाना–बजाना हो रहा था। मित्रों की दावत का भी सामान किया गया था। अंदर लीला जमीन पर पड़ी हुई रो रही थी त्योहार के दिन उसे रोते ही कटते थे। आज बच्चे बच्चे होते तो अच्छे–अच्छे कपड़े पहने कैसे उछलते फिरते! वही न रहे तो कहाँ की तीज और कहाँ के त्योहार।

सहसा सीतासरन ने आकर कहा — क्या दिन भर रोती ही रहोगी? जरा कपड़े तो बदल डालो , आदमी बन जाओ। यह क्या तुमने अपनी गत बना रखी है?

लीला — तुम जाओ अपनी महफिल मे बैठो, तुम्हें मेरी क्या फिक्र पड़ी है।

सीतासरन — क्या दुनिया में और किसी के लड़के नही मरते? तुम्हारे ही सिर पर मुसीबत आयी है?

लीला — यह बात कौन नही जानता। अपना–अपना दिल ही तो है। उस पर किसी का बस है?

सीतासरन — मेरे साथ भी तो तुम्हारा कुछ कर्तव्य है?

लीला ने कुतूहल से पति को देखा, मानो उसका आशय नही समझी। फिर मुँह फेर कर रोने लगी।

सीतासरन — मै अब इस मनहूसत का अन्त कर देना चाहता हूँ। अगर तुम्हारा अपने दिल पर काबू नही है तो मेरा भी अपने दिल पर काबू नही है। मैं अब जिंदगी–भर मातम नही मना सकता।

लीला — तुम रंग–राग मनाते हो, मैं तुम्हें मना तो नही करती! मैं रोती हूँ तो क्यों नही रोने देते।

सीतासरन — मेरा घर रोने के लिए नही है?

लीला — अच्छी बात है, तुम्हारे घर में न रोऊँगी।

5

लीला ने देखा, मेरे स्वामी मेरे हाथ से निकले जा रहे है। उन पर विषय का भूत सवार हो गया है और कोई समझाने वाला नहीं। वह अपने होश मे नही है। मैं क्या करूँ, अगर मैं चली जाती हूँ तो थोडे ही दिनो में सारा ही घर मिट्टी में मिल जाएगा और इनका वही हाल होगा जो स्वार्थी मित्रों के चुंगल में फँसे हुए नौजवान रईसों का होता है। कोई कुलटा घर में आ जाएगी और इनका सर्वनाश कर देगी। ईश्वर! मैं क्या करूँ? अगर इन्हें कोई बीमारी हो जाती तो क्या मैं उस दशा मे इन्हें छोड़कर चली

जाती? कभी नही। मैं तन मन से इनकी सेवा–सुश्रूषा करती, ईश्वर से प्रार्थना करती, देवताओं की मनौतियाँ करती। माना इन्हें शारीरिक रोग नही है, लेकिन मानसिक रोग अवश्य है। आदमी रोने की जगह हँसे और हँसने की जगह रोये, उसके दीवाने होने में क्या संदेह है! मेरे चले जाने से इनका सर्वनाश हो जायेगा। इन्हें बचाना मेरा धर्म है।

हाँ, मुझे अपना शोक भूल जाना होगा। रोऊँगी, रोना तो तकदीर में लिखा ही है — रोऊँगी, लेकिन हंस–हंस कर। अपने भाग्य से लडूँगी। जो जाते रहे उनके नाम के सिवा और कर ही क्या सकती हूँ, लेकिन जो है उसे न जाने दूँगी। आ, ऐ टूटे हुए हृदय! आज तेरे टुकड़ों को जमा करके एक समाधि बनाऊँ और अपने शोक को उसके हवाले कर दूँ। ओ रोने वाली आँखों, आओ, मेरे आँसुओं को अपनी विहंसित छटा में छिपा लो। आओ, मेरे आभूषणों, मैंने बहुत दिनों तक तुम्हारा अपमान किया है, मेरा अपराध क्षमा करो। तुम मेरे भले दिनो के साक्षी हो, तुमने मेरे साथ बहुत विहार किए है, अब इस संकट में मेरा साथ दो ; मगर देखो दगा न करना ; मेरे भेदों को छिपाए रखना।

पिछले पहर को महफिल में सन्नाटा हो गया। हू–हा की आवाजें बन्द हो गयी। लीला ने सोचा क्या लोग कही चले गये, या सो गये? एकाएक सन्नाटा क्यों छा गया। जाकर दहलीज़ में खड़ी हो

गयी और बैठक में झाँककर देखा, सारी देह में एक ज्वाला–सी दौड गयी। मित्र लोग विदा हो गये थे। समाजियों का पता न था। केवल एक रमणी मसनद पर लेटी हुई थी और सीतासरन सामने झुका हुआ उससे बहुत धीरे–धीरे बातें कर रहा था। दोनों के चेहरों और आँखो से उनके मन के भाव साफ झलक रहे थे। एक की आँखों में अनुराग था, दूसरी की आँखो में कटाक्ष! एक भोला–भोला हृदय एक मायाविनी रमणी के हाथों लुटा जाता था। लीला की सम्पत्ति को उसकी आँखों के सामने एक छलिनी चुराये जाती थी। लीला को ऐसा क्रोध आया कि इसी समय चलकर इस कुलटा को आड़े हाथों लूँ, ऐसा दुत्कारूँ वह भी याद करें, खड़े–खड़े निकाल दूँ। वह पत्नी भाव जो बहुत दिनो से सो रहा था, जाग उठा और विकल करने लगा। पर उसने जब्त किया। वेग में दौड़ती हुई तृष्णाएँ अकस्मात् न रोकी जा सकती थी। वह उलटे पाँव भीतर लौट आयी और मन को शान्त करके सोचने लगी — वह रूप रंग में, हाव–भाव में, नखरे–तिल्ले में उस दुष्टा की बराबरी नही कर सकती। बिलकुल चांद का टुकड़ा है, अंग–अंग में स्फूर्ति भरी हुई है, पोर–पोर में मद छलक रहा है। उसकी आँखों में कितनी तृष्णा है। तृष्णा नही, बल्कि ज्वाला! लीला उसी वक्त आइने के सामने गयी। आज कई महीनों के बाद उसने आइने में अपनी सूरत देखी। उस मुख से एक आह

निकल गयी। शोक न उसकी कायापलट कर दी थी। उस रमणी के सामने वह ऐसी लगती थी जैसे गुलाब के सामने जूही का फूल!

6

सीतासरन का खुमार शाम को टूटा। आँखें खुलीं तो सामने लीला को खड़े मुस्कराते देखा। उसकी अनोखी छवि आँखों में समा गई। ऐसे खुश हुए मानो बहुत दिनो के वियोग के बाद उससे भेंट हुई हो। उसे क्या मालूम था कि यह रुप भरने के लिए कितने आँसू बहाये है; केशों मे यह फूल गूँथने के पहले आँखों में कितने मोती पिरोये है। उन्होनें एक नवीन प्रेमोत्साह से उठकर उसे गले लगा लिया और मुस्कराकर बोले — आज तो तुमने बडे–बडे शास्त्र सजा रखे है, कहाँ भागूँ?

लीला ने अपने हृदय की ओर उंगली दिखाकर कहा —–यहाँ आ बैठो बहुत भागे फिरते हो, अब तुम्हें बाँधकर रखूँगीं। बाग की बहार का आनन्द तो उठा चुके, अब इस अंधेरी कोठरी को भी देख लो।

सीतासरन ने लज्जित होकर कहा — उसे अंधेरी कोठरी मत कहो लीला वह प्रेम का मानसरोवर है!

इतने मे बाहर से किसी मित्र के आने की खबर आयी। सीतासरन चलने लगे तो लीला ने हाथ उनका पकड़कर हाथ कहा — मैं न जाने दूँगी।

सीतासरन — अभी आता हूँ।

लीला — मुझे डर है कहीं तुम चले न जाओ।

सीतासरन बाहर आये तो मित्र महाशय बोले —आज दिन भर सोते हो क्या? बहुत खुश नजर आते हो। इस वक्त तो वहाँ चलने की ठहरी थी न? तुम्हारी राह देख रही है।

सीतासरन — चलने को तैयार हूँ, लेकिन लीला जाने नहीं देगी।

मित्र — निरे गाउदी ही रहे। आ गए फिर बीवी के पंजे में! फिर किस बिरते पर गरमाये थे?

सीतासरन — लीला ने घर से निकाल दिया था, तब आश्रय ढूँढ़ता–फिरता था। अब उसने द्वार खोल दिये है और खड़ी बुला रही है।

मित्र — आज वह आनन्द कहाँ? घर को लाख सजाओ तो क्या बाग हो जायेगा?

सीतासरन — भई, घर बाग नही हो सकता, पर स्वर्ग हो सकता है। मुझे इस वक्त अपनी क्षुद्रता पर जितनी लज्जा आ रही है, वह मैं ही जानता हूँ। जिस संतान शोक में उसने अपने शरीर को घुला डाला और अपने रूप–लावण्य को मिटा दिया उसी शोक को केवल मेरा एक इशारा पाकर उसने भुला दिया। ऐसा भुला दिया मानो कभी शोक हुआ ही नही! मैं जानता हूँ वह बडे से बडे कष्ट सह सकती है। मेरी रक्षा उसके लिए आवश्यक है। जब अपनी उदासीनता के कारण उसने मेरी दशा बिगडते देखी तो अपना सारा शोक भूल गयी। आज मैंने उसे अपने आभूषण पहनकर मुस्कराते हुए देखा तो मेरी आत्मा पुलकित हो उठी। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि वह स्वर्ग की देवी है और केवल मुझ जैसे दुर्बल प्राणी की रक्षा करने भेजी गयी है। मैंने उसे कठोर शब्द कहे, वे अगर अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी मिल सकते, तो लौटा लेता। लीला वास्तव में स्वर्ग की देवी है!

आधार

सारे गाँव मे मथुरा का सा गठीला जवान न था। कोई बीस बरस की उमर थी। मसें भीग रही थी। गउएँ चराता, दूध पीता, कसरत करता, कुश्ती लड़ता था और सारे दिन बाँसुरी बजाता हाट मे विचरता था। ब्याह हो गया था, पर अभी कोई बाल–बच्चा न था। घर में कई हल की खेती थी, कई छोटे–बडे भाई थे। वे सब मिल–जुलकर खेती–बारी करते थे। मथुरा पर सारे गाँव को गर्व था, जब उसे जाँघिये–लँगोटे, नाल या मुग्दर के लिए रुपये–पैसे की जरूरत पड़ती तो तुरन्त दे दिये जाते थे। सारे घर की यही अभिलाषा थी कि मथुरा पहलवान हो जाय और अखाड़े में अपने सवाये को पछाड़े। इस लाड-प्यार से मथुरा जरा टर्रा हो गया था। गायें किसी के खेत मे पड़ी है और आप अखाड़े मे दंड लगा रहा है। कोई उलाहना देता तो उसकी त्योरियाँ बदल जाती। गरज कर कहता, जो मन मे आये कर लो, मथुरा तो अखाड़ा छोड़कर गाय हाँकने न जायेंगे! पर उसका डील–डौल देखकर किसी को उससे उलझने की हिम्मत न पड़ती। लोग गम खा जाते

गर्मियों के दिन थे, ताल–तलैया सूखी पड़ी थी। जोरों की लू चलने लगी थी। गाँव में कहीं से एक साँड़ आ निकला और गउओं के साथ हो लिया। सारे दिन गउओं के साथ रहता, रात को बस्ती में घुस आता और खूँटों से बँधे बैलों को सींगों से मारता। कभी–किसी की गीली दीवार को सींगों से खोद डालता, घर का कूड़ा सींगों से उड़ाता। कई किसानों ने साग–भाजी लगा रखी थी, सारे दिन सींचते–सींचते मरते थे। यह साँड़ रात को उन हरे–भरे खेतों में पहुँच जाता और खेत का खेत तबाह कर देता। लोग उसे डंडों से मारते, गाँव के बाहर भगा आते, लेकिन जरा देर में गायों में पहुँच जाता। किसी की अक्ल काम न करती थी कि इस संकट को कैसे टाला जाय। मथुरा का घर गाँव के बीच मे था, इसलिए उसके खेतों को साँड़ से कोई हानि न पहुँचती थी। गाँव में उपद्रव मचा हुआ था और मथुरा को जरा भी चिन्ता न थी।

आखिर जब धैर्य का अंतिम बंधन टूट गया तो एक दिन लोगों ने जाकर मथुरा को घेरा और बोले — भाई, कहो तो गाँव में रहें, कहो तो निकल जाएँ। जब खेती ही न बचेगी तो रहकर क्या करेंगें? तुम्हारी गायों के पीछे हमारा सत्यानाश हुआ जाता है, और तुम अपने रंग में मस्त हो। अगर भगवान ने तुम्हें बल दिया है तो इससे दूसरों की रक्षा करनी चाहिए, यह नही कि सबको पीस

कर पी जाओ। साँड़ तुम्हारी गायों के कारण आता है और उसे भगाना तुम्हारा काम है ; लेकिन तुम कानों में तेल डाले बैठे हो, मानो तुमसे कुछ मतलब ही नही।

मथुरा को उनकी दशा पर दया आयी। बलवान मनुष्य प्रायः दयालु होता है। बोला — अच्छा जाओ, हम आज साँड़ को भगा देंगे।

एक आदमी ने कहा — दूर तक भगाना, नही तो फिर लौट आयेगा।

मथुरा ने कंधे पर लाठी रखते हुए उत्तर दिया — अब लौटकर न आयेगा।

2

चिलचिलाती दोपहरी थी। मथुरा साँड़ को भगाये लिए जाता था। दोनों पसीने से तर थे। साँड़ बार-बार गाँव की ओर घूमने की चेष्टा करता, लेकिन मथुरा उसका इरादा ताडकर दूर ही से उसकी राह छेंक लेता। साँड़ क्रोध से उन्मत्त होकर कभी-कभी पीछे मुड़कर मथुरा पर तोड़ करना चाहता लेकिन उस समय

मथुरा सामना बचाकर बगल से ताबड़–तोड़ इतनी लाठियाँ जमाता कि साँड़ को फिर भागना पड़ता कभी दोनों अरहर के खेतों में दौड़ते, कभी झाड़ियों में। अरहर की खूँटियों से मथुरा के पांव लहू–लुहान हो रहे थे, झाड़ियों में धोती फट गई थी, पर उसे इस समय साँड़ का पीछा करने के सिवा और कोई सुध न थी। गाँव पर गाँव आते थे और निकल जाते थे। मथुरा ने निश्चय कर लिया कि इसे नदी पार भगाये बिना दम न लूँगा। उसका कंठ सूख गया था और आँखें लाल हो गयी थी, रोम–रोम से चिनगारियाँ सी निकल रही थी, दम उखड गया था ; लेकिन वह एक क्षण के लिए भी दम न लेता था। दो ढाई घंटो के बाद जाकर नदी आयी। यही हार–जीत का फैसला होने वाला था, यही से दोनों खिलाड़ियों को अपने दांव–पेंच के जौहर दिखाने थे। साँड़ सोचता था, अगर नदी में उतर गया तो यह मार ही डालेगा, एक बार जान लड़ाकर लौटने की कोशिश करनी चाहिए। मथुरा सोचता था, अगर वह लौट पडा तो इतनी मेहनत व्यर्थ हो जाएगी और गाँव के लोग मेरी हँसी उड़ायेगें। दोनों अपने — अपने घात में थे। साँड़ ने बहुत चाहा कि तेज दौड़कर आगे निकल जाऊँ और वहाँ से पीछे को फिरूँ, पर मथुरा ने उसे मुड़ने का मौका न दिया। उसकी जान इस वक्त सुई की नोक पर थी, एक हाथ भी चूका और प्राण भी गए, जरा पैर फिसला और फिर उठना नसीब

न होगा। आखिर मनुष्य ने पशु पर विजय पायी और साँड़ को नदी में घुसने के सिवाय और कोई उपाय न सूझा। मथुरा भी उसके पीछे नदी मे पैठ गया और इतने डंडे लगाये कि उसकी लाठी टूट गयी।

3

अब मथुरा को जोरों से प्यास लगी। उसने नदी में मुँह लगा दिया और इस तरह हौंक-हौंक कर पीने लगा मानो सारी नदी पी जाएगा। उसे अपने जीवन में कभी पानी इतना अच्छा न लगा था और न कभी उसने इतना पानी पिया था। मालूम नही, पाँच सेर पी गया या दस सेर लेकिन पानी गरम था, प्यास न बुझी; जरा देर में फिर नदी में मुँह लगा दिया और इतना पानी पिया कि पेट में साँस लेने की जगह भी न रही। तब गीली धोती कंधे पर डालकर घर की ओर चल दिया।

लेकिन दस की पाँच पग चला होगा कि पेट में मीठा-मीठा दर्द होने लगा। उसने सोचा, दौड़कर पानी पीने से ऐसा दर्द अकसर हो जाता है, जरा देर में दूर हो जाएगा। लेकिन दर्द बढ़ने लगा और मथुरा का आगे जाना कठिन हो गया। वह एक पेड के

नीचे बैठ गया और दर्द से बेचैन होकर जमीन पर लोटने लगा। कभी पेट को दबाता, कभी खड़ा हो जाता कभी बैठ जाता, पर दर्द बढ़ता ही जाता था। अन्त में उसने जोर–जोर से कराहना और रोना शुरू किया; पर वहाँ कौन बैठा था जो, उसकी खबर लेता। दूर तक कोई गाँव नही, न आदमी न आदमज़ात। बेचारा दोपहरी के सन्नाटे में तड़प–तड़प कर मर गया। हम कड़े से कड़ा घाव सह सकते है लेकिन जरा–सा भी व्यतिक्रम नही सह सकते। वही देव का सा जवान जो कोसों तक साँड़ को भगाता चला आया था, तत्वों के विरोध का एक वार भी न सह सका। कौन जानता था कि यह दौड उसके लिए मौत की दौड होगी! कौन जानता था कि मौत ही साँड़ का रूप धरकर उसे यों नचा रही है। कौन जानता था कि जल जिसके बिना उसके प्राण ओठों पर आ रहे थे, उसके लिए विष का काम करेगा।

संध्या समय उसके घरवाले उसे ढूँढ़ते हुए आये। देखा तो वह अनन्त विश्राम में मग्न था।

एक महीना गुजर गया। गाँववाले अपने काम-धंधे में लगे। घरवालों ने रो-धो कर सब्र किया; पर अभागिनी विधवा के आँसू कैसे पुँछते। वह हरदम रोती रहती। आँखें चाहे बन्द भी हो जाती, पर हृदय नित्य रोता रहता था। इस घर में अब कैसे निर्वाह होगा? किस आधार पर जिऊँगी? अपने लिए जीना या तो महात्माओं को आता है या लम्पटों ही को। अनूपा को यह कला क्या मालूम? उसके लिए तो जीवन का एक आधार चाहिए था, जिसे वह अपना सर्वस्व समझे, जिसके लिए वह लिये, जिस पर वह घमंड करे। घरवालों को यह गवारा न था कि वह कोई दूसरा घर करे। इसमें बदनामी थी। इसके सिवाय ऐसी सुशील, घर के कामों में कुशल, लेन-देन के मामलो में इतनी चतुर और रंग रूप की ऐसी सराहनीय स्त्री का किसी दूसरे के घर पड जाना ही उन्हें असह्य था। उधर अनूपा के मैकेवाले एक जगह बातचीत पक्की कर रहे थे। जब सब बातें तय हो गयी, तो एक दिन अनूपा का भाई उसे विदा कराने आ पहुंचा।

अब तो घर में खलबली मची। इधर कहा गया, हम विदा न करेंगे। भाई ने कहा, हम बिना विदा कराये मानेंगे नही। गाँव के आदमी जमा हो गये, पंचायत होने लगी। यह निश्चय हुआ कि अनूपा पर छोड़ दिया जाय, जी चाहे रहे। यहाँवालों को विश्वास था कि अनूपा इतनी जल्द दूसरा घर करने को राजी न होगी,

दो–चार बार ऐसा कह भी चुकी थी। लेकिन उस वक्त जो पूछा गया तो वह जाने को तैयार थी। आखिर उसकी विदाई का सामान होने लगा। डोली आ गई। गाँव–भर की स्त्रियाँ उसे देखने आयीं। अनूपा उठ कर अपनी सास के पैरो में गिर पड़ी और हाथ जोड़कर बोली — अम्मा, कहा–सुना माफ करना। जी में तो था कि इसी घर में पड़ी रहूँ, पर भगवान को मंजूर नही है।

यह कहते–कहते उसकी जबान बन्द हो गई।

सास करूणा से विह्वल हो उठी। बोली — बेटी, जहाँ जाओं वहाँ सुखी रहो। हमारे भाग्य ही फूट गये नही तो क्यों तुम्हें इस घर से जाना पड़ता। भगवान का दिया और सब कुछ है, पर उन्होने जो नही दिया उसमें अपना क्या बस; बस आज तुम्हारा देवर सयाना होता तो बिगड़ी बात बन जाती। तुम्हारे मन में बैठे तो इसी को अपना समझो पालो–पोसो बड़ा हो जायेगा तो सगाई कर दूँगी।

यह कहकर उसने अपने सबसे छोटे लड़के वासुदेव से पूछा — क्यों रे! भौजाई से शादी करेगा?

वासुदेव की उम्र पाँच साल से अधिक न थी। अबकी उसका ब्याह होने वाला था। बातचीत हो चुकी थी। बोला — तब तो दूसरे के घर न जायगी न?

मा — नही, जब तेरे साथ ब्याह हो जायगी तो क्यों जायगी?

वासुदेव — तब मैं करूँगा।

माँ — अच्छा, उससे पूछ, तुझसे ब्याह करेगी।

वासुदेव अनूप की गोद में जा बैठा और शरमाता हुआ बोला — हमसे ब्याह करोगी?

यह कह कर वह हँसने लगा; लेकिन अनूपा की आँखें डबडबा गयीं, वासुदेव को छाती से लगाते हुए बोली — अम्मा, दिल से कहती हो?

सास — भगवान् जानते है!

अनूपा — आज यह मेरे हो गये?

सास — हाँ सारा गाँव देख रहा है।

अनूपा — तो भैया से कहला भेजो, घर जायें, मैं उनके साथ न जाऊँगी।

अनूपा को जीवन के लिए आधार की जरूरत थी। वह आधार मिल गया। सेवा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। सेवा ही उस के जीवन का आधार है।

अनूपा ने वासुदेव को लालन–पोषण शुरू किया। उबटन और तैल लगाती, दूध–रोटी मल–मल के खिलाती। आप तालाब नहाने जाती तो उसे भी नहलाती। खेत में जाती तो उसे भी साथ ले जाती। थोडे की दिनों में उससे हिल–मिल गया कि एक क्षण भी उसे न छोडता। माँ को भूल गया। कुछ खाने को जी चाहता तो अनूपा से माँगता, खेल में मार खाता तो रोता हुआ अनूपा के पास आता। अनूपा ही उसे सुलाती, अनूपा ही जगाती, बीमार हो तो अनूपा ही गोद में लेकर बदलू वैध के घर जाती, और दवायें पिलाती।

गाँव के स्त्री–पुरूष उसकी यह प्रेम तपस्या देखते और दाँतो उंगली दबाते। पहले बिरले ही किसी को उस पर विश्वास था। लोग समझते थे, साल–दो–साल में इसका जी ऊब जाएगा और किसी तरफ का रास्ता लेगी; इस दुधमुँहे बालक के नाम कब तक बैठी रहेगी; लेकिन यह सारी आशंकाएँ निर्मूल निकलीं। अनूपा को किसी ने अपने व्रत से विचलित होते न देखा। जिस हृदय मे सेवा को स्रोत बह रहा हो — स्वाधीन सेवा का — उसमें वासनाओं के लिए कहाँ स्थान? वासना का वार निर्मम,

आशाहीन, आधारहीन प्राणियों पर ही होता है चोर की अंधेरे में ही चलती है, उजाले में नही।

वासुदेव को भी कसरत का शोक था। उसकी शक्ल सूरत मथुरा से मिलती–जुलती थी, डील–डौल भी वैसा ही था। उसने फिर अखाड़ा जगाया। और उसकी बांसुरी की तानें फिर खेतों में गूँजने लगीं।

इस भाँति 13 बरस गुजर गये। वासुदेव और अनूपा में सगाई की तैयारी होने लगीं।

5

लेकिन अब अनूपा वह अनूपा न थी, जिसने 14 वर्ष पहले वासुदेव को पति भाव से देखा था, अब उस भाव का स्थान मातृ-भाव ने लिया था। इधर कुछ दिनों से वह एक गहरे सोच में डूबी रहती थी। सगाई के दिन ज्यो–ज्यों निकट आते थे, उसका दिल बैठा जाता था। अपने जीवन में इतने बडे परिवर्तन की कल्पना ही से उसका कलेजा दहक उठता था। जिसे बालक की भाँति पाला–पोसा, उसे पति बनाते हुए, लज्जा से उसका मुख लाल हो जाता था।

द्वार पर नगाडा बज रहा था। बिरादरी के लोग जमा थे। घर में गाना हो रहा था! आज सगाई की तिथि थी।

सहसा अनूपा ने जा कर सास से कहा — अम्माँ मै तो लाज के मारे मरी जा रही हूँ।

सास ने भौंचक्की हो कर पूछा — क्यों बेटी, क्या है?

अनूपा — मैं सगाई न करूँगी।

सास — कैसी बात करती है बेटी? सारी तैयारी हो गयी। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?

अनूपा — जो चाहे कहें, जिनके नाम पर 14 वर्ष बैठी रही उसी के नाम पर अब भी बैठी रहूँगी। मैंने समझा था मरद के बिना औरत से रहा न जाता होगा। मेरी तो भगवान ने इज्जत आबरू निबाह दी। जब नयी उम्र के दिन कट गये तो अब कौन चिन्ता है! वासुदेव की सगाई कोई लड़की खोजकर कर दो। जैसे अब तक उसे पाला, उसी तरह अब उसके बाल–बच्चों को पालूँगी।

एक आँच की कसर

.

सारे नगर में महाशय यशोदानन्द का बखान हो रहा था। नगर ही में नही, समस्त प्रान्त में उनकी कीर्ति की जाती थी, समाचार पत्रों में टिप्पणियाँ हो रही थी, मित्रों से प्रशंसापूर्ण पत्रों का तांता लगा हुआ था। समाज–सेवा इसको कहते है! उन्नत विचार के लोग ऐसा ही करते है। महाशय जी ने शिक्षित समुदाय का मुख उज्जवल कर दिया। अब कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि हमारे नेता केवल बात के धनी है, काम के धनी नही है! महाशय जी चाहते तो अपने पुत्र के लिए उन्हें कम से कम बीस हजार रूपये दहेज में मिलते, उस पर खुशामद घाते में! मगर लाला साहब ने सिद्धान्त के सामने धन की रत्ती बराबर परवा न की और अपने पुत्र का विवाह बिना एक पाई दहेज लिए स्वीकार किया। वाह! वाह! हिम्मत हो तो ऐसी हो, सिद्धान्त प्रेम हो तो ऐसा हो, आदर्श–पालन हो तो ऐसा हो। वाह रे सच्चे वीर, अपनी माता के सच्चे सपूत, तूने वह कर दिखाया जो कभी किसी ने किया था। हम बडे गर्व से तेरे सामने मस्तक नवाते है।

महाशय यशोदानन्द के दो पुत्र थे। बड़ा लडका पढ लिख कर फाजिल हो चुका था। उसी का विवाह तय हो रहा था और हम देख चुके है, बिना कुछ दहेज लिये।

आज का तिलक था। शाहजहाँपुर स्वामीदयाल तिलक ले कर आने वाले थे। शहर के गणमान्य सज्जनों को निमन्त्रण दे दिये गये थे। वे लोग जमा हो गये थे। महफिल सजी हुई थी। एक प्रवीण सितारिया अपना कौशल दिखाकर लोगो को मुग्ध कर रहा था। दावत को सामान भी तैयार था? मित्रगण यशोदानन्द को बधाईयाँ दे रहे थे।

एक महाशय बोले — तुमने तो कमाल कर दिया!

दूसरे — कमाल! यह कहिए कि झण्डे गाड दिये। अब तक जिसे देखा मंच पर व्याख्यान झाड़ते ही देखा। जब काम करने का अवसर आता था तो लोग दुम लगा लेते थे।

तीसरे — कैसे–कैसे बहाने गढ़े जाते है — साहब हमें तो दहेज से सख्त नफरत है यह मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है, पर क्या करूँ क्या, बच्चे की अम्मीजान नहीं मानती। कोई अपने बाप पर फेंकता है, कोई और किसी खर्राट पर।

चौथे — अजी, कितने तो ऐसे बेहया है जो साफ–साफ कह देते है कि हमने लड़के को शिक्षा–दीक्षा में जितना खर्च किया है, वह हमें

मिलना चाहिए। मानो उन्होने यह रुपये उन्होंने किसी बैंक में जमा किये थे।

पाँचवें — खूब समझ रहा हूँ, आप लोग मुझ पर छींटे उड़ा रहे है। इसमें लड़के वालों का ही सारा दोष है या लड़की वालों का भी कुछ है।

पहले — लड़की वालों का क्या दोष है सिवा इसके कि वह लड़की का बाप है।

दूसरे — सारा दोष ईश्वर का जिसने लड़कियाँ पैदा कीं। क्यों?

पाँचवें — मैं यह नही कहता। न सारा दोष लड़की वालों का हैं, न सारा दोष लड़के वालों का। दोनों की दोषी है। अगर लड़की वाला कुछ न दे तो उसे यह शिकायत करने का कोई अधिकार नही है कि डाल क्यों नही लायें, सुन्दर जोडे क्यों नही लाये, बाजे–गाजे पर धूमधाम के साथ क्यों नही आये? बताइए!

चौथे — हाँ, आपका यह प्रश्न गौर करने लायक है। मेरी समझ में तो ऐसी दशा में लड़कें के पिता से यह शिकायत न होनी चाहिए।

पाँचवें — तो यों कहिए कि दहेज की प्रथा के साथ ही डाल, गहने और जोड़ों की प्रथा भी त्याज्य है। केवल दहेज को मिटाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है।

यशोदानन्द — यह भी Lame excuse [1] है। मैंने दहेज नहीं लिया है। लेकिन क्या डाल–गहने न ले जाऊँगा।

पहले — महाशय आपकी बात निराली है। आप अपनी गिनती हम दुनियाँ वालों के साथ क्यों करते हैं? आपका स्थान तो देवताओं के साथ है।

दूसरा — 20 हजार की रकम छोड़ दी? क्या बात है।

यशोदानन्द — मेरा तो यह निश्चय है कि हमें सदैव principles [2] पर स्थिर रहना चाहिए। Principles के सामने money [3] की कोई value [4] नही है। दहेज की कुप्रथा पर मैंने खुद कोई व्याख्यान नही दिया, शायद कोई नोट तक नही लिखा। हाँ,

---

[1] थोथी दलील

[2] सिद्धांतों

[3] धन

[4] मूल्य

conference [5] में इस प्रस्ताव को second [6] कर चुका हूँ। मैं उसे तोडना भी चाहूँ तो आत्मा न तोड़ने देगी। मैं सत्य कहता हूँ, यह रूपये लूँ तो मुझे इतनी मानसिक वेदना होगी कि शायद मैं इस आघात स बच ही न सकूँ।

पाँचवें — अब की conference आपको सभापति न बनाये तो उसका घोर अन्याय है।

यशोदानन्द — मैंने अपनी duty [7] कर दी उसका recognition [8] हो या न हो, मुझे इसकी परवाह नही।

इतने में खबर हुई कि महाशय स्वामीदयाल आ पहुँचे। लोग उनका अभिवादन करने को तैयार हुए, उन्हें मसनद पर ला बिठाया और तिलक का संस्कार आरम्भ हो गया। स्वामीदयाल ने एक ढाक के पत्तल पर नारियल, सुपारी, चावल पान आदि वस्तुएँ वर के सामने रखीं। ब्राह्मणों ने मंत्र पढ़ें हवन हुआ और वर के माथे पर तिलक लगा दिया गया। तुरन्त घर की स्त्रियो ने मंगलाचरण गाना शुरू किया। यहाँ महफिल में महाशय

---

[5] सभा

[6] अनुमोदन

[7] कर्तव्य

[8] कदर

यशोदानन्द ने एक चौकी पर खड़े होकर दहेज की कुप्रथा पर व्याख्यान देना शुरू किया। व्याख्यान पहले से लिखकर तैयार कर लिया गया था। उन्होनें दहेज की ऐतिहासिक व्याख्या की थी — पूर्वकाल में दहेज का नाम भी न था। महाशयों! कोई जानता ही न था कि दहेज या ठहरौनी किस चिडिया का नाम है। सत्य मानिए, कोई जानता ही न था कि ठहरौनी है क्या चीज, पशु या पक्षी, आसमान में या जमीन में, खाने में या पीने में। बादशाही जमाने में इस प्रथा की बुनियाद पड़ी। हमारे युवक सेनाओं में सम्मिलित होने लगे। यह वीर लोग थे, सेनाओं में जाना गर्व समझते थे। माताएँ अपने दुलारों को अपने हाथ से शस्त्रों से सजा कर रणक्षेत्र भेजती थीं। इस भाँति युवकों की संख्या कम होने लगी और लड़कों का मोल-तोल शुरू हुआ। आज यह नौबत आ गयी है कि मेरी इस तुच्छ — महातुच्छ सेवा पर पत्रों में टिप्पणियाँ हो रही है मानों मैंने कोई असाधारण काम किया है। मैं कहता हूँ; अगर आप संसार में जीवित रहना चाहते हो तो इस प्रथा क तुरन्त अन्त कीजिए।

एक महाशय ने शंका की — क्या इसका अन्त किये बिना हम सब मर जायेंगे?

यशोदानन्द — अगर ऐसा होता है तो क्या पूछना था, लोगों को दंड मिल जाता और वास्तव में ऐसा होना चाहिए। यह ईश्वर का

अत्याचार है कि ऐसे लोभी, धन पर गिरने वाले, बर्दा–फरोश, अपनी संतान का विक्रय करने वाले नराधम जीवित है। और समाज उनका तिरस्कार नही करता। मगर वह सब बर्दा–फरोश है — इत्यादि।

व्याख्यान बहुत लम्बा ओर हास्य भरा हुआ था। लोगों ने खूब वाह–वाह की। अपना वक्तव्य समाप्त करने के बाद उन्होने अपने छोटे लड़के परमानन्द को, जिसकी अवस्था सात वर्ष की थी, मंच पर खड़ा किया। उसे उन्होनें एक छोटा–सा व्याख्यान लिखकर दे रखा था। दिखाना चाहते थे कि इस कुल के छोटे बालक भी कितने कुशाग्र बुद्धि है। सभा समाजों में बालकों से व्याख्यान दिलाने की प्रथा है ही, किसी को कुतूहल न हुआ। बालक बड़ा सुन्दर, होनहार, हंसमुख था। मुस्कराता हुआ मंच पर आया और एक जेब से कागज निकाल कर बड़े गर्व के साथ उच्च स्वर में पढने लगा —

प्रिय बन्धुवर,

नमस्कार!

आपके पत्र से विदित होता है कि आपको मुझ पर विश्वास नही है। मैं ईश्वर को साक्षी करके धन आपकी सेवा में इतनी गुप्त रीति से पहुँचेगा कि किसी को लेशमात्र भी सन्देह न होगा। हाँ

केवल एक जिज्ञासा करने की धृष्टता करता हूँ। इस व्यापार को गुप्त रखने से आपको जो सम्मान और प्रतिष्ठा–लाभ होगा और मेरे निकटवर्ती में मेरी जो निंदा की जाएगी, उसके उपलक्ष्य में मेरे साथ क्या रिआयत होगी? मेरा विनीत अनुरोध है कि 25 में से 5 निकालकर मेरे साथ न्याय किया जाय...।

महाशय यशोदानन्द घर में मेहमानों के लिए भोजन परसने का आदेश करने गये थे। निकले तो यह वाक्य उनके कानों में पड़ा — 25 में से 5 मेरे साथ न्याय किया कीजिए।' चेहरा फक हो गया, झपट कर लड़के के पास गये, कागज उसके हाथ से छीन लिया और बोले — नालायक, यह क्या पढ रहा है, यह तो किसी मुवक्किल का खत है जो उसने अपने मुकदमें के बारे में लिखा था। यह तू कहाँ से उठा लाया, शैतान जा वह कागज ला, जो तुझे लिखकर दिया गया था।

एक महाशय — पढने दीजिए, इस तहरीर में जो लुत्फ है, वह किसी दूसरी तकरीर में न होगा।

दूसरे — जादू वह जो सिर चढ़ के बोलें!

तीसरे — अब जलसा बरखास्त कीजिए। मैं तो चला।

चौथे — यहाँ भी चलन्तु हुए।

यशोदानन्द — बैठिए–बैठिए, पत्तल लगाये जा रहे है।

पहले — बेटा परमानन्द, जरा यहाँ तो आना, तुमने यह कागज कहाँ पाया?

परमानन्द — बाबू जी ही तो लिखकर अपने मेज के अन्दर रख दिया था। मुझसे कहा था कि इसे पढना। अब नाहक मुझसे खफा रहे है।

यशोदानन्द — वह यह कागज था कि सुअर! मैंने तो मेज के ऊपर ही रख दिया था। तूने ड्राअर में से क्यों यह कागज निकाला?

परमानन्द — मुझे मेज पर नहीं मिला।

यशोदानन्द — तो मुझसे क्यों नही कहा, ड्राअर क्यों खोला? देखो, आज ऐसी खबर लेता हूँ कि तुम भी याद करोगे।

पहले — यह आकाशवाणी है।

दूसरे — इस को लीडरी कहते है कि अपना उल्लू सीधा करो और नेकनाम भी बनो।

तीसरे — शरम आनी चाहिए। यह त्याग से मिलता है, धोखे–घड़ी से नही।

चौथे — मिल तो गया था पर एक आँच की कसर रह गयी।

पाँचवे — ईश्वर पाखंडियों को यों ही दण्ड देता है

यह कहते हुए लोग उठ खड़े हुए। यशोदानन्द समझ गये कि भंडा फूट गया, अब रंग न जमेगा। बार-बार परमानन्द को कुपित नेत्रों से देखते थे और डंडा तौलकर रह जाते थे। इस शैतान ने आज जीती-जिताई बाजी खो दी, मुँह में कालिख लग गयी, सिर नीचा हो गया। गोली मार देने का काम किया है।

उधर रास्ते में मित्र-वर्ग यों टिप्पणियाँ करते जा रहे थे —

एक — ईश्वर ने मुँह में कैसी कालिमा लगायी कि हयादार होगा तो अब सूरत न दिखाएगा।

दूसरा — ऐसे-ऐसे धनी, मानी, विद्वान लोग ऐसे पतित हो सकते है। मुझे यही आश्चर्य है। लेना है तो खुले खजाने लो, कौन तुम्हारा हाथ पकडता है; यह क्या कि माल चुपके-चुपके उड़ाओ और यश भी कमाओ!

तीसरा — मक्कार का मुँह काला!

चौथा — यशोदानन्द पर दया आ रही है। बेचारी ने इतनी धूर्तता की, उस पर भी कलई खुल ही गयी। बस एक आँच की कसर रह गई।

माता का हृदय

माधवी की आँखों में सारा संसार अंधेरा हो रहा था। काई अपना मददगार दिखाई न देता था। कहीं आशा की झलक न थी। उस निर्धन घर में वह अकेली पड़ी रोती थी और कोई आँसू पोंछने वाला न था। उसके पति को मरे हुए 22 वर्ष हो गए थे। घर में कोई सम्पत्ति न थी। उसने न–जाने किन तकलीफों से अपने बच्चे को पाल–पोस कर बड़ा किया था। वही जवान बेटा आज उसकी गोद से छीन लिया गया था और छीनने वाले कौन थे? अगर मृत्यु ने छीना होता तो वह सब्र कर लेती। मौत से किसी को द्वेष नहीं होता। मगर स्वार्थियों के हाथों यह अत्याचार असह्य हो रहा था। इस घोर संताप की दशा में उसका जी रह–रह कर इतना विफल हो जाता कि इसी समय चलूँ और उस अत्याचारी से इसका बदला लूँ जिसने उस पर निष्ठुर आघात किया है। मारूँ या मर जाऊँ। दोनों ही में संतोष हो जाएगा।

कितना सुंदर, कितना होनहार बालक था! यही उसके पति की निशानी, उसके जीवन का आधार उसकी उम्र–भर की कमाई थी। वही लडका इस वक्त जेल मे पडा न जाने क्या–क्या

तकलीफें झेल रहा होगा! और उसका अपराध क्या था? कुछ नही। सारा मुहल्ला उस पर जान देता था। विद्यालय के अध्यापक उस पर जान देते थे। अपने–बेगाने सभी तो उसे प्यार करते थे। कभी उसकी कोई शिकायत सुनने में नहीं आयी। ऐसे बालक की माता होने पर उसे बधाई देती थी। कैसा सज्जन, कैसा उदार, कैसा परमार्थी! खुद भूखो सो रहे मगर क्या मजाल कि द्वार पर आने वाले अतिथि को रूखा जबाब दे। ऐसा बालक क्या इस योग्य था कि जेल में जाता! उसका अपराध यही था, वह कभी–कभी सुनने वालों को अपने दुखी भाइयों का दुखड़ा सुनाया करता था। अत्याचार से पीडित प्राणियों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहता था। क्या यही उसका अपराध था? दूसरों की सेवा करना भी अपराध है? किसी अतिथि को आश्रय देना भी अपराध है?

इस युवक का नाम आत्मानन्द था। दुर्भाग्यवश उसमें वे सभी सद्गुण थे जो जेल का द्वार खोल देते है। वह निर्भीक था, स्पष्टवादी था, साहसी था, स्वदेश–प्रेमी था, निःस्वार्थ था, कर्तव्यपरायण था। जेल जाने के लिए इन्हीं गुणों की जरूरत है। स्वाधीन प्राणियों के लिए वे गुण स्वर्ग का द्वार खोल देते है, पराधीनों के लिए नरक के! आत्मानन्द के सेवा–कार्य ने, उसकी वक्तृताओं ने और उसके राजनीतिक लेखों ने उसे सरकारी

कर्मचारियों की नजरों में चढा दिया था। सारा पुलिस-विभाग नीचे से ऊपर तक उससे सतर्क रहता था, सबकी निगाहें उस पर लगीं रहती थीं। आखिर जिले में एक भयंकर डाके ने उन्हे इच्छित अवसर प्रदान कर दिया।

आत्मानन्द के घर की तलाशी हुई, कुछ पत्र और लेख मिले, जिन्हें पुलिस ने डाके का बीजक सिद्ध किया। लगभग 20 युवकों की एक टोली फाँस ली गयी। आत्मानन्द इसका मुखिया ठहराया गया। शहादतें हुई। इस बेकारी और गिरानी के जमाने में आत्मा सस्ती और कौन वस्तु हो सकती है। बेचने को और किसी के पास रह ही क्या गया है। नाम मात्र का प्रलोभन देकर अच्छी-से-अच्छी शहादतें मिल सकती है, और पुलिस के हाथ तो निकृष्ट-से-निकृष्ट गवाहियाँ भी देववाणी का महत्व प्राप्त कर लेती है। शहादतें मिल गयीं, महीने-भर तक मुकदमा क्या चला एक स्वाँग चलता रहा और सारे अभियुक्तों को सजाएँ दे दी गयीं। आत्मानन्द को सबसे कठोर दंड मिला। 8 वर्ष का कठिन कारावास। माधवी रोज कचहरी जाती; एक कोने में बैठी सारी कार्रवाई देखा करती।

मानवी चरित्र कितना दुर्बल, कितना नीच है, इसका उसे अब तक अनुमान भी न हुआ था। जब आत्मानन्द को सजा सुना दी गयी और वह माता को प्रणाम करके सिपाहियों के साथ चला तो

माधवी मूर्छित होकर गिर पड़ी। दो–चार सज्जनों ने उसे एक तांगे पर बैठाकर घर तक पहुंचाया। जब से वह होश में आयी है उसके हृदय में शूल–सा उठ रहा है। किसी तरह धैर्य नही होता। उस घोर आत्म–वेदना की दशा में अब जीवन का एक लक्ष्य दिखाई देता है और वह इस अत्याचार का बदला है।

अब तक पुत्र उसके जीवन का आधार था। अब शत्रुओं से बदला लेना ही उसके जीवन का आधार होगा। जीवन में उसके लिए कोई आशा न थी। इस अत्याचार का बदला लेकर वह अपना जन्म सफल समझेगी। इस अभागे नर–पिशाच बागची ने जिस तरह उसे रक्त के आँसू रुलाये हैं उसी भाँति यह भी उस रुलायेगी। नारी–हृदय कोमल है लेकिन केवल अनुकूल दशा में, जिस दशा में पुरूष दूसरों को दबाता है, स्त्री शील और विनय की देवी हो जाती है। लेकिन जिसके हाथों में अपना सर्वनाश हो गया हो उसके प्रति स्त्री की पुरूष से कम घृणा ओर क्रोध नहीं होता अन्तर इतना ही है कि पुरूष शास्त्रों से काम लेता है, स्त्री कौशल से।

रात भीगती जाती थी और माधवी उठने का नाम न लेती थी। उसका दुःख प्रतिकार के आवेश में विलीन होता जाता था। यहाँ तक कि इसके सिवा उसे और किसी बात की याद ही न रही। उसने सोचा, कैसे यह काम होगा? कभी घर से नहीं निकली।

वैधव्य के 22 साल इसी घर कट गये लेकिन अब निकलूँगी। जबरदस्ती निकलूँगी, भिखारिन बनूँगी, टहलवी बनूँगी, झूठ बोलूँगी, सब कुकर्म करूँगी। सत्कर्म के लिए संसार में स्थान नहीं। ईश्वर ने निराश होकर कदाचित् इसकी ओर से मुँह फेर लिया है। जभी तो यहाँ ऐसे–ऐसे अत्याचार होते है। और पापियों को दंड नहीं मिलता। अब इन्हीं हाथों से उसे दंड दूँगी।

2

संध्या का समय था। लखनऊ के एक सजे हुए बंगले में मित्रों की महफिल जमी हुई थी। गाना–बजाना हो रहा था। एक तरफ आतिशबाजियाँ रखी हुई थीं। दूसरे कमरे में मेजों पर खाना चुना जा रहा था। चारों तरफ पुलिस के कर्मचारी नजर आते थे। वह पुलिस के सुपरिंटेंडेंट मिस्टर बगीची का बंगला है। कई दिन हुए उन्होने एक मार्के का मुकदमा जीता था। अफसरों ने खुश होकर उनकी तरक्की की दी थी। और उसी की खुशी में यह उत्सव मनाया जा रहा था। यहाँ आये दिन ऐसे उत्सव होते रहते थे। मुफ्त के गवैये मिल जाते थे, मुफ्त की आतिशबाजी; फल और मेवे और मिठाइयाँ आधे दामों पर बाजार से आ जाती थीं। और

चट दावतों हो जाती थी। दूसरों के जहाँ सौ लगते, वहाँ इनका दस से काम चल जाता था। दौड़–धूप करने को सिपाहियों की फौज थी हीं। और यह मार्के का मुकदमा क्या था? वह जिसमें निरपराध युवकों को बनावटी शहादत से जेल में ठूस दिया गया था।

गाना समाप्त होने पर लोग भोजन करने बैठें। बेगार के मजदूर और पल्लेदार जो बाजार से दावत और सजावट के सामान लाये थे, रोते या दिल में गालियाँ देते चले गये थे; पर एक बुढ़िया अभी तक द्वार पर बैठी हुई थी। और अन्य मजदूरों की तरह वह भुनभुनाकर काम न करती थी। हुक्म पाते ही खुश–दिल मजदूर की तरह हुक्म बजा लाती थी। यह माधवी थी, जो इस समय मजूरनी का वेष धारण करके अपना घातक संकल्प पूरा करने आयी थी।

मेहमान चले गये। महफिल उठ गयी। दावत का समान समेट दिया गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया; लेकिन माधवी अभी तक वहीं बैठी थी।

सहसा मिस्टर बागची ने पूछा — बुड्ढी तू यहाँ क्यों बैठी है? तुझे कुछ खाने को मिल गया?

माधवी — हाँ हुजूर, मिल गया।

बागची — तो जाती क्यों नहीं?

माधवी — कहाँ जाऊँ सरकार , मेरा कोई घर-द्वार थोड़े ही है। हुकुम हो तो यहीं पड़ी रहूँ। पाव-भर आटे की परवस्ती हो जाय हुजूर!

बगची — नौकरी करेगी?

माधवी — क्यों न करूँगी सरकार, यही तो चाहती हूँ।

बागची-लड़का खिला सकती है?

माधवी-हाँ हजूर, वह मेरे मन का काम है।

बगची-अच्छी बात है। तु आज ही से रह। जा घर में देख, जो काम बतायें, वहा कर।

3

एक महीना गुजर गया। माधवी इतना तन-मन से काम करती है कि सारा घर उससे खुश है। बहूजी का मिजाज बहुत ही चिड़चिड़ा है। वह दिन-भर खाट पर पड़ी रहती है और बात-बात पर नौकरों पर झल्लाया करती है। लेकिन माधवी उनकी घुड़कियों को भी सहर्ष सह लेती है। अब तक मुश्किल से

कोई दाई एक सप्ताह से अधिक ठहरी थी। माधवी का कलेजा है कि जली-कटी सुनकर भी मुख पर मैल नहीं आने देती।

मिस्टर बागची के कई लड़के हो चुके थे, पर यही सबसे छोटा बच्चा बच रहा था। बच्चे पैदा तो हृष्ट-पुष्ट होते, किन्तु जन्म लेते ही उन्हे एक-न-एक रोग लग जाता था और कोई दो-चार महीने, कोई साल भर जी कर चल देता था। माँ-बाप दोनों इस शिशु पर प्राण देते थे। उसे जरा जुकाम भी हो तो दोनो विकल हो जाते। स्त्री-पुरूष दोनो शिक्षित थे, पर बच्चे की रक्षा के लिए टोना-टोटका , दुआ-ताबीज, जन्तर-मन्तर एक से भी उन्हें इनकार न था।

माधवी से यह बालक इतना हिल गया कि एक क्षण के लिए भी उसकी गोद से न उतरता। वह कहीं एक क्षण के लिए चली जाती तो रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा लेता। वह सुलाती तो सोता, वह दूध पिलाती तो पिता, वह खिलाती तो खेलता, उसी को वह अपनी माता समझता। माधवी के सिवा उसके लिए संसार में कोई अपना न था। बाप को तो वह दिन-भर में केवल दो-नार बार देखता और समझता यह कोई परदेशी आदमी है। माँ आलस्य और कमजोरी के मारे गोद में लेकर टहल न सकती थी। उसे वह अपनी रक्षा का भार संभालने के योग्य न समझता था, और नौकर-चाकर उसे गोद में ले लेते तो इतनी बेदर्दी से

कि उसके कोमल अंगों मे पीड़ा होने लगती थी। कोई उसे ऊपर उछाल देता था, यहाँ तक कि अबोध शिशु का कलेजा मुँह को आ जाता था। उन सबों से वह डरता था। केवल माधवी थी जो उसके स्वभाव को समझती थी। वह जानती थी कि कब क्या करने से बालक प्रसन्न होगा। इसलिए बालक को भी उससे प्रेम था।

माधवी ने समझाया था, यहाँ कंचन बरसता होगा; लेकिन उसे देखकर कितना विस्मय हुआ कि बड़ी मुश्किल से महीने का खर्च पूरा पडता है। नौकरों से एक–एक पैसे का हिसाब लिया जाता था और बहुधा आवश्यक वस्तुएँ भी टाल दी जाती थीं। एक दिन माधवी ने कहा — बच्चे के लिए कोई सेजगाड़ी क्यों नहीं मँगवा देतीं। गोद में उसकी बाढ़ मारी जाती है।

मिसेज बागची ने कुंठित होकर कहा — कहाँ से मँगवा दूँ? कम से कम 50-60 रुपये में आयेगी। इतने रुपये कहाँ है?

माधवी — मालकिन, आप भी ऐसा कहती है!

मिसेज बागची — झूठ नहीं कहती। बाबू जी की पहली स्त्री से पाँच लड़कियाँ और है। सब इस समय इलाहाबाद के एक स्कूल में पढ रही हैं। बड़ी की उम्र 15–16 वर्ष से कम न होगी। आधा वेतन तो उधार ही चला जाता है। फिर उनकी शादी की भी तो

फिक्र है। पाँचों के विवाह में कम–से–कम 25 हजार लगेंगे। इतने रुपये कहाँ से आयेंगे। मै चिंता के मारे मरी जाती हूँ। मुझे कोई दूसरी बीमारी नहीं है केवल चिंता का रोग है।

माधवी — घूस भी तो मिलती है।

मिसेज बागची — बूढ़ी, ऐसी कमाई में बरकत नहीं होती। यही क्यों सच पूछो तो इसी घूस ने हमारी यह दुर्गति कर रखी है। क्या जाने औरों को कैसे हजम होती है। यहाँ तो जब ऐसे रूपये आते है तो कोई–न–कोई नुकसान भी अवश्य हो जाता है। एक आता है तो दो लेकर जाता है। बार–बार मना करती हूँ, हराम की कौड़ी घर मे न लाया करो, लेकिन मेरी कौन सुनता है।

बात यह थी कि माधवी को बालक से स्नेह होता जाता था। उसके अमंगल की कल्पना भी वह न कर सकती थी। वह अब उसी की नींद सोती और उसी की नींद जागती थी। अपने सर्वनाश की बात याद करके एक क्षण के लिए बागची पर क्रोध तो हो आता था और घाव फिर हरा हो जाता था; पर मन पर कुत्सित भावों का आधिपत्य न था। घाव भर रहा था, केवल ठेस लगने से दर्द हो जाता था। उसमें स्वयं टीस या जलन न थी। इस परिवार पर अब उसे दया आती थी। सोचती, बेचारे यह छीन–झपट न करें तो कैसे गुजर हो। लड़कियों का विवाह कहाँ

से करेंगे! स्त्री को जब देखो बीमार ही रहती है। उन पर बाबू जी को एक बोतल शराब भी रोज चाहिए। यह लोग स्वयं अभागे है। जिसके घर में 5–5 क्वारी कन्याएँ हों, बालक हो–हो कर मर जाते हों, घरनी दा बीमार रहती हो, स्वामी शराब का तली हो, उस पर तो यों ही ईश्वर का कोप है। इनसे तो मैं अभागिन ही अच्छी!

4

दुर्बल बालकों के लिए बरसात बुरी बला है। कभी खाँसी है, कभी ज्वर, कभी दस्त। जब हवा में ही शीत भरी हो तो कोई कहाँ तक बचाये। माधवी एक दिन आपने घर चली गयी थी। बच्चा रोने लगा तो माँ ने एक नौकर को दिया, इसे बाहर बहला ला। नौकर ने बाहर ले जाकर हरी–हरी घास पर बैठा दिया,। पानी बरस कर निकल गया था। भूमि गीली हो रही थी। कहीं–कहीं पानी भी जमा हो गया था। बालक को पानी में छपके लगाने से ज्यादा प्यारा और कौन खेल हो सकता है। खूब प्रेम से उमंग–उमंग कर पानी में लोटने लगा नौकर बैठा और आदमियों के साथ गप–शप करता घंटो गुजर गये। बच्चे ने खूब सर्दी

खायी। घर आया तो उसकी नाक बह रही थीं रात को माधवी ने आकर देखा तो बच्चा खाँस रहा था। आधी रात के करीब उसके गले से खुर-खुर की आवाज निकलने लगी। माधवी का कलेजा सन से हो गया। स्वामिनी को जगाकर बोली–देखो तो बच्चे को क्या हो गया है। क्या सर्दी–वर्दी तो नहीं लग गयी। हाँ, सर्दी ही मालूम होती है।

स्वामिनी हकबकाकर उठ बैठी और बालक की खुरखराहट सुनी तो पाँव तले जमीन निकल गयीं। यह भयंकर आवाज उसने कई बार सुनी थी और उसे खूब पहचानती थी। व्यग्र होकर बोली — जरा आग जलाओ। थोड़ा–सा चोकर लाकर एक पोटली बनाओ, सेंकने से लाभ होता है। इन नौकरों से तंग आ गयी। आज कहार जरा देर के लिए बाहर ले गया था, उसी ने सर्दी में छोड़ दिया होगा।

सारी रात दोनों बालक को सेंकती रहीं। किसी तरह सवेरा हुआ। मिस्टर बागची को खबर मिली तो सीधे डाक्टर के यहाँ दौड़े। खैरियत इतनी थी कि जल्द एहतियात की गयी। तीन दिन में अच्छा हो गया; लेकिन इतना दुर्बल हो गया था कि उसे देखकर डर लगता था। सच पूछो तो माधवी की तपस्या ने बालक को बचाया। माता–पिता सो जाता, किंतु माधवी की आँखों में नींद न थी। खाना–पीना तक भूल गयी। देवताओं की

मनौतियाँ करती थी, बच्चे की बलाएँ लेती थी, बिल्कुल पागल हो गयी थी, यह वही माधवी है जो अपने सर्वनाश का बदला लेने आयी थी। अपकार की जगह उपकार कर रही थी। विष पिलाने आयी थी, सुधा पिला रही थी। मनुष्य में देवता कितना प्रबल है!

प्रातःकाल का समय था। मिस्टर बागची शिशु के झूले के पास बैठे हुए थे। स्त्री के सिर में पीड़ा हो रही थी। वहीं चारपाई पर लेटी हुई थी और माधवी समीप बैठी बच्चे के लिए दुध गरम कर रही थी। सहसा बागची ने कहा — बूढ़ी, हम जब तक जियेंगे तुम्हारा यश गायेंगे। तुमने बच्चे को जिला लिया।

स्त्री — यह देवी बनकर हमारा कष्ट निवारण करने के लिए आ गयी। यह न होती तो न जाने क्या होता। बूढ़ी, तुमसे मेरी एक विनती है। यों तो मरना जीना प्रारब्ध के हाथ है, लेकिन अपना-अपना पौरा भी बड़ी चीज है। मैं अभागिनी हूँ। अबकी तुम्हारे ही पुण्य-प्रताप से बच्चा संभल गया। मुझे डर लग रहा है कि ईश्वर इसे हमारे हाथ से छीन ने ले। सच कहतीं हूँ बूढ़ी, मुझे इसका गोद में लेते डर लगता हैं। इसे तुम आज से अपना बच्चा समझो। तुम्हारा होकर शायद बच जाय। हम अभागे हैं, हमारा होकर इस पर नित्य कोई-न-कोई संकट आता रहेगा। आज से तुम इसकी माता हो जाओ। तुम इसे अपने घर ले जाओ। जहाँ चाहे ले जाओ, तुम्हारी गोंद मे देर मुझे फिर कोई

चिंता न रहेगी। वास्तव में तुम्हीं इसकी माता हो, मै तो राक्षसी हूँ।

माधवी — बहू जी, भगवान् सब कुशल करेंगे, क्यों जी इतना छोटा करती हो?

मिस्टर बागची — नहीं-नहीं बूढ़ी माता, इसमें कोई हरज नहीं है। मै मस्तिष्क से तो इन बातों को ढकोसला ही समझता हूँ; लेकिन हृदय से इन्हें दूर नहीं कर सकता। मुझे स्वयं मेरी माता जीने एक धोबिन के हाथ बेच दिया था। मेरे तीन भाई मर चुके थे। मै जो बच गया तो माँ-बाप ने समझा बेचने से ही इसकी जान बच गयी। तुम इस शिशु को पालो-पासो। इसे अपना पुत्र समझो। खर्च हम बराबर देते रहेंगें। इसकी कोई चिंता मत करना। कभी-कभी जब हमारा जी चाहेगा, आकर देख लिया करेंगे। हमें विश्वास है कि तुम इसकी रक्षा हम लोगों से कहीं अच्छी तरह कर सकती हो। मैं कुकर्मी हूँ। जिस पेशे में हूँ, उसमें कुकर्म किये बगैर काम नहीं चल सकता। झूठी शहादतें बनानी ही पड़ती है, निरपराधों को फँसाना ही पड़ता है। आत्मा इतनी दुर्बल हो गयी है कि प्रलोभन में पड़ ही जाता हूँ। जानता ही हूँ कि बुराई का फल बुरा ही होता है; पर परिस्थिति से मजबूर हूँ। अगर न करूँ तो आज नालायक बनाकर निकाल दिया जाऊँ। अंग्रेज हजारों भूलें करें, कोई नहीं पूछता।

हिन्दुस्तानी एक भूल भी कर बैठे तो सारे अफसर उसके सिर हो जाते है। हिंदुस्तानियत को दोष मिटाने के लिए कितनी ही ऐसी बातें करनी पड़ती है जिनका अंग्रेज के दिल में कभी ख्याल ही नहीं पैदा हो सकता। तो बोलो, स्वीकार करती हो?

माधवी गद्गद होकर बोली — बाबू जी, आपकी इच्छा है तो मुझसे भी जो कुछ बन पड़ेगा, आपकी सेवा कर दूँगी भगवान् बालक को अमर करें, मेरी तो उनसे यही विनती है।

माधवी को ऐसा मालूम हो रहा था कि स्वर्ग के द्वार सामने खुले हैं और स्वर्ग की देवियाँ अंचल फैला–फैला कर आशीर्वाद दे रही हैं, मानो उसके अन्तस्तल में प्रकाश की लहरें–सी उठ रहीं है। स्नेहमय सेवा में कि कितनी शान्ति थी।

बालक अभी तक चादर ओढ़े सो रहा था। माधवी ने दूध गरम हो जाने पर उसे झूले पर से उठाया, तो चिल्ला पड़ी। बालक की देह ठंडी हो गयी थी और मुँह पर वह पीलापन आ गया था जिसे देखकर कलेजा हिल जाता है, कंठ से आह निकल आती है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं। जिसने इसे एक बारा देखा है फिर कभी नहीं भूल सकता। माधवी ने शिशु को गोंद से चिपटा लिया, हालाँकि नीचे उतार दोना चाहिए था।

कुहराम मच गया। माँ बच्चे को गले से लगाये रोती थी; पर उसे जमीन पर न सुलाती थी। क्या बातें हो रही रही थीं और क्या हो गया। मौत को धोखा देने में आनन्द आता है। वह उस वक्त कभी नहीं आती जब लोग उसकी राह देखते होते हैं। रोगी जब संभल जाता है, जब वह पथ्य लेने लगता है, उठने-बैठने लगता है, घर-भर खुशियाँ मनाने लगता है, सबको विश्वास हो जाता है कि संकट टल गया, उस वक्त घात में बैठी हुई मौत सिर पर आ जाती है। यही उसकी निठुर लीला है।

आशाओं के बाग लगाने में हम कितने कुशल हैं। यहाँ हम रक्त के बीज बोकर सुधा के फल खाते हैं। अग्नि से पौधों को सींचकर शीतल छाँह में बैठते हैं। हाँ, मंद बुद्धि।

दिन-भर मातम होता रहा; बाप रोता था, माँ तड़पती थी और माधवी बारी-बारी से दोनो को समझाती थी। यदि अपने प्राण देकर वह बालक को जिला सकती तो इस समय अपना धन्य भाग समझती। वह अहित का संकल्प करके यहाँ आयी थी और आज जब उसकी मनोकामना पूरी हो गयी और उसे खुशी से फूला न समाना चाहिए था, उस उससे कहीं घोर पीड़ा हो रही थी जो अपने पुत्र की जेल यात्रा में हुई थी। रुलाने आयी थी और खुद रोती जा रहीं थी। माता का हृदय दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें दया की ही सुगंध निकलती है, पीसो तो दया

का ही रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएँ भी उस स्वच्छ निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं।

परीक्षा

नादिरशाह की सेना में दिल्ली के कत्लेआम कर रखा है। गलियों मे खून की नदियाँ बह रही हैं। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। बाजार बन्द है। दिल्ली के लोग घरों के द्वार बन्द किये जान की खैर मना रहे है। किसी की जान सलामत नहीं है। कहीं घरों में आग लगी हुई है, कहीं बाजार लुट रहा है; कोई किसी की फरियाद नहीं सुनता। रईसों की बेगमें महलों से निकाली जा रही है और उनकी बेहुरमती की जाती है। ईरानी सिपाहियों की रक्त पिपासा किसी तरह नहीं बुझती। मानव हृदय की क्रूरता, कठोरता और पैशाचिकता अपना विकरालतम रूप धारण किये हुए है। इसी समय नादिर शाह ने बादशाही महल में प्रवेश किया।

दिल्ली उन दिनों भोग–विलास की केंद्र बनी हुई थी। सजावट और तकल्लुफ के सामानों से रईसों के भवन भरे रहते थे। स्त्रियों को बनाव–सिंगार के सिवा कोई काम न था। पुरूषों को सुख–भोग के सिवा और कोई चिन्ता न थी। राजनीति का स्थान शेरो–शायरी ने ले लिया था। समस्त प्रान्तों से धन खिंच–खिंच

कर दिल्ली आता था। और पानी की भांति बहाया जाता था। वेश्याओं की चाँदी थी। कहीं तीतरों के जोड़ होते थे, कहीं बटेरों और बुलबुलों की पालियाँ ठनती थीं। सारा नगर विलास-निद्रा में मग्न था। नादिरशाह शाही महल में पहुँचा तो वहाँ का सामान देखकर उसकी आँखें खुल गयीं। उसका जन्म दरिद्र-घर में हुआ था। उसका समस्त जीवन रणभूमि में ही कटा था। भोग विलास का उसे चसका न लगा था। कहाँ रण-क्षेत्र के कष्ट और कहाँ यह सुख-साम्राज्य। जिधर आँख उठती थी, उधर से हटने का नाम न लेती थी।

संध्या हो गयी थी। नादिरशाह अपने सरदारों के साथ महल की सैर करता और अपनी पसन्द की चीजों को बटोरता हुआ दीवाने-खास में आकर कारचोबी मसनद पर बैठ गया, सरदारों को वहाँ से चले जाने का हुक्म दे दिया, अपने सब हथियार रख दिये और महल के दरोगा को बुलाकर हुक्म दिया — मै शाही बेगमों का नाच देखना चाहता हूँ। तुम इसी वक्त उनको सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजाकर मेरे सामने लाओ खबरदार, जरा भी देर न हो! मै कोई उज्र या इनकार नहीं सुन सकता।

2

दारोगा ने यह नादिरशाही हुक्म सुना तो होश उड़ गये। वह महिलाएँ जिन पर सूर्य की दृष्टि भी नहीं पड़ी कैसे इस मजलिस में आयेंगी! नाचने का तो कहना ही क्या! शाही बेगमों का इतना अपमान कभी न हुआ था। हा नरपिशाच! दिल्ली को खून से रंग कर भी तेरा चित्त शान्त नहीं हुआ। मगर नादिरशाह के सम्मुख एक शब्द भी जबान से निकालना अग्नि के मुख में कूदना था! सिर झुकाकर आदाब लाया और आकर रनिवास में सब बेगमों को नादिरशाही हुक्म सुना दिया; उसके साथ ही यह इत्तला भी दे दी कि जरा भी ताम्मूल न हो , नादिरशाह कोई उज्र या हिला न सुनेगा! शाही खानदान पर इतनी बड़ी विपत्ति कभी नहीं पड़ी; पर अस समय विजयी बादशाह की आज्ञा को शिरोधार्य करने के सिवा प्राण-रक्षा का अन्य कोई उपाय नहीं था।

बेगमों ने यह आज्ञा सुनी तो हतबुद्धि-सी हो गयीं। सारे रनिवास में मातम-सा छा गया। वह चहल-पहल गायब हो गयीं। सैंकड़ों हृदयों से इस सहायता-याचक लोचनों से देखा, किसी ने खुदा और रसूल का सुमिरन किया; पर ऐसी एक महिला भी न थी जिसकी निगाह कटार या तलवार की तरफ गयी हो। यद्यपि इनमें

कितनी ही बेगमों की नसों में राजपूतनियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था; पर इन्द्रियलिप्सा ने जौहर की पुरानी आग ठंडी कर दी थी। सुख–भोग की लालसा आत्म–सम्मान का सर्वनाश कर देती है। आपस में सलाह करके मर्यादा की रक्षा का कोई उपाय सोचने की मुहलत न थी। एक–एक पल भाग्य का निर्णय कर रहा था। हताश का निर्णय कर रहा था। हताश होकर सभी ललनाओं ने पापी के सम्मुख जाने का निश्चय किया। आँखों से आँसू जारी थे, अश्रु–सिंचित नेत्रों में सुरमा लगाया जा रहा था और शोक–व्यथित हृदयों पर सुगंध का लेप किया जा रहा था। कोई केश गुँथाती थी, कोई माँगो में मोतियों पिरोती थी। एक भी ऐसे पक्के इरादे की स्त्री न थी, जो ईश्वर पर अथवा अपनी टेक पर, इस आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस कर सके।

एक घंटा भी न गुजरने पाया था कि बेगमात पूरे–के–पूरे, आभूषणों से जगमगातीं, अपने मुख की कांति से बेले और गुलाब की कलियों को लजाती, सुगन्ध की लपटें उड़ाती, छमछम करती हुई दीवाने–खास में आकर नादिरशाह के सामने खड़ी हो गयीं।

नादिर शाह ने एक बार कनखियों से परियों के इस दल को देखा और तब मसनद की टेक लगाकर लेट गया। अपनी तलवार और कटार सामने रख दी। एक क्षण में उसकी आँखें झपकने लगीं। उसने एक अँगड़ाई ली और करवट बदल ली। जरा देर में उसके खर्राटों की आवाजें सुनायी देने लगीं। ऐसा जान पड़ा कि गहरी निद्रा में मग्न हो गया है। आध घंटे तक वह सोता रहा और बेगमें ज्यों–की–त्यों सिर नीचा किये दीवार के चित्रों की भांति खड़ी रहीं। उनमें दो–एक महिलाएँ जो ढीठ थीं, घूँघट की ओट से नादिरशाह को देख भी रहीं थीं और आपस में दबी जबान में कानाफूसी कर रही थीं — कैसा भयंकर स्वरूप है! कितनी रणोन्मत्त आँखें है! कितना भारी शरीर है! आदमी काहे को है, देव है।

सहसा नादिरशाह की आँखें खुल गई परियों का दल पूर्ववत् खड़ा था। उसे जागते देखकर बेगमों ने सिर नीचे कर लिये और अंग समेट कर भेड़ों की भाँति एक दूसरे से मिल गयीं। सबके दिल धड़क रहे थे कि अब यह जालिम नाचने–गाने को कहेगा, तब कैसे होगा! खुदा इस जालिम से समझे! मगर नाचा तो न जायेगा। चाहे जान ही क्यों न जाय। इससे ज्यादा जिल्लत अब न सही जायगी।

सहसा नादिरशाह कठोर शब्दों में बोला — ऐ खुदा की बन्दियों, मैंने तुम्हारा इम्तहान लेने के लिए बुलाया था और अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारी निसबत मेरा जो गुमान था, वह हर्फ–ब–हर्फ सच निकला। जब किसी कौम की औरतों में गैरत नहीं रहती तो वह कौम मुरदा हो जाती है।

देखना चाहता था कि तुम लोगों में अभी कुछ गैरत बाकी है या नहीं। इसलिए मैंने तुम्हें यहाँ बुलाया था। मै तुम्हारी बेहुरमली नहीं करना चाहता था। मैं इतना ऐश का बंदा नहीं हूँ , वरना आज भेंड़ों के गल्ले चाहता होता। न इतना हवसपरस्त हूँ, वरना आज फारस में सरोद और सितार की तानें सुनाता होता, जिसका मजा मै हिंदुस्तानी गाने से कहीं ज्यादा उठा सकता हूँ। मुझे सिर्फ तुम्हारा इम्तहान लेना था। मुझे यह देखकर सच्चा मलाल हो रहा है कि तुममें गैरत का जौहर बाकी न रहा। क्या यह मुमकिन न था कि तुम मेरे हुक्म को पैरों तले कुचल देतीं? जब तुम यहाँ आ गयीं तो मैंने तुम्हें एक और मौका दिया। मैंने नींद का बहाना किया। क्या यह मुमकिन न था कि तुममें से कोई खुदा की बंदी इस कटार को उठाकर मेरे जिगर में चुभा देती। मै कलामे–पाक की कसम खाकर कहता हूँ कि तुममें से किसी को कटार पर हाथ रखते देखकर मुझे बेहद खुशी होती, मै उन नाजुक हाथों के सामने गरदन झुका देता! पर अफसोस है कि

आज तैमूरी खानदान की एक बेटी भी यहाँ ऐसी नहीं निकली जो अपनी हुरमत बिगाड़ने पर हाथ उठाती! अब यह सल्तनत जिंदा नहीं रह सकती। इसकी हस्ती के दिन गिने हुए हैं। इसका निशान बहुत जल्द दुनिया से मिट जाएगा। तुम लोग जाओ और हो सके तो अब भी सल्तनत को बचाओ वरना इसी तरह हवस की गुलामी करते हुए दुनिया से रुखसत हो जाओगी।

तेंतर

आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी; जिसकी चिंता में घर के सभी लोग और विशेषतः प्रसूता पड़ी हुई थी। तीनों पुत्रों के पश्चात् कन्या का जन्म हुआ। माता सौर में सूख गयी, पिता बाहर आँगन में सूख गये, और की वृद्ध माता सौर द्वार पर सूख गयी। अनर्थ, महाअनर्थ भगवान् ही कुशल करें तो हो? यह पुत्री नहीं राक्षसी है। इस अभागिनी को इसी घर में जाना था! आना था तो कुछ दिन पहले क्यों न आयी। भगवान् सातवें शत्रु के घर भी तेंतर का जन्म न दें।

पिता का नाम था पंडित दामोदरदत्त। शिक्षित आदमी थे। शिक्षा–विभाग ही में नौकर भी थे; मगर इस संस्कार को कैसे मिटा देते, जो परम्परा से हृदय में जमा हुआ था, कि तीसरे बेटे की पीठ पर होने वाली कन्या अभागिनी होती है, या पिता को लेती है या पिता को, या अपने कों। उनकी वृद्धा माता लगी नवजात कन्या को पानी पी–पी कर कोसने, कलमुँही है, कलमुँही! न जाने क्या करने आयी हैं यहाँ। किसी बाँझ के घर जाती तो उसके दिन फिर जाते!

दामोदरदत्त दिल में तो घबराये हुए थे, पर माता को समझाने लगे — अम्मा तेंतर-बेंतर कुछ नहीं, भगवान् की इच्छा होती है, वही होता है। ईश्वर चाहेंगे तो सब कुशल ही होगा; गानेवालियों को बुला लो, नहीं लोग कहेंगे, तीन बेटे हुए तो कैसे फूली फिरती थीं, एक बेटी हो गयी तो घर में कुहराम मच गया।

माता — अरे बेटा, तुम क्या जानो इन बातों को, मेरे सिर तो बीत चुकी हैं, प्राण नहीं में समाया हुआ हैं तेंतर ही के जन्म से तुम्हारे दादा का देहान्त हुआ। तभी से तेंतर का नाम सुनते ही मेरा कलेजा काँप उठता है।

दामोदर — इस कष्ट के निवारण का भी कोई उपाय होगा?

माता — उपाय बताने को तो बहुत हैं, पंडित जी से पूछो तो कोई-न-कोई उपाय बता देंगे; पर इससे कुछ होता नहीं। मैंने कौन-से अनुष्ठान नहीं किये, पर पंडित जी की तो मुट्ठियाँ गरम हुईं, यहाँ जो सिर पर पड़ना था, वह पड़ ही गया। अब टके के पंडित रह गये हैं, जजमान मरे या जिये उनकी बला से, उनकी दक्षिणा मिलनी चाहिए। (धीरे से) लड़की दुबली-पतली भी नहीं है। तीनों लड़कों से हृष्ट-पुष्ट है। बड़ी-बड़ी आँखें है, पतले-पतले लाल-लाल ओंठ हैं, जैसे गुलाब की पत्ती। गोरा-चिट्टा रंग हैं, लम्बी-सी नाक। कलमुँही नहलाते समय रोयी

भी नहीं, टुकुर-टुकुर ताकती रही, यह सब लच्छन कुछ अच्छे थोड़े ही है।

दामोदरदत्त के तीनों लड़के साँवले थे, कुछ विशेष रूपवान भी न थे। लड़की के रूप का बखान सुनकर उनका चित्त कुछ प्रसन्न हुआ। बोले — अम्मा जी, तुम भगवान् का नाम लेकर गानेवालियों को बुला भेजो, गाना–बजाना होने दो। भाग्य में जो कुछ हैं, वह तो होगा ही।

माता — जी तो हुलसता नहीं, करूँ क्या?

दामोदर — गाना न होने से कष्ट का निवारण तो होगा नहीं, कि हो जाएगा? अगर इतने सस्ते जान छूटे तो न कराओ गान।

माता — बुलाये लेती हूँ बेटा, जो कुछ होना था वह तो हो गया। इतने में दाई ने सौर में से पुकार कर कहा — बहूजी कहती हैं गानावाना कराने का काम नहीं है।

माता — भला उनसे कहो चुप बैठी रहे, बाहर निकलकर मनमानी करेंगी, बारह ही दिन हैं बहुत दिन नहीं है; बहुत इतराती फिरती थी — यह न करूँगी, वह न करूँगी, देवी क्या हैं, मरदों की बातें सुनकर वही रट लगाने लगी थीं, तो अब चुपके से बैठती क्यो नहीं। मैं तो तेंतर को अशुभ नहीं मानतीं, और सब बातों में मेमों की बराबरी करती हैं तो इस बात में भी करे।

यह कहकर माता जी ने नाइन को भेजा कि जाकर गानेवालियों को बुला ला, पड़ोस में भी कहती जाना।

सवेरा होते ही बड़ा लड़का सो कर उठा और आँखें मलता हुआ जाकर दादी से पूछने लगा — बड़ी अम्मा, कल अम्मा को क्या हुआ?

माता — लड़की तो हुई है।

बालक खुशी से उछलकर बोला — ओ–हो–हो पैजनियाँ पहन–पहन कर छुन–छुन चलेगी, जरा मुझे दिखा दो दादी जी?

माता — अरे क्या सौर में जायगा, पागल हो गया है क्या?

लड़के की उत्सुकता न मानीं। सौर के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया और बोला — अम्मा जरा बच्ची को मुझे दिखा दो।

दाई ने कहा — बच्ची अभी सोती है।

बालक — जरा दिखा दो, गोद में लेकर।

दाई ने कन्या उसे दिखा दी तो वहाँ से दौड़ता हुआ अपने छोटे भाइयें के पास पहुँचा और उन्हें जगा–जगा कर खुशखबरी सुनायी।

एक बोला — नन्हीं–सी होगी।

बड़ा — बिलकुल नन्हीं सी! जैसी बड़ी गुड़िया! ऐसी गोरी है कि क्या किसी साहब की लड़की होगी। यह लड़की मैं लूँगा।

सबसे छोटा बोला — अमको बी दिका दो।

तीनों मिलकर लड़की को देखने आये और वहाँ से बगलें बजाते उछलते–कूदते बाहर आये।

बड़ा — देखा कैसी है!

मंझला — कैसे आँखें बन्द किये पड़ी थी।

छोटा — हमें हमें तो देना।

बड़ा — खूब द्वार पर बारात आयेगी, हाथी, घोड़े, बाजे आतशबाजी।

मंझला और छोटा ऐसे मग्न हो रहे थे मानो वह मनोहर दृश्य आँखो के सामने है, उनके सरल नेत्र मनोल्लास से चमक रहे थे।

मंझला बोला — फुलवारियाँ भी होंगी।

छोटा — अम बी पूल लेंगे!

छट्ठी भी हुई, बरही भी हुई, गाना–बजाना, खाना–पिलाना. देना–दिलाना सब–कुछ हुआ; पर रस्म पूरी करने के लिए, दिल से नहीं, खुशी से नहीं। लड़की दिन–दिन दुर्बल और अस्वस्थ होती जाती थी। माँ उसे दोनों वक्त अफीम खिला देती और बालिका दिन और रात को नशे में बेहोश पड़ी रहती। जरा भी नशा उतरता तो भूख से विकल होकर रोने लगती! माँ कुछ ऊपरी दूध पिलाकर अफीम खिला देती। आश्चर्य की बात तो यह थी कि अब की उसकी छाती में दूध नहीं उतरा। यों भी उसे दूध दे से उतरता था; पर लड़कों की बेर उसे नाना प्रकार की दूधवर्द्धक औषधियाँ खिलायी जाती, बार–बार शिशु को छाती से लगाया जाता, यहाँ तक कि दूध उतर ही आता था; पर अब की यह आयोजनाएँ न की गयीं। फूल–सी बच्ची कुम्हलाती जाती थी। माँ तो कभी उसकी ओर ताकती भी न थी। हाँ, नाइन कभी चुटकियाँ बजाकर चुमकारती तो शिशु के मुख पर ऐसी दयनीय, ऐसी करूण वेदना अंकित दिखायी देती कि वह आँखें पोंछती हुई चली जाती थी। बहु से कुछ कहने–सुनने का साहस न पड़ता। बड़ा लड़का सिद्धू बार–बार कहता — अम्मा, बच्ची को दो तो बाहर से खेला लाऊँ। पर माँ उसे झिड़क देती थी।

तीन–चार महीने हो गये। दामोदरदत्त रात को पानी पीने उठे तो देखा कि बालिका जाग रही है। सामने ताख पर मीठे तेल का

दीपक जल रहा था, लड़की टकटकी बाँधे उसी दीपक की ओर देखती थी, और अपना अँगूठा चूसने में मग्न थी। चुभ-चुभ की आवाज आ रही थी। उसका मुख मुरझाया हुआ था, पर वह न रोती थी न हाथ-पैर फेंकती थी, बस अँगूठा पीने में ऐसी मग्न थी मानों उसमें सुधा-रस भरा हुआ है। वह माता के स्तनों की ओर मुँह भी नहीं फेरती थी, मानो उसका उन पर कोई अधिकार है नहीं, उसके लिए वहाँ कोई आशा नहीं। बाबू साहब को उस पर दया आयी। इस बेचारी का मेरे घर जन्म लेने में क्या दोष है? मुझ पर या इसकी माता पर कुछ भी पड़े, उसमें इसका क्या अपराध है? हम कितनी निर्दयता कर रहे हैं कि कुछ कल्पित अनिष्ट के कारण इसका इतना तिरस्कार कर रहे है। मानों कि कुछ अमंगल हो भी जाय तो क्या उसके भय से इसके प्राण ले लिये जायेंगे। अगर अपराधी है तो मेरा प्रारब्ध है। इस नन्हें-से बच्चे के प्रति हमारी कठोरता क्या ईश्वर को अच्छी लगती होगी? उन्होनें उसे गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमने लगे। लड़की को कदाचित् पहली बार सच्चे स्नेह का ज्ञान हुआ। वह हाथ-पैर उछाल कर 'गूं-गूं' करने लगी और दीपक की ओर हाथ फैलाने लगी। उसे जीवन-ज्योति-सी मिल गयी।

प्रातःकाल दामोदरदत्त ने लड़की को गोद में उठा लिया और बाहर लाये। स्त्री ने बार-बार कहा — उसे पड़ी रहने दो। ऐसी

कौन–सी बड़ी सुन्दर है, अभागिन रात–दिन तो प्राण खाती रहती हैं, मर भी नहीं जाती कि जान छूट जाय; किंतु दामोदरदत्त ने न माना। उसे बाहर लाये और अपने बच्चों के साथ बैठकर खेलाने लगे। उनके मकान के सामने थोड़ी–सी जमीन पड़ी हुई थी। पड़ोस के किसी आदमी की एक बकरी उसमें आकर चरा करती थी। इस समय भी वह चर रही थी। बाबू साहब ने बड़े लड़के से कहा — सिद्धू जरा उस बकरी को पकड़ो, तो इसे दूध पिलायें, शायद भूखी है बेचारी! देखो, तुम्हारी नन्हीं–सी बहन है न? इसे रोज हवा में खेलाया करो।

सिद्धू को दिल्लगी हाथ आयी। उसका छोटा भाई भी दौड़ा। दोनो ने घेर कर बकरी को पकड़ा और उसका कान पकड़े हुए सामने लाये। पिता ने शिशु का मुँह बकरी थन में लगा दिया। लड़की चुबलाने लगी और एक क्षण में दूध की धार उसके मुँह में जाने लगी, मानो टिमटिमाते दीपक में तेल पड़ जाये। लड़की का मुँह खिल उठा। आज शायद पहली बार उसकी क्षुधा तृप्त हुई थी। वह पिता की गोद में हुमक–हुमक कर खेलने लगी। लड़कों ने भी उसे खूब नचाया–कुदाया।

उस दिन से सिद्धू को मनोरंजन का एक नया विषय मिल गया। बालकों को बच्चों से बहुत प्रेम होता है। अगर किसी घोंसले में चिड़िया का बच्चा देख पायें तो बार–बार वहाँ जायेंगे। देखेंगे कि

माता बच्चे को कैसे दाना चुगाती है। बच्चा कैसे चोंच खोलता हैं। कैसे दाना लेते समय परों को फड़फड़ाकर कर चें–चें करता है। आपस में बड़े गम्भीर भाव से उसकी चरचा करेंगे, अपने अन्य साथियों को ले जाकर उसे दिखायेंगे। सिद्धू ताक में लगा देता, कभी दिन में दो–दो तीन–तीन बार पिलाता। बकरी को भूसी–चोकर खिलाकार ऐसा परचा लिया कि वह स्वयं चोकर के लोभ से चली आती और दूध देकर चली जाती। इस भाँति कोई एक महीना गुजर गया, लड़की हृष्ट–पुष्ट हो गयी, मुख पुष्प के समान विकसित हो गया। आँखें जग उठीं, शिशुकाल की सरल आभा मन को हरने लगी।

माता उसको देख–देख कर चकित होती थी। किसी से कुछ कह तो न सकती; पर दिल में आशंका होती थी कि अब वह मरने की नहीं, हमीं लोगों के सिर जायेगी। कदाचित् ईश्वर इसकी रक्षा कर रहे हैं, जभी तो दिन–दिन निखरती आती है, नहीं, अब तक ईश्वर के घर पहुँच गयी होती।

मगर दादी माता से कहीं ज्यादा चिंतित थी। उसे भ्रम होने लगा कि वह बच्चे को खूब दूध पिला रही हैं, सांप को पाल रही है। शिशु की ओर आँख उठाकर भी न देखती। यहाँ तक कि एक दिन कह बैठी — लड़की का बड़ा छोह करती हो? हाँ भाई, माँ हो कि नहीं, तुम न छोह करोगी, तो करेगा कौन?

'अम्मा जी, ईश्वर जानते हैं जो मैं इसे दूध पिलाती होऊँ?'

'अरे तो मैं मना थोड़े ही करती हूँ, मुझे क्या गरज पड़ी है कि मुफ्त में अपने ऊपर पाप लूँ, कुछ मेरे सिर तो जायेगी नहीं।'

'अब आपको विश्वास ही न आये तो क्या करें?'

'मुझे पागल समझती हो, वह हवा पी–पी कर ऐसी हो रही है?'

'भगवान् जाने अम्मा, मुझे तो अचरज होता है।'

बहू ने बहुत निर्दोषिता जतायी; किंतु वृद्धा सास को विश्वास न आया। उसने समझा, वह मेरी शंका को निर्मूल समझती है, मानों मुझे इस बच्ची से कोई बैर है। उसके मन में यह भाव अंकुरित होने लगा कि इसे कुछ हो जाये तब यह समझे कि मैं झूठ नहीं कहती थी। वह जिन प्राणियों को अपने प्राणों से भी अधिक समझती थीं। उन्हीं लोगों की अमंगल कामना करने लगी, केवल इसलिए कि मेरी शंकाएँ सत्य हो जाये। वह यह तो नहीं चाहती

थी कि कोई मर जाय; पर इतना अवश्य चाहती थी कि किसी के बहाने से मैं चेता दूँ कि देखा, तुमने मेरा कहा न माना, यह उसी का फल है। उधर सास की ओर से ज्यो-ज्यों यह द्वेष-भाव प्रकट होता था, बहू का कन्या के प्रति स्नेह बढ़ता था। ईश्वर से मनाती रहती थी कि किसी भाँति एक साल कुशल से कट जाता तो इनसे पूछती। कुछ लड़की का भोला-भाला चेहरा, कुछ अपने पति का प्रेम-वात्सल्य देखकर भी उसे प्रोत्साहन मिलता था। विचित्र दशा हो रही थी, न दिल खोलकर प्यार ही कर सकती थी, न सम्पूर्ण रीति से निर्दय होते ही बनता था। न हंसते बनता था न रोते।

इस भांति दो महीने और गुजर गये और कोई अनिष्ट न हुआ। तब तो वृद्धा सास के पेट में चूहे दौड़ने लगे। बहू को दो-चार दिन ज्वर भी नहीं जाता कि मेरी शंका की मर्यादा रह जाये। पुत्र भी किसी दिन पैरगाड़ी पर से नहीं गिर पड़ता, न बहू के मैके ही से किसी के स्वर्गवास की सुनावनी आती है। एक दिन दामोदरदत्त ने खुले तौर पर कह भी दिया कि अम्मा, यह सब ढकोसला है, तेंतर लड़कियाँ क्या दुनिया में होती ही नहीं, तो सब के सब माँ-बाप मर ही जाते है? अन्त में उसने अपनी शंकाओं को यथार्थ सिद्ध करने की एक तरकीब सोच निकाली। एक दिन दामोदरदत्त स्कूल से आये तो देखा कि अम्मा जी खाट पर अचेत

पड़ी हुई हैं, स्त्री अंगीठी में आग रखे उनकी छाती सेंक रही हैं और कोठरी के द्वार और खिड़कियाँ बन्द है। घबरा कर कहा — अम्मा जी, क्या दशा है?

स्त्री — दोपहर ही से कलेजे में एक शूल उठ रहा है, बेचारी बहुत तड़प रही है।

दामोदर — मैं जाकर डॉक्टर साहब को बुला लाऊँ न.? देर करने से शायद रोग बढ़ जाय। अम्मा जी, अम्मा जी कैसी तबियत है?

माता ने आँखें खोलीं और कराहते हुए बोली — बेटा तुम आ गये?

अब न बचूँगी, हाय भगवान्, अब न बचूँगी। जैसे कोई कलेजे में बरछी चुभा रहा हो। ऐसी पीड़ा कभी न हुई थी। इतनी उम्र बीत गयी, ऐसी पीड़ा कभी न हुई।

स्त्री — वह कलमुँही छोकरी न जाने किस मनहूस घड़ी में पैदा हुई।

सास — बेटा, सब भगवान करते है, यह बेचारी क्या जाने! देखो मैं मर जाऊँ तो उसे कष्ट मत देना। अच्छा हुआ मेरे सिर आयीं किसी के सिर तो जाती ही, मेरे ही सिर सही। हाय भगवान, अब न बचूँगी।

दामोदर — जाकर डॉक्टर बुला लाऊँ? अभी लौटा आता हूँ।

माता जी को केवल अपनी बात की मर्यादा निभानी थी, रुपये न खर्च कराने थे, बोली — नहीं बेटा, डॉक्टर के पास जाकर क्या करोगे? अरे, वह कोई ईश्वर है। डॉक्टर के पास जाकर क्या करोगे? अरे, वह कोई ईश्वर है। डॉक्टर अमृत पिला देगा, दस–बीस वह भी ले जायेगा! डॉक्टर–वैद्य से कुछ न होगा। बेटा, तुम कपड़े उतारो, मेरे पास बैठकर भागवत पढ़ो। अब न बचूँगी। अब न बचूँगी, हाय राम!

दामोदर — तेंतर बुरी चीज है। मैं समझता था कि ढकोसला है।

स्त्री — इसी से मैं उसे कभी नहीं लगाती थी।

माता — बेटा, बच्चों को आराम से रखना, भगवान तुम लोगों को सुखी रखें। अच्छा हुआ मेरे ही सिर गयी, तुम लोगों के सामने मेरा परलोक हो जायेगा। कहीं किसी दूसरे के सिर जाती तो क्या होता राम! भगवान् ने मेरी विनती सुन ली। हाय! हाय!!

दामोदरदत्त को निश्चय हो गया कि अब अम्मा न बचेंगी। बड़ा दुःख हुआ। उनके मन की बात होती तो वह माँ के बदले तेंतर को न स्वीकार करते। जिस जननी ने जन्म दिया, नाना प्रकार के कष्ट झेलकर उनका पालन–पोषण किया, अकाल वैधव्य को प्राप्त होकर भी उनकी शिक्षा का प्रबंध किया, उसके सामने एक

दुधमुहीं बच्ची का क्या मूल्य था, जिसके हाथ का एक गिलास पानी भी वह न जानते थे। शोकातुर हो कपड़े उतारे और माँ के सिरहाने बैठकर भागवत की कथा सुनाने लगे।

रात को बहू भोजन बनाने चली तो सास से बोली — अम्मा जी, तुम्हारे लिए थोड़ा-सा साबूदाना छोड़ दूँ?

माता ने व्यंग्य करके कहा — बेटी, अन्न बिना न मारो, भला साबूदाना मुझसे खाया जायेगा; जाओं, थोड़ी पूरियाँ छान लो। पड़े-पड़े जो कुछ इच्छा होगी, खा लूँगी, कचौरियाँ भी बना लेना। मरती हूँ तो भोजन को तरस-तरस क्यों मरूँ। थोड़ी मलाई भी मँगवा लेना, चौक की हो। फिर थोड़े खाने आऊँगी बेटी। थोड़े-से केले मँगवा लेना, कलेजे के दर्द में केले खाने से आराम होता है।

भोजन के समय पीड़ा शान्त हो गयी; लेकिन आध घंटे बाद फिर जोर से होने लगी। आधी रात के समय कहीं जाकर उनकी आँख लगी। एक सप्ताह तक उनकी यही दशा रही, दिन-भर पड़ी कराहा करतीं, बस भोजन के समय जरा वेदना कम हो जाती। दामोदरदत्त सिरहाने बैठे पंखा झलते और मातृ-वियोग के आगत शोक से रोते। घर की महरी ने मुहल्ले-भर में एक खबर फैला दी; पड़ोसिनें देखने आयीं, तो सारा इलजाम बालिका के सिर गया।

एक ने कहा — यह तो कहो बड़ी कुशल हुई कि बुढ़िया के सिर गयी; नहीं तो तेंतर माँ–बाप दो में से एक को लेकर तभी शान्त होती है। दैव न करे कि किसी के घर तेंतर का जन्म हो।

दूसरी बोली — मेरे तो तेंतर का नाम सुनते ही रोयें खड़े हो जाते है। भगवान् बांझ रखे पर तेंतर का जन्म न दें।

एक सप्ताह के बाद वृद्धा का कष्ट निवारण हुआ, मरने में कोई कसर न थी, वह तो कहो पुरूखाओं का पुण्य–प्रताप था। ब्राह्मणों को गोदान दिया गया। दुर्गा–पाठ हुआ, तब कहीं जाके संकट कटा।

नैराश्य

बाज आदमी अपनी स्त्री से इसलिए नाराज रहते हैं कि उसके लड़कियाँ ही क्यों होती हैं, लड़के क्यों नहीं होते। जानते हैं कि इनमें स्त्री को दोष नहीं है, या है तो उतना ही जितना मेरा, फिर भी जब देखिए स्त्री से रूठे रहते हैं, उसे अभागिनी कहते हैं और सदैव उसका दिल दुखाया करते हैं। निरुपमा उन्ही अभागिनी स्त्रियों में थी और घमंडीलाल त्रिपाठी उन्हीं अत्याचारी पुरुषों में। निरुपमा के तीन बेटियाँ लगातार हुई थीं और वह सारे घर की निगाहों से गिर गयी थी। सास–ससुर की अप्रसन्नता की तो उसे विशेष चिंता न थी, वह पुराने जमाने के लोग थे, जब लड़कियाँ गरदन का बोझ और पूर्वजन्मों का पाप समझी जाती थीं। हाँ, उसे दुःख अपने पतिदेव की अप्रसन्नता का था जो पढ़े–लिखे आदमी होकर भी उसे जली–कटी सुनाते रहते थे। प्यार करना तो दूर रहा, निरुपमा से सीधे मुँह बात न करते, कई–कई दिनों तक घर ही में न आते और आते तो कुछ इस तरह खिंचे–तने हुए रहते कि निरुपमा थर–थर काँपती रहती थी, कहीं गरज न उठें। घर में धन का अभाव न था; पर निरुपमा को कभी यह

साहस न होता था कि किसी सामान्य वस्तु की इच्छा भी प्रकट कर सके। वह समझती थी, में यथार्थ में अभागिनी हूँ, नहीं तो भगवान् मेरी कोख में लड़कियाँ ही रचते। पति की एक मृदु मुस्कान के लिए, एक मीठी बात के लिए उसका हृदय तड़प कर रह जाता था। यहाँ तक कि वह अपनी लड़कियों को प्यार करते हुए सकुचाती थी कि लोग कहेंगे, पीतल की नथ पर इतना गुमान करती है। जब त्रिपाठी जी के घर में आने का समय होता तो किसी–न–किसी बहाने से वह लड़कियों को उनकी आँखों से दूर कर देती थी। सबसे बड़ी विपत्ति यह थी कि त्रिपाठी जी ने धमकी दी थी कि अब की कन्या हुई तो घर छोड़कर निकल जाऊँगा, इस नरक में क्षण–भर न ठहरूँगा। निरुपमा को यह चिंता और भी खाये जाती थी।

वह मंगल का व्रत रखती थी, रविवार, निर्जला एकादशी और न जाने कितने व्रत करती थी। स्नान–पूजा तो नित्य का नियम था; पर किसी अनुष्ठान से मनोकामना न पूरी होती थी। नित्य अवहेलना, तिरस्कार, उपेक्षा, अपमान सहते–सहते उसका चित्त संसार से विरक्त होता जाता था। जहाँ कान एक मीठी बात के लिए, आँखें एक प्रेम–दृष्टि के लिए, हृदय एक आलिंगन के लिए तरस कर रह जाये, घर में अपनी कोई बात न पूछे, वहाँ जीवन से क्यों न अरुचि हो जाय?

एक दिन घोर निराशा की दशा में उसने अपनी बड़ी भावज को एक पत्र लिखा। एक-एक अक्षर से असह्य वेदना टपक रही थी। भावज ने उत्तर दिया — तुम्हारे भैया जल्द तुम्हें विदा कराने जायेंगे। यहाँ आजकल एक सच्चे महात्मा आये हुए हैं जिनका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं जाता। यहाँ कई संतानहीन स्त्रियाँ उनके आशीर्वाद से पुत्रवती हो गयीं। पूर्ण आशा है कि तुम्हें भी उनका आशीर्वाद कल्याणकारी होगा।

निरुपमा ने यह पत्र पति को दिखाया। त्रिपाठी जी उदासीन भाव से बोले — सृष्टि-रचना महात्माओं के हाथ का काम नहीं, ईश्वर का काम है।

निरुपमा — हाँ, लेकिन महात्माओं में भी तो कुछ सिद्धि होती है।

घमंडीलाल — हाँ होती है, पर ऐसे महात्माओं के दर्शन दुर्लभ हैं।

निरुपमा — मैं तो इस महात्मा के दर्शन करूँगी।

घमंडीलाल — चली जाना।

निरुपमा — जब बाँझिनों के लड़के हुए तो मैं क्या उनसे भी गयी-गुजरी हूँ।

घमंडीलाल — कह तो दिया भाई चली जाना। यह करके भी देख लो। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, पुत्र का मुख देखना हमारे भाग्य में ही नहीं है।

2

कई दिन बाद निरुपमा अपने भाई के साथ मैके गयी। तीनों पुत्रियाँ भी साथ थीं। भाभी ने उन्हें प्रेम से गले लगाकर कहा, तुम्हारे घर के आदमी बड़े निर्दयी हैं। ऐसी गुलाब–फूलों की–सी लड़कियाँ पाकर भी तकदीर को रोते हैं। ये तुम्हें भारी हों तो मुझे दे दो। जब ननद और भावज भोजन करके लेटीं तो निरुपमा ने पूछा — वह महात्मा कहाँ रहते हैं?

भावज — ऐसी जल्दी क्या है, बता दूँगी।

निरुपमा — है नगीच ही न?

भावज — बहुत नगीच। जब कहोगी, उन्हें बुला दूँगी।

निरुपमा — तो क्या तुम लोगों पर बहुत प्रसन्न हैं?

भावज — दोनों वक्त यहीं भोजन करते हैं। यहीं रहते हैं।

निरुपमा — जब घर ही में वैद्य तो मरिये क्यों? आज मुझे उनके दर्शन करा देना।

भावज — भेंट क्या दोगी?

निरुपमा — मैं किस लायक हूँ?

भावज — अपनी सबसे छोटी लड़की दे देना।

निरुपमा — चलो, गाली देती हो।

भावज — अच्छा यह न सही, एक बार उन्हें प्रेमालिंगन करने देना।

निरुपमा — चलो, गाली देती हो।

भावज — अच्छा यह न सही, एक बार उन्हें प्रेमालिंगन करने देना।

निरुपमा — भाभी, मुझसे ऐसी हँसी करोगी तो मैं चली आऊँगी।

भावज — वह महात्मा बड़े रसिया हैं।

निरुपमा — तो चूल्हे में जायें। कोई दुष्ट होगा।

भावज — उनका आशीर्वाद तो इसी शर्त पर मिलेगा। वह और कोई भेंट स्वीकार ही नहीं करते।

निरुपमा — तुम तो यों बातें कर रही हो मानो उनकी प्रतिनिधि हो।

भावज — हाँ, वह यह सब विषय मेरे ही द्वारा तय किया करते हैं। मैं भेंट लेती हूँ। मैं ही आशीर्वाद देती हूँ, मैं ही उनके हितार्थ भोजन कर लेती हूँ।

निरुपमा — तो यह कहो कि तुमने मुझे बुलाने के लिए यह हीला निकाला है।

भावज — नहीं, उनके साथ ही तुम्हें कुछ ऐसे गुर दूँगी जिससे तुम अपने घर आराम से रहा।

इसके बाद दोनों सखियों में कानाफूसी होने लगी। जब भावज चुप हुई तो निरुपमा बोली — और जो कहीं फिर क्या ही हुई तो?

भावज — तो क्या? कुछ दिन तो शांति और सुख से जीवन कटेगा। यह दिन तो कोई लौटा न लेगा। पुत्र हुआ तो कहना ही क्या, पुत्री हुई तो फिर कोई नयी युक्ति निकाली जायेगी। तुम्हारे घर के जैसे अक्ल के दुश्मनों के साथ ऐसी ही चालें चलने से गुजारा है।

निरुपमा — मुझे तो संकोच मालूम होता है।

भावज — त्रिपाठी जी को दो–चार दिन में पत्र लिख देना कि महात्मा जी के दर्शन हुए और उन्होंने मुझे वरदान दिया है। ईश्वर ने चाहा तो उसी दिन से तुम्हारी मान–प्रतिष्ठा होने लगी। घमंडी दौड़े हुए आयेंगे और तुम्हारे ऊपर प्राण निछावर करेंगे। कम–से–कम साल भर तो चैन की वंशी बजाना। इसके बाद देखी जायेगी।

निरुपमा — पति से कपट करूँ तो पाप न लगेगा?

भावज — ऐसे स्वार्थियों से कपट करना पुण्य है।

3

तीन चार महीने के बाद निरुपमा अपने घर आयी। घमंडीलाल उसे विदा कराने गये थे। सलहज ने महात्मा जी का रंग और भी चोखा कर दिया। बोली — ऐसा तो किसी को देखा नहीं कि इस महात्मा जी ने वरदान दिया हो और वह पूरा न हो गया हो। हाँ, जिसका भाग्य फूट जाये उसे कोई क्या कर सकता है।

घमंडीलाल प्रत्यक्ष तो वरदान और आशीर्वाद की उपेक्षा ही करते रहे, इन बातों पर विश्वास करना आजकल संकोचजनक मालूम होता ह; पर उनके दिल पर असर जरूर हुआ।

निरुपमा की खातिरदारियाँ होनी शुरू हुईं। जब वह गर्भवती हुई तो सबके दिलों में नयी-नयी आशाएँ हिलोरें लेने लगी। सास जो उठते गाली और बैठते व्यंग्य से बातें करती थीं अब उसे पान की तरह फेरती — बेटी, तुम रहने दो, मैं ही रसोई बना लूँगी, तुम्हारा सिर दुखने लगेगा। कभी निरुपमा कलसे का पानी या चारपाई उठाने लगती तो सास दौड़ती — बहू,रहने दो, मैं आती हूँ, तुम कोई भारी चीज मत उठाया करा। लड़कियों की बात और होती है, उन पर किसी बात का असर नहीं होता, लड़के तो गर्भ ही में मान करने लगते हैं। अब निरुपमा के लिए दूध का उठौना किया गया, जिससे बालक पुष्ट और गोरा हो। घमंडी वस्त्राभूषणों पर उतारू हो गये। हर महीने एक-न-एक नयी चीज लाते। निरुपमा का जीवन इतना सुखमय कभी न था। उस समय भी नहीं जब नवेली वधू थी।

महीने गुजरने लगे। निरूपमा को अनुभूत लक्षणों से विदित होने लगा कि यह कन्या ही है; पर वह इस भेद को गुप्त रखती थी। सोचती, सावन की धूप है, इसका क्या भरोसा जितनी चीज धूप में सुखानी हो सुखा लो, फिर तो घटा छायेगी ही। बात-बात पर

बिगड़ती। वह कभी इतनी मानशीला न थी। पर घर में कोई चूँ तक न करता कि कहीं बहू का दिल न दुखे, नहीं बालक को कष्ट होगा। कभी–कभी निरुपमा केवल घरवालों को जलाने के लिए अनुष्ठान करती, उसे उन्हें जलाने में मजा आता था। वह सोचती, तुम स्वार्थियों को जितना जलाऊँ उतना अच्छा! तुम मेरा आदर इसलिए करते हो न कि मैं बच्चा जनूँगी जो तुम्हारे कुल का नाम चलायेगा। मैं कुछ नहीं हूँ, बालक ही सब–कुछ है। मेरा अपना कोई महत्व नहीं, जो कुछ है वह बालक के नाते। यह मेरे पति हैं! पहले इन्हें मुझसे कितना प्रेम था, तब इतने संसार–लोलुप न हुए थे। अब इनका प्रेम केवल स्वार्थ का स्वाँग है। मैं भी पशु हूँ जिसे दूध के लिए चारा–पानी दिया जाता है। खैर, यही सही, इस वक्त तो तुम मेरे काबू में आये हो! जितने गहने बन सकें बनवा लूँ, इन्हें तो छीन न लोगे।

इस तरह दस महीने पूरे हो गये। निरुपमा की दोनों ननदें ससुराल से बुलायी गयीं। बच्चे के लिए पहले ही सोने के गहने बनवा लिये गये, दूध के लिए एक सुन्दर दुधार गाय मोल ले ली गयी, घमंडीलाल उसे हवा खिलाने को एक छोटी–सी सेजगाड़ी लाये। जिस दिन निरूपमा को प्रसव–वेदना होने लगी, द्वार पर पंडित जी मुहूर्त देखने के लिए बुलाये गये। एक मीरशिकार बंदूक छोड़ने को बुलाया गया, गायनें मंगल–गान के लिए बटोर

ली गयीं। घर से तिल–तिल कर खबर मँगायी जाती थी, क्या हुआ? लेडी डॉक्टर भी बुलायी गयीं। बाजे वाले हुक्म के इंतजार में बैठे थे। पामर भी अपनी सारंगी लिये 'जच्चा मान करे नंदलाल सों' की तान सुनाने को तैयार बैठा था। सारी तैयारियाँ; सारी आशाएँ, सारा उत्साह समारोह एक ही शब्द पर अवलम्बित था। ज्यों–ज्यों देर होती थी लोगों में उत्सुकता बढ़ती जाती थी। घमंडीलाल अपने मनोभावों को छिपाने के लिए एक समाचार –पत्र देख रहे थे, मानो उन्हें लड़का या लड़की दोनों ही बराबर हैं। मगर उनके बूढ़े पिता जी इतने सावधान न थे। उनकी बाछें खिली जाती थीं, हँस–हँस कर सबसे बात कर रहे थे और पैसों की एक थैली को बार–बार उछालते थे।

मीरशिकार ने कहा — मालिक से अबकी पगड़ी दुपट्टा लूँगा।

पिताजी ने खिलकर कहा — अबे कितनी पगड़ियाँ लेगा? इतनी बेभाव की दूँगा कि सर के बाल गँजे हो जायेंगे।

पामर बोला — सरकार अब की कुछ जीविका लूँ।

पिताजी खिलकर बोले — अबे कितनी खायेगा; खिला–खिला कर पेट फाड़ दूँगा।

सहसा महरी घर में से निकली। कुछ घबरायी–सी थी। वह अभी कुछ बोलने भी न पायी थी कि मीरशिकार ने बन्दूक फैर कर ही

तो दी। बन्दूक छूटनी थी कि रोशन चौकी की तान भी छिड़ गयी, पामर भी कमर कसकर नाचने को खड़ा हो गया।

महरी — अरे तुम सब के सब भंग खा गये हो गया?

मीरशिकार — क्या हुआ?

महरी — हुआ क्या लड़की ही तो फिर हुई है?

पिता जी — लड़की हुई है?

यह कहते-कहते वह कमर थामकर बैठ गये मानो वज्र गिर पड़ा। घमंडीलाल कमरे से निकल आये और बोले — जाकर लेडी डाक्टर से तो पूछ। अच्छी तरह देख न ले। देखा सुना, चल खड़ी हुई।

महरी — बाबूजी, मैंने तो आँखों देखा है!

घमंडीलाल — कन्या ही है?

पिता — हमारी तकदीर ही ऐसी है बेटा! जाओ रे सब के सब! तुम सभी के भाग्य में कुछ पाना न लिखा था तो कहाँ से पाते। भाग जाओ। सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, सारी तैयारी मिट्टी में मिल गयी।

घमंडीलाल — इस महात्मा से पूछना चाहिए। मैं आज डाक से जरा बचा की खबर लेता हूँ।

पिता — धूर्त है, धूर्त!

घमंडीलाल — मैं उनकी सारी धूर्तता निकाल दूँगा। मारे डंडों के खोपड़ी न तोड़ दूँ तो कहिएगा। चांडाल कहीं का! उसके कारण मेरे सैंकड़ों रुपये पर पानी फिर गया। यह सेजगाड़ी, यह गाय, यह पलना, यह सोने के गहने किसके सिर पटकूँ। ऐसे ही उसने कितनों ही को ठगा होगा। एक दफा बचा ही मरम्मत हो जाती तो ठीक हो जाते।

पिता जी — बेटा, उसका दोष नहीं, अपने भाग्य का दोष है।

घमंडीलाल — उसने क्यों कहा ऐसा नहीं होगा। औरतों से इस पाखंड के लिए कितने ही रुपये ऐंठे होंगे। वह सब उन्हें उगलना पड़ेगा, नहीं तो पुलिस में रपट कर दूँगा। कानून में पाखंड का भी तो दंड है। मैं पहले ही चौंका था कि हो न हो पाखंडी है; लेकिन मेरी सलहज ने धोखा दिया, नहीं तो मैं ऐसे पाजियों के पंजे में कब आने वाला था। एक ही सुअर है।

पिताजी — बेटा सब्र करो। ईश्वर को जो कुछ मंजूर था, वह हुआ। लड़का-लड़की दोनों ही ईश्वर की देन है, जहाँ तीन हैं वहाँ एक और सही।

पिता और पुत्र में तो यह बातें होती रहीं। पामर, मीरशिकार आदि ने अपने-अपने डंडे संभाले और अपनी राह चले। घर में

मातम-सा छा गया, लेडी डॉक्टर भी विदा कर दी गयी, सौर में जच्चा और दाई के सिवा कोई न रहा। वृद्धा माता तो इतनी हताश हुई कि उसी वक्त अटवास-खटवास लेकर पड़ रहीं।

जब बच्चे की बरही हो गयी तो घमंडीलाल स्त्री के पास गये और सरोष भाव से बोले — फिर लड़की हो गयी!

निरुपमा — क्या करूँ, मेरा क्या बस?

घमंडीलाल — उस पापी धूर्त ने बड़ा चकमा दिया।

निरुपमा — अब क्या कहें, मेरे भाग्य ही में न होगा, नहीं तो वहाँ कितनी ही औरतें बाबाजी को रात-दिन घेरे रहती थीं। वह किसी से कुछ लेते तो कहती कि धूर्त हैं, कसम ले लो जो मैंने एक कौड़ी भी उन्हें दी हो।

घमंडीलाल — उसने लिया या न लिया, यहाँ तो दिवाला निकल गया। मालूम हो गया तकदीर में पुत्र नहीं लिखा है। कुल का नाम डूबना ही है तो क्या आज डूबा, क्या दस साल बाद डूबा। अब कहीं चला जाऊँगा, गृहस्थी में कौन-सा सुख रखा है।

वह बहुत देर तक खड़े-खड़े अपने भाग्य को रोते रहे; पर निरुपमा ने सिर तक न उठाया।

4

निरुपमा के सिर फिर वही विपत्ति आ पड़ी, फिर वही ताने, वही अपमान, वही अनादर, वही छीछालेदार, किसी को चिंता न रहती कि खाती–पीती है या नहीं, अच्छी है या बीमार, दुखी है या सुखी। घमंडीलाल यद्यपि कहीं न गये, पर निरूपमा को यही धमकी प्रायः नित्य ही मिलती रहती थी। कई महीने यों ही गुजर गये तो निरूपमा ने फिर भावज को लिखा कि तुमने और भी मुझे विपत्ति में डाल दिया। इससे तो पहले ही भली थी। अब तो काई बात भी नहीं पूछता कि मरती है या जीती है। अगर यही दशा रही तो स्वामी जी चाहे संन्यास लें या न लें, लेकिन मैं संसार को अवश्य त्याग दूँगी।

भाभी यह पत्र पाकर परिस्थिति समझ गयी। अबकी उसने निरुपमा को बुलाया नहीं, जानती थी कि लोग विदा ही न करेंगे, पति को लेकर स्वयं आ पहुंची। उसका नाम सुकेशी था। बड़ी मिलनसार, चतुर विनोदशील स्त्री थी। आते ही आते निरुपमा की गोद में कन्या देखी तो बोली — अरे यह क्या?

सास — भाग्य है और क्या?

सुकेशी — भाग्य कैसा? इसने महात्मा जी की बातें भुला दी होंगी। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि वह मुँह से जो कुछ कह दें, वह न हो। क्यों जी, तुमने मंगल का व्रत रखा?

निरुपमा — बराबर, एक व्रत भी न छोड़ा।

सुकेशी — पाँच ब्राह्मणों को मंगल के दिन भोजन कराती रही?

निरुपमा — यह तो उन्होंने नहीं कहा था।

सुकेशी — तुम्हारा सिर, मुझे खूब याद है, मेरे सामने उन्होंने बहुत जोर देकर कहा था। तुमने सोचा होगा, ब्राह्मणों को भोजन कराने से क्या होता है। यह न समझा कि कोई अनुष्ठान सफल नहीं होता जब तक विधिवत् उसका पालन न किया जाये।

सास — इसने कभी इसकी चर्चा ही नहीं की; नहीं;पाँच क्या दस ब्राह्मणों को जिमा देती। तुम्हारे धर्म से कुछ कमी नहीं है।

सुकेशी — कुछ नहीं, भूल हो गयी और क्या। रानी, बेटे का मुँह यों देखना नसीब नहीं होता। बड़े-बड़े जप-तप करने पड़ते हैं, तुम मंगल के व्रत ही से घबरा गयीं?

सास — अभागिनी है और क्या?

घमंडीलाल — ऐसी कौन-सी बड़ी बातें थीं, जो याद न रहीं? वह हम लोगों को जलाना चाहती है।

सास — वही तो कहूँ कि महात्मा की बात कैसे निष्फल हुई। यहाँ सात बरसों ते 'तुलसी माई' को दिया चढ़ाया, जब जा के बच्चे का जन्म हुआ।

घमंडीलाल — इन्होंने समझा था दाल–भात का कौर है!

सुकेशी — खैर, अब जो हुआ सो हुआ कल मंगल है, फिर व्रत रखो और अब की सात ब्राह्मणों को जिमाओ, देखें, कैसे महात्मा जी की बात नहीं पूरी होती।

घमंडीलाल — व्यर्थ है, इनके किये कुछ न होगा।

सुकेशी — बाबूजी, आप विद्वान समझदार होकर इतना दिल छोटा करते हैं। अभी आपकी उम्र क्या है। कितने पुत्र लीजिएगा? नाकों दम न हो जाये तो कहिएगा।

सास — बेटी, दूध–पूत से भी किसी का मन भरा है।

सुकेशी — ईश्वर ने चाहा तो आप लोगों का मन भर जायेगा। मेरा तो भर गया।

घमंडीलाल — सुनती हो महारानी, अबकी कोई गोलमोल मत करना। अपनी भाभी से सब ब्योरा अच्छी तरह पूछ लेना।

सुकेशी — आप निश्चिंत रहें, मैं याद करा दूँगी; क्या भोजन करना होगा, कैसे रहना होगा कैसे स्नान करना होगा, यह सब लिखा दूँगी

और अम्मा जी, आज से अठारह मास बाद आपसे कोई भारी इनाम लूँगी।

सुकेशी एक सप्ताह यहाँ रही और निरुपमा को खूब सिखा-पढ़ा कर चली गयी।

5

निरुपमा का एकबाल फिर चमका, घमंडीलाल अबकी इतने आश्वासित से रानी हुई, सास फिर उसे पान की भाँति फेरने लगी, लोग उसका मुँह जोहने लगे।

दिन गुजरने लगे, निरुपमा कभी कहती अम्माँ जी, आज मैंने स्वप्न देखा कि वृद्ध स्त्री ने आकर मुझे पुकारा और एक नारियल देकर बोली, 'यह तुम्हें दिये जाती हूँ; कभी कहती,' अम्माँ जी, अबकी न जाने क्यों मेरे दिल में बड़ी-बड़ी उमंगें पैदा हो रही हैं, जी चाहता है खूब गाना सुनूँ, नदी में खूब स्नान करूँ, हरदम नशा-सा छाया रहता है। सास सुनकर मुस्कराती और कहती — बहू ये शुभ लक्षण हैं।

निरुपमा चुपके–चुपके माजूम मँगाकर खाती और अपने असल नेत्रों से ताकते हुए घमंडीलाल से पूछती — मेरी आँखें लाल हैं क्या?

घमंडीलाल खुश होकर कहते — मालूम होता है, नशा चढ़ा हुआ है। ये शुभ लक्षण हैं।

निरुपमा को सुगन्धों से कभी इतना प्रेम न था, फूलों के गजरों पर अब वह जान देती थी।

घमंडीलाल अब नित्य सोते समय उसे महाभारत की वीर कथाएँ पढ़कर सुनाते, कभी गुरु गोविंदसिंह कीर्ति का वर्णन करते। अभिमन्यु की कथा से निरुपमा को बड़ा प्रेम था। पिता अपने आने वाले पुत्र को वीर–संस्कारों से परिपूरित कर देना चाहता था।

एक दिन निरुपमा ने पति से कहा — नाम क्या रखोगे?

घमंडीलाल — यह तो तुमने खूब सोचा। मुझे तो इसका ध्यान ही न रहा। ऐसा नाम होना चाहिए जिससे शौर्य और तेज टपके। सोचो कोई नाम।

दोनों प्राणी नामों की व्याख्या करने लगे। जोरावरलाल से लेकर हरिश्चन्द्र तक सभी नाम गिनाये गये, पर उस असामान्य बालक

के लिए कोई नाम न मिला। अन्त में पति ने कहा तेगबहादुर कैसा नाम है।

निरुपमा — बस–बस, यही नाम मुझे पसन्द है?

घमंडीलाल — नाम ही तो सब कुछ है। दमड़ी, छकौड़ी, घुरहू, कतवारू, जिसके नाम देखे उसे भी 'यथा नाम तथा गुण' ही पाया। हमारे बच्चे का नाम होगा तेगबहादुर।

6

प्रसव–काल आ पहुंचा। निरुपमा को मालूम था कि क्या होने वाली है; लेकिन बाहर मंगलाचरण का पूरा सामान था। अबकी किसी को लेशमात्र भी संदेह न था। नाच, गाने का प्रबंध भी किया गया था। एक शामियाना खड़ा किया गया था और मित्रगण उसमें बैठे खुश–गप्पियाँ कर रहे थे। हलवाई कड़ाई से पूरियाँ और मिठाइयाँ निकाल रहा था। कई बोरे अनाज के रखे हुए थे कि शुभ समाचार पाते ही भिक्षुकों को बाँटे जायें। एक क्षण का भी विलम्ब न हो, इसलिए बोरों के मुँह खोल दिये गये थे।

लेकिन निरुपमा का दिल प्रतिक्षण बैठा जाता था। अब क्या होगा? तीन साल किसी तरह कौशल से कट गये और मजे में कट गये, लेकिन अब विपत्ति सिर पर मँडरा रही है। हाय! निरपराध होने पर भी यही दंड! अगर भगवान् की इच्छा है कि मेरे गर्भ से कोई पुत्र न जन्म ले तो मेरा क्या दोष! लेकिन कौन सुनता है। मैं ही अभागिनी हूँ मैं ही त्याज्य हूँ मैं ही कलमुँही हूँ इसीलिए न कि परवश हूँ! क्या होगा? अभी एक क्षण में यह सारा आनंदोत्सव शोक में डूब जायेगा, मुझ पर बौछारें पड़ने लगेंगी, भीतर से बाहर तक मुझी को कोसेंगे, सास–ससुर का भय नहीं, लेकिन स्वामी जी शायद फिर मेरा मुँह न देखें, शायद निराश होकर घर–बार त्याग दें। चारों तरफ अमंगल ही अमंगल हैं मैं अपने घर की, अपनी संतान की दुर्दशा देखने के लिए क्यों जीवित हूँ। कौशल बहुत हो चुका, अब उससे कोई आशा नहीं। मेरे दिल में कैसे–कैसे अरमान थे। अपनी प्यारी बच्चियों का लालन–पालन करती, उन्हें ब्याहती, उनके बच्चों को देखकर सुखी होती। पर आह! यह सब अरमान खाक में मिले जाते हैं। भगवान्! तुम्हीं अब इनके पिता हो, तुम्हीं इनके रक्षक हो। मैं तो अब जाती हूँ।

लेडी डॉक्टर ने कहा — वेल! फिर लड़की है।

भीतर–बाहर कुहराम मच गया, पिट्टस पड़ गयी। घमंडीलाल ने कहा — जहन्नुम में जाये ऐसी जिंदगी, मौत भी नहीं आ जाती!

उनके पिता भी बोले — अभागिनी है, वज्र अभागिनी!

भिक्षुकों ने कहा — रोओ अपनी तकदीर को हम कोई दूसरा द्वार देखते हैं।

अभी यह शोकोद्गार शान्त न होने पाया था कि डॉक्टर ने कहा माँ का हाल अच्छा नहीं है। वह अब नहीं बच सकती। उसका दिल बन्द हो गया है।

दंड

संध्या का समय था। कचहरी उठ गयी थी। अहलकार चपरासी जेबें खनखनाते घर जा रहे थे। मेहतर कूड़े टटोल रहा था कि शायद कहीं पैसे मिल जायें। कचहरी के बरामदों में साँड़ों ने वकीलों की जगह ले ली थी। पेड़ों के नीचे मुहर्रिरों की जगह कुत्ते बैठे नजर आते थे। इसी समय एक बूढ़ा आदमी, फटे-पुराने कपड़े पहने, लाठी टेकता हुआ, जंट साहब के बंगले पर पहुँचा और सायबान में खड़ा हो गया। जंट साहब का नाम था मिस्टर जी. सिनहा। अरदली ने दूर ही से ललकारा — कौन सायबान में खड़ा है? क्या चाहता है।

बूढ़ा — गरीब बाम्हान हूँ भैया, साहब से भेंट होगी?

अरदली — साहब तुम जैसों से नहीं मिला करते।

बूढ़े ने लाठी पर अकड़ कर कहा — क्यों भाई, हम खड़े हैं या डाकू-चोर हैं कि हमारे मुँह में कुछ लगा हुआ है?

अरदली — भीख माँग कर मुकदमा लड़ने आये होंगे?

बूढ़ा — तो कोई पाप किया है? अगर घर बेचकर नहीं लड़ते तो कुछ बुरा करते हैं? यहाँ तो मुकदमा लड़ते-लड़ते उमर बीत गयी; लेकिन घर का पैसा नहीं खरचा। मियाँ की जूती मियाँ का सिर करते हैं। दस भलेमानसों से माँग कर एक को दे दिया। चलो छुट्टी हुई। गाँव भर नाम से काँपता है। किसी ने जरा भी टिर-पिर की और मैंने अदालत में दावा दायर किया।

अरदली — किसी बड़े आदमी से पाला नहीं पड़ा अभी?

बूढ़ा — अजी, कितने ही बड़ों को बड़े घर भिजवा दिया, तूम हो किस फेर में। हाई-कोर्ट तक जाता हूँ सीधा। कोई मेरे मुँह क्या आयेगा बेचारा! गाँव से तो कौड़ी जाती नहीं, फिर डरें क्यों? जिसकी चीज पर दांत लगाये, अपना करके छोड़ा। सीधे न दिया तो अदालत में घसीट लाये और रगेद-रगेद कर मारा, अपना क्या बिगड़ता है? तो साहब से इत्तला करते हो कि मैं ही पुकारूँ?

अरदली ने देखा; यह आदमी यों टलनेवाला नहीं तो जाकर साहब से उसकी इत्तला की। साहब ने हुलिया पूछा और खुश होकर कहा — फौरन बुला लो।

अरदली — हजूर, बिलकुल फटेहाल है।

साहब — गुदड़ी ही में लाल होते हैं। जाकर भेज दो।

मिस्टर सिनहा अधेड़ आदमी थे, बहुत ही शान्त, बहुत ही विचारशील। बातें बहुत कम करते थे। कठोरता और असभ्यता, जो शासन की अंग समझी जाती हैं, उनको छू भी नहीं गयी थी। न्याय और दया के देवता मालूम होते थे। डील-डौल देवों का-सा था और रंग आबनूस का-सा। आराम-कुर्सी पर लेटे हुए पेचवान पी रहे थे। बूढ़े ने जाकर सलाम किया।

सिनहा — तुम हो जगत पांडे! आओ बैठो। तुम्हारा मुकदमा तो बहुत ही कमजोर है। भले आदमी, जाल भी न करते बना?

जगत — ऐसा न कहें हजूर, गरीब आदमी हूँ, मर जाऊँगा।

सिनहा — किसी वकील मुख्तार से सलाह भी न ले ली?

जगत — अब तो सरकार की सरन में आया हूँ।

सिनहा — सरकार क्या मिसिल बदल देंगे; या नया कानून गढ़ेंगे? तुम गच्चा खा गये। मैं कभी कानून के बाहर नहीं जाता। जानते हो न अपील से कभी मेरी तजवीज रद्द नहीं होती?

जगत — बड़ा धरम होगा सरकार! (सिनहा के पैरों पर गिन्नियों की एक पोटली रखकर) बड़ा दुखी हूँ सरकार!

सिनहा — (मुस्कराकर) यहाँ भी अपनी चालबाजी से नहीं चूकते? निकालो अभी और, ओस से प्यास नहीं बुझती। भला दहाई तो पूरा करो।

जगत — बहुत तंग हूँ दीनबंधु!

सिनहा — डालो–डालो कमर में हाथ। भला कुछ मेरे नाम की लाज तो रखो।

जगत — लुट जाऊँगा सरकार!

सिनहा — लुटें तुम्हारे दुश्मन, जो इलाका बेचकर लड़ते हैं। तुम्हारे जजमानों का भगवान भला करे, तुम्हें किस बात की कमी है।

मिस्टर सिनहा इस मामले में जरा भी रियायत न करते थे। जगत ने देखा कि यहाँ काइयाँपन से काम चलेगा तो चुपके से 4 गिन्नियाँ और निकालीं। लेकिन उन्हें मिस्टर सिनहा के पैरों रखते समय उसकी आँखों से खून निकल आया। यह उसकी बरसों की कमाई थी। बरसों पेट काटकर, तन जलाकर, मन बाँधकर, झूठी गवाहियाँ देकर उसने यह थाती संचय कर पायी थी। उसका हाथों से निकलना प्राण निकलने से कम दुखदायी न था।

जगत पांडे के चले जाने के बाद, कोई 9 बजे रात को, जंट साहब के बंगले पर एक तांगा आकर रुका और उस पर से पंडित सत्यदेव उतरे जो राजा साहब शिवपुर के मुख्तार थे।

मिस्टर सिनहा ने मुस्कराकर कहा — आप शायद अपने इलाके में गरीबों को न रहने देंगे। इतना जुल्म!

सत्यदेव — गरीब परवर, यह कहिए कि गरीबों के मारे अब इलाके में हमारा रहना मुश्किल हो रहा है। आप जानते हैं, साधी उंगली से घी नहीं निकलता। जमींदार को कुछ–न–कुछ सख्ती करनी ही पड़ती है, मगर अब यह हाल है कि हमने जरा चूँ भी की तो उन्हीं गरीबों की त्योरियाँ बदल जाती हैं। सब मुफ्त में जमीन जोतना चाहते हैं। लगान माँगिये तो फौजदारी का दावा करने को तैयार! अब इसी जगत पांडे को देखिए, गंगा कसम है हुजूर सरासर झूठा दावा है। हुजूर से कोई बात छिपी तो रह नहीं सकती। अगर जगत पांडे मुकदमा जीत गया तो हमें बोरियाँ–बंधना छोड़कर भागना पड़ेगा। अब हुजूर ही बसाएँ तो बस सकते हैं। राजा साहब ने हुजूर को सलाम कहा है और अर्ज की है हक इस मामले में जगत पांडे की ऐसी खबर लें कि वह भी याद करे।

मिस्टर सिनहा ने भवें सिकोड़ कर कहा — कानून मेरे घर तो नहीं बनता?

सत्यदेव — आपके हाथ में सब कुछ है।

यह कहकर गिन्नियों की एक गड्डी निकाल कर मेज पर रख दी। मिस्टर सिनहा ने गड्डी को आँखों से गिनकर कहा — इन्हें मेरी तरफ से राजा साहब को नजर कर दीजिएगा। आखिर आप कोई वकील तो करेंगे। उसे क्या दीजिएगा?

सत्यदेव — यह तो हुजूर के हाथ में है। जितनी ही पेशियाँ होंगी उतना ही खर्च भी बढ़ेगा।

सिनहा — मैं चाहूँ तो महीनों लटका सकता हूँ।

सत्यदेव — हाँ, इससे कौन इनकार कर सकता है।

सिनहा — पाँच पेशियाँ भी हुई तो आपके कम से कम एक हजार उड़ जायेंगे। आप यहाँ उसका आधा पूरा कर दीजिए तो एक ही पेशी में वारा-न्यारा हो जाए। आधी रकम बच जाय।

सत्यदेव ने 10 गिन्नियाँ और निकाल कर मेज पर रख दीं और घमंड के साथ बोले — हुक्म हो तो राजा साहब कह दूँ, आप इत्मीनान रखें, साहब की कृपादृष्टि हो गयी है।

मिस्टर सिनहा ने तीव्र स्वर में कहा 'जी नहीं, यह कहने की जरूरत नहीं। मैं किसी शर्त पर यह रकम नहीं ले रहा। मैं करूँगा वही जो कानून की मंशा होगी। कानून के खिलाफ जौ-भर भी नहीं जा सकता। यही मेरा उसूल है। आप लोग मेरी खातिर करते हैं, यह आपकी शरारत है। उसे अपना दुश्मन समझूँगा जो मेरा ईमान खरीदना चाहे। मैं जो कुछ लेता हूँ, सच्चाई का इनाम समझ कर लेता हूँ।'

2

जगत पांडे को पूरा विश्वास था कि मेरी जीत होगी; लेकिन तजबीज सुनी तो होश उड़ गये! दावा खारिज हो गया! उस पर खर्च की चपत अलग। मेरे साथ यह चाल! अगर लाला साहब को इसका मजा न चखा दिया, तो बाम्हन नहीं। हैं किस फेर में? सारा रोब भुला दूँगा। वहाँ गाढ़ी कमाई के रुपये हैं। कौन पचा सकता है? हाड़ फोड़-फोड़ कर निकलेंगे। द्वार पर सिर पटक-पटक कर मर जाऊँगा।

उसी दिन संध्या को जगत पांडे ने मिस्टर सिनहा के बंगले के सामने आसन जमा दिया। वहाँ बरगद का घना वृक्ष था।

मुकदमेवाले वहीं सत्तू, चबेना खाते ओर दोपहरी उसी की छाँह में काटते थे। जगत पांडे उनसे मिस्टर सिनहा की दिल खोलकर निंदा करता। न कुछ खाता न पीता, बस लोगों को अपनी रामकहानी सुनाया करता। जो सुनता वह जंट साहब को चार खोटी–खरी कहता — आदमी नहीं पिशाच है, इसे तो ऐसी जगह मारे जहाँ पानी न मिले। रुपये के रुपये लिए, ऊपर से खरचे समेत डिग्री कर दी! यही करना था तो रुपये काहे को निकले थे? यह है हमारे भाई–बन्दों का हाल। यह अपने कहलाते हैं! इनसे तो अंग्रेज ही अच्छे। इस तरह की आलोचनाएँ दिन–भर हुआ करतीं। जगत पांडे के आस–पास आठों पहर जमघट लगा रहता।

इस तरह चार दिन बीत गये और मिस्टर सिनहा के कानों में भी बात पहुँची। अन्य रिश्वती कर्मचारियों की तरह वह भी हेकड़ आदमी थे। ऐसे निर्द्वन्द्व रहते मानो उन्हें यह बीमारी छू तक नहीं गयी है। जब वह कानून से जौ–भर भी न टलते थे तो उन पर रिश्वत का संदेह हो ही क्योंकर सकता था, और कोई करता भी तो उसकी मानता कौन! ऐसे चतुर खिलाड़ी के विरुद्ध कोई जाब्ते की कार्रवाई कैसे होती? मिस्टर सिनहा अपने अफसरों से भी खुशामद का व्यवहार न करते। इससे हुक्काम भी उनका बहुत आदर करते थे। मगर जगत पांडे ने वह मंत्र मारा था जिसका

उनके पास कोई उत्तर न था। ऐसे बांगड़ आदमी से आज तक उन्हें साबिका न पड़ा था। अपने नौकरों से पूछते — बुड्ढा क्या कर रहा है। नौकर लोग अपनापन जताने के लिए झूठ के पुल बाँध देते — हुजूर, कहता था भूत बन कर लगूँगा, मेरी वेदी बने तो सही, जिस दिन मरूँगा उस दिन के सौ जगत पांडे होंगे। मिस्टर सिनहा पक्के नास्तिक थे; लेकिन ये बातें सुन–सुनकर सशंक हो जाते, और उनकी पत्नी तो थर–थर काँपने लगतीं। वह नौकरों से बार–बार कहती उससे जाकर पूछो, क्या चाहता है। जितना रुपया चाहे ले, हमसे जो माँगे वह देंगे, बस यहाँ से चला जाय, लेकिन मिस्टर सिनहा आदमियों को इशारे से मना कर देते थे। उन्हें अभी तक आशा थी कि भूख–प्यास से व्याकुल होकर बुड्ढा चला जायगा। इससे अधिक भय यह था कि मैं जरा भी नरम पड़ा और नौकरों ने मुझे उल्लू बनाया।

छठे दिन मालूम हुआ कि जगत पांडे अबोल हो गया है, उससे हिला तक नहीं जाता, चुपचाप पड़ा आकाश की ओर देख रहा है। शायद आज रात दम निकल जाय। मिस्टर सिनहा ने लंबी सांस ली और गहरी चिंता में डूब गये। पत्नी ने आँखों में आँसू भरकर आग्रहपूर्वह कहा — तुम्हें मेरे सिर की कसम, जाकर किसी इस बला को टालो। बुड्ढा मर गया तो हम कहीं के न रहेंगे। अब

रुपये का मुँह मत देखो। दो–चार हजार भी देने पड़ें तो देकर उसे मनाओ। तुमको जाते शर्म आती हो तो मैं चली जाऊँ।

सिनहा — जाने का इरादा तो मैं कई दिन से कर रहा हूँ; लेकिन जब देखता हूँ वहाँ भीड़ लगी रहती है, इससे हिम्मत नहीं पड़ती। सब आदमियों के सामने तो मुझसे न जाया जायगा, चाहे कितनी ही बड़ी आफत क्यों न आ पड़े। तुम दो–चार हजार की कहती हो, मैं दस–पाँच हजार देने को तैयार हूँ। लेकिन वहाँ नहीं जा सकता। न जाने किस बुरी साइत से मैंने इसके रुपये लिए। जानता कि यह इतना फिसाद खड़ा करेगा तो फाटक में घुसने ही न देता। देखने में तो ऐसा सीधा मालूम होता था कि गऊ है। मैंने पहली बार आदमी पहचानने में धोखा खाया।

पत्नी — तो मैं ही चली जाऊँ? शहर की तरफ से आऊँगी और सब आदमियों को हटाकर अकेले में बात करूँगी। किसी को खबर न होगी कि कौन है। इसमें तो कोई हरज नहीं है?

मिस्टर सिनहा ने संदिग्ध भाव से कहा — ताड़ने वाले ताड़ ही जायेंगे, चाहे तुम कितना ही छिपाओ।

पत्नी — ताड़ जायेंगे ताड़ जायें, अब किससे कहाँ तक डरुं। बदनामी अभी क्या कम हो रही है, जो और हो जायगी। सारी

दुनिया जानती है कि तुमने रुपये लिए। यों ही कोई किसी पर प्राण नहीं देता। फिर अब व्यर्थ ऐंठ क्यों करो?

मिस्टर सिनहा अब मर्मवेदना को न दबा सके। बोले — प्रिये, यह व्यर्थ की ऐंठ नहीं है। चोर को अदालत में बेंत खाने से उतनी लज्जा नहीं आती, जितनी किसी हाकिम को अपनी रिश्वत का परदा खुलने से आती है। वह जहर खा कर मर जायगा; पर संसार के सामने अपना परदा न खोलेगा। अपना सर्वनाश देख सकता है; पर यह अपमान नहीं सह सकता, जिंदा खाल खींचने, या कोल्हू में पेरे जाने के सिवा और कोई स्थिति नहीं है, जो उसे अपना अपराध स्वीकार करा सके। इसका तो मुझे जरा भी भय नहीं है कि ब्राह्मण भूत बनकर हमको सतायेगा, या हमें उनकी वेदी बनाकर पूजनी पड़ेगी, यह भी जानता हूँ कि पाप का दंड भी बहुधा नहीं मिलता; लेकिन हिंदू होने के कारण संस्कारों की शंका कुछ-कुछ बनी हुई है। ब्रह्महत्या का कलंक सिर पर लेते हुए आत्मा काँपती है। बस इतनी बात है। मैं आज रात को मौका देखकर जाऊँगा और इस संकट को काटने के लिए जो कुछ हो सकेगा, करूँगा। खातिर जमा रखो।

3

आधी रात बीत चुकी थी। मिस्टर सिनहा घर से निकले और अकेले जगत पांडे को मनाने चले। बरगद के नीचे बिलकुल सन्नाटा था। अन्धकार ऐसा था मानो निशादेवी यहीं शयन कर रही हों। जगत पांडे की सांस जोर-जोर से चल रही थी मानो मौत जबरदस्ती घसीटे लिए जाती हो। मिस्टर सिनहा के रोएँ खड़े हो गये। बुड्ढा कहीं मर तो नहीं रहा है? जेबी लालटेन निकाली और जगत के समीप जाकर बोले — पांडे जी, कहो क्या हाल है?

जगत पांडे ने आँखें खोलकर देखा और उठने की असफल चेष्टा करके बोला — मेरा हाल पूछते हो? देखते नहीं हो, मर रहा हूँ?

सिनहा — तो इस तरह क्यों प्राण देते हो?

जगत — तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं क्या करूँ?

सिनहा — मेरी तो यही इच्छा नहीं। हाँ, तुम अलबत्ता मेरा सर्वनाश करने पर तुले हुए हो। आखिर मैंने तुम्हारे डेढ़ सौ रुपये ही तो लिए हैं। इतने ही रुपये के लिए तुम इतना बड़ा अनुष्ठान कर रहे हो!

जगत — डेढ़ सौ रुपये की बात नहीं है। जो तुमने मुझे मिट्टी में मिला दिया। मेरी डिग्री हो गयी होती तो मुझे दस बीघे जमीन मिल जाती और सारे इलाके में नाम हो जाता। तुमने मेरे डेढ़ सौ नहीं लिए, मेरे पाँच हजार बिगाड़ दिये। पूरे पाँच हजार; लेकिन यह घमंड न रहेगा, याद रखना कहे देता हूँ, सत्यानाश हो जायगा। इस अदालत में तुम्हारा राज्य है; लेकिन भगवान के दरबार में विप्रों ही का राज्य है। विप्र का धन लेकर कोई सुखी नहीं रह सकता।

मिस्टर सिनहा ने बहुत खेद और लज्जा प्रकट की, बहुत अनुनय-से काम लिया और अन्त में पूछा — सच बताओ पांडे, कितने रुपये पा जाओ तो यह अनुष्ठान छोड़ दो।

जगत पांडे अबकी जोर लगाकर उठ बैठे और बड़ी उत्सुकता से बोले — पाँच हजार से कौड़ी कम न लूँगा।

सिनहा — पाँच हजार तो बहुत होते हैं। इतना जुल्म न करो।

जगत — नहीं, इससे कम न लूँगा।

यह कहकर जगत पांडे फिर लेट गया। उसने ये शब्द निश्चयात्मक भाव से कहे थे कि मिस्टर सिनहा को और कुछ कहने का साहस न हुआ। रुपये लाने घर चले; लेकिन घर पहुँचते-पहुँचते नीयत बदल गयी। डेढ़ सौ के बदले पाँच हजार

देते कलंक हुआ। मन में कहा — मरता है जाने दो, कहाँ की ब्रह्महत्या और कैसा पाप! यह सब पाखंड है। बदनामी न होगी? सरकारी मुलाजिम तो यों ही बदनाम होते हैं, यह कोई नई बात थोड़े ही है। बचा कैसे उठ बैठे थे। समझा होगा, उल्लू फंसा। अगर 6 दिन के उपवास करने से पाँच हजार मिले तो मैं महीने में कम से कम पाँच मरतबा यह अनुष्ठान करूँ। पाँच हजार नहीं, कोई मुझे एक ही हजार दे दे। यहाँ तो महीने भर नाक रगड़ता हूँ तब जाके 600 रुपये के दर्शन होते हैं। नोच-खसोट से भी शायद ही किसी महीने में इससे ज्यादा मिलता हो। बैठा मेरी राह देख रहा होगा। लेना रुपये, मुँह मीठा हो जायगा।

वह चारपाई पर लेटना चाहते थे कि उनकी पत्नी जी आकर खड़ी हो गयीं। उनके सिर के बाल खुले हुए थे। आँखें सहमी हुई, रह-रहकर काँप उठती थीं। मुँह से शब्द न निकलता था। बड़ी मुश्किल से बोलीं — आधी रात तो हो गई होगी? तुम जगत पांडे के पास चले जाओ। मैंने अभी ऐसा बुरा सपना देखा है कि अभी तक कलेजा धड़क रहा है, जान संकट में पड़ी हुई है। जाके किसी तरह उसे टालो।

मिस्टर सिनहा — वहीं से तो चला आ रहा हूँ। मुझे तुमसे ज्यादा फिक्र है। अभी आकर खड़ा ही हुआ था कि तुम आयी।

पत्नी — अच्छा! तो तुम गये थे! क्या बातें हुईं, राजी हुआ।

सिनहा — पाँच हजार रुपये माँगता है!

पत्नी — पाँच हजार!

सिनहा — कौड़ी कम नहीं कर सकता और मेरे पास इस वक्त एक हजार से ज्यादा न होंगे।

पत्नी ने एक क्षण सोचकर कहा — जितना माँगता है उतना ही दे दो, किसी तरह गला तो छूट। तुम्हारे पास रुपये न हों तो मैं दे दूँगी। अभी से सपने दिखाई देन लगे हैं। मरा तो प्राण कैसे बचेंगे। बोलता–चालता है न?

मिस्टर सिनहा अगर आबनूस थे तो उनकी पत्नी चंदन; सिनहा उनके गुलाम थे, उनके इशारों पर चलते थे। पत्नी जी भी पति–शासन में कुशल थीं। सौंदर्य और अज्ञान में अपवाद है। सुंदरी कभी भोली नहीं होती। वह पुरुष के मर्मस्थल पर आसन जमाना जानती है!

सिनहा — तो लाओ देता आऊँ; लेकिन आदमी बड़ा चग्घड़ है, कहीं रुपये लेकर सबको दिखाता फिरे तो?

पत्नी — इसको यहाँ से इसी वक्त भागना होगा।

सिनहा — तो निकालो दे ही दूँ। जिंदगी में यह बात भी याद रहेगी।

पत्नी — ने अविश्वास भाव से कहा — चलो, मैं भी चलती हूँ। इस वक्त कौन देखता है?

पत्नी से अधिक पुरुष के चरित्र का ज्ञान और किसी को नहीं होता। मिस्टर सिनहा की मनोवृत्तियों को उनकी पत्नी जी खूब जानती थीं। कौन जाने रास्ते में रुपये कहीं छिपा दें, और कह दें दे आए। या कहने लगें, रुपये लेकर भी नहीं टलता तो मैं क्या करूँ। जाकर संदूक से नोटों के पुलिंदे निकाले और उन्हें चादर में छिपा कर मिस्टर सिनहा के साथ चलीं। सिनहा के मुँह पर झाड़ू-सी फिरी थी। लालटेन लिए पछताते चले जाते थे। 5000 रुपये निकले जाते हैं। फिर इतने रुपये कब मिलेंगे; कौन जानता है? इससे तो कहीं अच्छा था दुष्ट मर ही जाता। बला से बदनामी होती, कोई मेरी जेब से रुपये तो न छीन लेता। ईश्वर करे मर गया हो!

अभी तक दोनों आदमी फाटक ही तक आए थे कि देखा, जगत पांडे लाठी टेकता चला आता है। उसका स्वरूप इतना डरावना था मानो श्मशान से कोई मुरदा भागा आता हो।

पत्नी जी बोली — महाराज, हम तो आ ही रहे थे, तुमने क्यों कष्ट किया? रुपये ले कर सीधे घर चले जाओगे न?

जगत — हाँ–हाँ, सीधा घर जाऊँगा। कहाँ हैं रुपये देखूँ!

पत्नी जी ने नोटों का पुलिंदा बाहर निकाला और लालटेन दिखा कर बोलीं — गिन लो। पूरे 5000 रुपये हैं!

पांडे ने पुलिंदा लिया और बैठ कर उलट–पुलट कर देखने लगा। उसकी आँखें एक नये प्रकाश से चमकने लगी। हाथों में नोटों को तौलता हुआ बोला — पूरे पाँच हजार हैं?

पत्नी — पूरे गिन लो?

जगत — पाँच हजार में दो टोकरी भर जायगी! (हाथों से बताकर) इतने सारे पाँच हजार!

सिनहा — क्या अब भी तुम्हें विश्वास नहीं आता?

जगत — हैं–हैं, पूरे हैं पूरे पाँच हजार! तो अब जाऊँ, भाग जाऊँ?

यह कह कर वह पुलिंदा लिए कई कदम लड़खड़ाता हुआ चला, जैसे कोई शराबी, और तब धम से जमीन पर गिर पड़ा। मिस्टर सिनहा लपट कर उठाने दौड़े तो देखा उसकी आँखें पथरा गयी हैं और मुख पीला पड़ गया है। बोले — पांडे, क्या कहीं चोट आ गयी?

पांडे ने एक बार मुँह खोला जैसे मरी हुई चिड़िया सिर लटका चोंच खोल देती है। जीवन का अंतिम धागा भी टूट गया। ओंठ खुले हुए थे और नोटों का पुलिंदा छाती पर रखा हुआ था। इतने में पत्नी जी भी आ पहुंची और शव को देखकर चौंक पड़ीं!

पत्नी — इसे क्या हो गया?

सिनहा — मर गया और क्या हो गया?

पत्नी — (सिर पीटकर) मर गया! हाय भगवान्! अब कहाँ जाऊँ?

यह कह कर बंगले की ओर बड़ी तेजी से चलीं। मिस्टर सिनहा ने भी नोटो का पुलिंदा शव की छाती पर से उठा लिया और चले।

पत्नी — ये रुपये अब क्या होंगे?

सिनहा — किसी धर्म-कार्य में दे दूँगा।

पत्नी — घर में मत रखना, खबरदार! हाय भगवान!

दूसरे दिन सारे शहर में खबर मशहूर हो गयी — जगत पांडे ने जंट साहब पर जान दे दी। उसका शव उठा तो हजारों आदमी साथ थे। मिस्टर सिनहा को खुल्लम-खुल्ला गालियाँ दी जा रही थीं।

संध्या समय मिस्टर सिनहा कचहरी से आ कर मन मार बैठे थे कि नौकरों ने आ कर कहा — सरकार, हमको छुट्टी दी जाय! हमारा हिसाब कर दीजिए। हमारी बिरादरी के लोग धमकाते हैं कि तुम जंट साहब की नौकरी करोगे तो हुक्का-पानी बन्द हो जायगा।

सिनहा ने झल्ला कर कहा — कौन धमकाता है?

कहार — किसका नाम बताएँ सरकार! सभी तो कह रहे हैं।

रसोइया — हुजूर, मुझे तो लोग धमकाते हैं कि मन्दिर में न घुसने पाओगे।

साईस — हुजूर, बिरादरी से बिगाड़ करक हम लोग कहाँ जाएँगे? हमारा आज से इस्तीफा है। हिसाब जब चाहे कर दीजिएगा।

मिस्टर सिनहा ने बहुत धमकाया फिर दिलासा देने लगे; लेकिन नौकरों ने एक न सुनी। आध घण्टे के अन्दर सबों ने अपना-अपना रास्ता लिया। मिस्टर सिनहा दाँत पीस कर रह गए;

लेकिन हाकिमों का काम कब रुकता है? उन्होंने उसी वक्त कोतवाल को खबर कर दी और कई आदमी बेगार में पकड़ आए। काम चल निकला।

उसी दिन से मिस्टर सिनहा और हिंदू समाज में खींचतान शुरु हुई। धोबी ने कपड़े धोना बन्द कर दिया। ग्वाले ने दूध लाने में आना–कानी की। नाई ने हजामत बनानी छोड़ी। इन विपत्तियों पर पत्नी जी का रोना–धोना और भी गजब था। इन्हें रोज भयंकर स्वप्न दिखाई देते। रात को एक कमरे से दूसरे में जाते प्राण निकलते थे। किसी को जरा सिर भी दुखता तो नहीं में जान समा जाती। सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि अपने सम्बन्धियों ने भी आना–जाना छोड़ दिया। एक दिन साले आए, मगर बिना पानी पिये चले गए। इसी तरह एक बहनोई का आगमन हुआ। उन्होंने पान तक न खाया। मिस्टर सिनहा बड़े धैर्य से यह सारा तिरस्कार सहते जाते थे। अब तक उनकी आर्थिक हानि न हुई थी। गरज के बावले झक मार कर आते ही थे और नजर–नजराना मिलता ही था। फिर विशेष चिंता का कोई कारण न था।

लेकिन बिरादरी से वैर करना पानी में रह कर मगर से वैर करने जैसे है। कोई–न–कोई ऐसा अवसर ही आ जाता है, जब हमको बिरादरी के सामने सिर झुकाना पड़ता है। मिस्टर सिनहा को भी

साल के अन्दर ही ऐसा अवसर आ पड़ा। यह उनकी पुत्री का विवाह था। यही वह समस्या है जो बड़े-बड़े हेकड़ों का घमंड चूर कर देती है। आप किसी के आने-जाने की परवा न करें, हुक्का-पानी, भोज-भात, मेल-जोल किसी बात की परवा न करे; मगर लड़की का विवाह तो न टलने वाली बला है। उससे बचकर आप कहाँ जाएँगे! मिस्टर सिनहा को इस बात का दगदगा तो पहिले ही था कि त्रिवेणी के विवाह में बाधाएँ पड़ेगी; लेकिन उन्हें विश्वास था कि द्रव्य की अपार शक्ति इस मुश्किल को हल कर देगी। कुछ दिनों तक उन्होंने जान-बूझ कर टाला कि शायद इस आँधी का जोर कुछ कम हो जाय; लेकिन जब त्रिवेणी को सोलहवां साल समाप्त हो गया तो टाल-मटोल की गुंजाइश न रही। संदेशे भेजने लगे; लेकिन जहाँ संदेशिया जाता वहीं जवाब मिलता — हमें मंजूर नही। जिन घरों में साल-भर पहले उनका संदेशा पा कर लोग अपने भाग्य को सराहते, वहाँ से अब सूखा जवाब मिलता था — हमें मंजूर नहीं। मिस्टर सिनहा धन का लोभ देते, जमीन नजर करने को कहते, लड़के को विलायत भेज कर ऊँची शिक्षा दिलाने का प्रस्ताव करते किंतु उनकी सारी आयोजनाओं का एक ही जवाब मिलता था — हमें मंजूर नहीं। ऊँचे घरानों का यह हाल देखकर मिस्टर सिनहा उन घरानों में संदेश भेजने लगे, जिनके साथ पहले बैठकर भोजन करने में भी

उन्हें संकोच होता था;लेकिन वहाँ भी वही जवाब मिला — हमें मंजूर नही। यहाँ तक कि कई जगह वे खुद दौड़–दौड़ कर गये। लोगों की मिन्नतें कीं, पर यही जवाब मिला — साहब, हमें मंजूर नहीं। शायद बहिष्कृत घरानों में उनका संदेश स्वीकार कर लिया जाता; पर मिस्टर सिनहा जान–बूझकर मक्खी न निगलना चाहते थे। ऐसे लोगों से सम्बन्ध न करना चाहते थे जिनका बिरादरी में काई स्थान न था। इस तरह एक वर्ष बीत गया।

मिसेज सिनहा चारपाई पर पड़ी कराह रही थीं, त्रिवेणी भोजन बना रही थी और मिस्टर सिनहा पत्नी के पास चिंता में डूबे बैठे हुए थे। उनके हाथ में एक खत था, बार–बार उसे देखते और कुछ सोचने लगते थे। बड़ी देर के बाद रोगिणी ने आँखें खोलीं और बोलीं — अब न बचूँगी पांडे मेरी जान लेकर छोड़ेगा। हाथ में कैसा कागज है?

सिनहा — यशोदानन्दन के पास से खत आया हैं। पाजी को यह खत लिखते हुए शर्म नहीं आती, मैंने इसकी नौकरी लगायी। इसकी शादी करवायी और आज उसका मिजाज इतना बढ़ गया है कि अपने छोटे भाई की शादी मेरी लड़की से करना पसंद नहीं करता। अभागे के भाग्य खुल जाते!

पत्नी — भगवान्, अब ले चलो। यह दुर्दशा नहीं देखी जाती। अंगूर खाने का जी चाहता है, मँगवाये है कि नहीं?

सिनाह — मैं जाकर खुद लेता आया था।

यह कहकर उन्होंने तश्तरी में अंगूर भरकर पत्नी के पास रख दिये। वह उठा-उठा कर खाने लगीं। जब तश्तरी खाली हो गयी तो बोलीं — अब किसके यहाँ संदेशा भेजोगे?

सिनहा — किसके यहाँ बताऊँ! मेरी समझ में तो अब कोई ऐसा आदमी नहीं रह गया। ऐसी बिरादरी में रहने से तो यह हजार दरजा अच्छा है कि बिरादरी के बाहर रहूँ। मैंने एक ब्राह्मण से रिश्वत ली। इससे मुझे इनकार नहीं। लेकिन कौन रिश्वत नहीं लेता? अपने गौं पर कोई नहीं चूकता। ब्राह्मण नहीं खुद ईश्वर ही क्यों न हों, रिश्वत खाने वाले उन्हें भी चूस लेंगे। रिश्वत देने वाला अगर कोई निराश होकर अपने प्राण देता है तो मेरा क्या अपराध! अगर कोई मेरे फैसले से नाराज होकर जहर खा ले तो मैं क्या कर सकता हूँ। इस पर भी मैं प्रायश्चित करने को तैयार हूँ। बिरादरी जो दंड दे, उसे स्वीकार करने को तैयार हूँ। सबसे कह चुका हूँ मुझसे जो प्रायश्चित चाहो करा लो पर कोई नहीं सुनता। दंड अपराध के अनुकूल होना चाहिए, नहीं तो यह अन्याय है। अगर किसी मुसलमान का छुआ भोजन खाने के लिए

बिरादरी मुझे काले पानी भेजना चाहे तो मैं उसे कभी न मानूँगा। फिर अपराध अगर है तो मेरा है। मेरी लड़की ने क्या अपराध किया है। मेरे अपराध के लिए लड़की को दंड देना सरासर न्याय–विरुद्ध है।

पत्नी — मगर करोगे क्या? और कोई पंचायत क्यों नहीं करते?

सिनहा — पंचायत में भी तो वही बिरादरी के मुखिया लोग ही होंगे, उनसे मुझे न्याय की आशा नहीं। वास्तव में इस तिरस्कार का कारण ईर्ष्या है। मुझे देखकर सब जलते हैं और इसी बहाने वे मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। मैं इन लोगों को खूब समझता हूँ।

पत्नी — मन की लालसा मन में रह गयी। यह अरमान लिये संसार से जाना पड़ेगा। भगवान् की जैसी इच्छा। तुम्हारी बातों से मुझे डर लगता है कि मेरी बच्ची की न–जाने क्या दशा होगी। मगर तुमसे मेरी अंतिम विनय यही है कि बिरादरी से बाहर न जाना, नहीं तो परलोक में भी मेरी आत्मा को शांति न मिलेगी। यह शोक मेरी जान ले रहा है। हाय, बच्ची पर न–जाने क्या विपत्ति आने वाली है।

यह कहते मिसेज सिनहा की आँखें में आँसू बहने लगे। मिस्टर सिनहा ने उनको दिलासा देते हुए कहा — इसकी चिंता मत करो

प्रिये, मेरा आशय केवल यह था कि ऐसे भाव मन में आया करते हैं। तुमसे सच कहता हूँ, बिरादरी के अन्याय से कलेजा छलनी हो गया है।

पत्नी — बिरादरी को बुरा मत कहो। बिरादरी का डर न हो तो आदमी न जाने क्या-क्या उत्पात करे। बिरादरी को बुरा न कहो। (कलेजे पर हाथ रखकर) यहाँ बड़ा दर्द हो रहा है। यशोदानन्दन ने भी कोरा जवाब दे दिया। किसी करवट चैन नहीं आता। क्या करूँ भगवान्।

सिनहा — डाक्टर को बुलाऊँ?

पत्नी — तुम्हारा जी चाहे बुला लो, लेकिन मैं बचूँगी नहीं। जरा तिब्बो को बुला लो, प्यार कर लूँ। जी डूबा जाता है। मेरी बच्ची! हाय मेरी बच्ची!!

धिक्कार (2)

ईरान और यूनान में घोर संग्राम हो रहा था। ईरानी दिन–दिन बढ़ते जाते थे और यूनान के लिए संकट का सामना था। देश के सारे व्यवसाय बन्द हो गये थे, हल की मुठिया पर हाथ रखने वाले किसान तलवार की मुठिया पकड़ने के लिए मजबूर हो गये, डंडी तौलने वाले भाले तौलते थे। सारा देश आत्म–रक्षा के लिए तैयार हो गया था। फिर भी शत्रु के कदम दिन–दिन आगे ही बढ़ते आते थे। जिस ईरान को यूनान कई बार कुचल चुका था, वही ईरान आज क्रोध के आवेग की भांति सिर पर चढ़ आता था। मर्द तो रणक्षेत्र में सिर कटा रहे थे और स्त्रियाँ दिन–दिन की निराशाजनक खबरें सुनकर सूखी जाती थीं। क्योंकर लाज की रक्षा होगी? प्राण का भय न था, सम्पत्ति का भय न था, भय था मर्यादा का। विजेता गर्व से मतवाले होकर यूनानी ललनाओं को घूरेंगे, उनके कोमल अंगों को स्पर्श करेंगे, उनको कैद कर ले जायेंगे! उस विपत्ति की कल्पना ही से इन लोगों के रोयें खड़े हो जाते थे।

आखिर जब हालत बहुत नाज़ुक हो गयी तो कितने ही स्त्री–पुरुष मिलकर डेल्फी के मन्दिर में गये और प्रश्न किया — देवी, हमारे ऊपर देवताओं की यह वक्र–दृष्टि क्यों है? हमसे ऐसा कौन–सा अपराध हुआ है? क्या हमने नियमों का पालन नहीं किया, कुरबानियाँ नहीं कीं, व्रत नहीं रखे? फिर देवताओं ने क्यों हमारे सिरों से अपनी रक्षा का हाथ उठा लिया?

पुजारिन ने कहा — देवताओं की असीम कृपा भी देश को द्रोही के हाथ से नहीं बचा सकती। इस देश में अवश्य कोई–न–कोई द्रोही है। जब तक उसका वध न किया जायेगा, देश के सिर से यह संकट न टलेगा।

'देवी, वह द्रोही कौन है?

'जिस घर से रात को गाने की ध्वनि आती हो, जिस घर से दिन को सुगन्ध की लपटें आती हों, जिस पुरुष की आँखों में मद की लाली झलकती हो, वही देश का द्रोही है।'

लोगों ने द्रोही का परिचय पाने के लिए और कितने ही प्रश्न किये; पर देवी ने कोई उत्तर न दिया।

2

यूनानियों ने द्रोही की तलाश करनी शुरू की। किसके घर में से रात को गाने की आवाजें आती हैं। सारे शहर में संध्या होते स्यापा–सा छा जाता था। अगर कहीं आवाजें सुनायी देती थीं तो रोने की; हंसी और गाने की आवाज कहीं न सुनायी देती थी।

दिन को सुगन्ध की लपटें किस घर से आती हैं? लोग जिधर जाते थे, किसे इतनी फुरसत थी कि घर की सफाई करता, घर में सुगंध जलाता; धोबियों का अभाव था अधिकांश लड़ने के लिए चले गये थे, कपड़े तक न धुलते थे; इत्र–फुलेल कौन मलता!

किसकी आँखों में मद की लाली झलकती है? लाल आँखें दिखाई देती थी; लेकिन यह मद की लाली न थी, यह आँसुओं की लाली थी। मदिरा की दुकानों पर खाक उड़ रही थी। इस जीवन ओर मृत्यु के संग्राम में विलास की किसे सूझती! लोगों ने सारा शहर छान मारा लेकिन एक भी आँख ऐसी नजर न आयी जो मद से लाल हो।

कई दिन गुजर गये। शहर में पल–पल पर रणक्षेत्र से भयानक खबरें आती थीं और लोगों के प्राण सूख जाते थे।

आधी रात का समय था। शहर में अंधकार छाया हुआ था, मानो श्मशान हो। किसी की सूरत न दिखाई देती थी। जिन नाट्यशालाओं में तिल रखने की जगह न मिलती थी, वहाँ सियार बोल रहे थे। जिन बाजारों में मनचले जवान अस्त्र–शस्त्र सजायें ऐंठते फिरते थे, वहाँ उल्लू बोल रहे थे। मंदिरों में न गाना होता था न बजाना। प्रासादों में अंधकार छाया हुआ था। एक बूढ़ा यूनानी जिसका इकलौता लड़का लड़ाई के मैदान में था, घर से निकला और न–जाने किन विचारों की तरंग में देवी के मन्दिर की ओर चला। रास्ते में कहीं प्रकाश न था, कदम–कदम पर ठोकरें खाता था; पर आगे बढ़ता चला जाता। उसने निश्चय कर लिया कि या तो आज देवी से विजय का वरदान लूँगा या उनके चरणों पर अपने को भेंट कर दूँगा।

3

सहसा वह चौंक पड़ा। देवी का मन्दिर आ गया था। और उसके पीछे की ओर किसी घर से मधुर संगीत की ध्वनि आ रही थी। उसको आश्चर्य हुआ। इस निर्जन स्थान में कौन इस वक्त

रंगरेलियाँ मना रहा है। उसके पैरों में पर लग गये, मन्दिर के पिछवाड़े जा पहुँचा।

उसी घर से जिसमें मन्दिर की पुजारिन रहती थी, गाने की आवाजें आती थीं! वृद्ध विस्मित होकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। चिराग तले अंधेरा! देवी के मन्दिर के पिछवाड़े यह अंधेर?

बूढ़े ने द्वार झाँका; एक सजे हुए कमरे में मोमबत्तियाँ झाड़ों में जल रही थीं, साफ-सुथरा फर्श बिछा था और एक आदमी मेज पर बैठा हुआ गा रहा था। मेज पर शराब की बोतल और प्यालियाँ रखी हुई थीं। दो गुलाम मेज के सामने हाथ में भोजन के थाल खड़े थे, जिसमें से मनोहर सुगन्ध की लपटें आ रही थीं।

बूढ़े यूनानी ने चिल्लाकर कहा — यही देशद्रोही है, यही देशद्रोही है!

मन्दिर की दीवारों ने दुहराया — द्रोही है!

बगीचे की तरफ से आवाज आयी — द्रोही है!

मन्दिर की पुजारिन ने घर में से सिर निकालकर कहा — हाँ, द्रोही है!

यह देशद्रोही उसी पुजारिन का बेटा पासोनियस था। देश में रक्षा के जो उपाय सोचे जाते, शत्रुओं का दमन करने के लिए जो

निश्चय किय जाते, उनकी सूचना यह ईरानियों को दे दिया करता था। सेनाओं की प्रत्येक गति की खबर ईरानियों को मिल जाती थी और उन प्रयत्नों को विफल बनाने के लिए वे पहले से तैयार हो जाते थे। यही कारण था कि यूनानियों को जान लड़ा देने पर भी विजय न होती थी। इस देश-द्रोह के पुरस्कार में पासोनियस को मुहरों की थैलियाँ मिल जाती थी। इसी कपट से कमाये हुये धन से वह भोग–विलास करता था। उस समय जब कि देश में घोर संकट पड़ा हुआ था, उसने अपने स्वदेश को अपनी वासनाओं के लिए बेच दिया। अपने विलास के सिवा और किसी बात की चिंता न थी, कोई मरे या जिये, देश रहे या जाये, उसकी बला से। केवल अपने कुटिल स्वार्थ के लिए देश की गरदन में गुलामी की बेड़ियाँ डलवाने पर तैयार था। पुजारिन अपने बेटे के दुराचरण से अनभिज्ञ थी। वह अपनी अंधेरी कोठरी से बहुत कम निकलती, वहीं बैठी जप–तप किया करती थी। परलोक–चिंतन में उसे इहलोक की खबर न थी, मनेन्द्रियों ने बाहर की चेतना को शून्य–सा कर दिया था। वह इस समय भी कोठरी के द्वार बन्द किये, देवी से अपने देश के कल्याण के लिए वन्दना कर रही थी कि सहसा उसके कानों में आवाज आयी — यही द्रोही है, यही द्रोही है!

उसने तुरन्त द्वार खोलकर बाहर की ओर झाँका, पासोनियम के कमरे से प्रकाश की रेखाएँ निकल रही थीं और उन्हीं रेखाओं पर संगीत की लहरें नाच रही थीं। उसके पैर–तले से जमीन–सी निकल गयी, कलेजा धक्–से हो गया। ईश्वर! क्या मेरा बेटा देशद्रोही है? आप–ही–आप, किसी अंतःप्रेरणा से पराभूत होकर वह चिल्ला उठी — हाँ, यही देशद्रोही है!

4

यूनानी स्त्री–पुरूषों के झुंड–के–झुंड उमड़ पड़े और पासोनियस के द्वार पर खड़े होकर चिल्लाने लगे — यही देशद्राही है!

पासोनियस के कमरे की रोशनी ठंडी हो गयी, संगीत भी बन्द था; लेकिन द्वार पर प्रतिक्षण नगरवासियों का समूह बढ़ता जाता था और रह–रह कर सहस्रों कंठो से ध्वनि निकलती थी — यही देशद्रोही है!

लोगों ने मशालें जलायी और अपने लाठी–डंडे संभाल कर मकान में घुस पड़े। कोई कहता था — सिर उतार लो। कोई कहता था — देवी के चरणों पर बलिदान कर दो। कुछ लोग उसे कोठे से नीचे गिरा देने पर आग्रह कर रहे थे।

पासोनियस समझ गया कि अब मुसीबत की घडी सिर पर आ गयी। तुरन्त जीने से उतरकर नीचे की ओर भागा। और कहीं शरण की आशा न देखकर देवी के मन्दिर में जा घुसा।

अब क्या किया जाये? देवी की शरण जाने वाले को अभय–दान मिल जाता था। परम्परा से यही प्रथा थी? मन्दिर में किसी की हत्या करना महापाप था।

लेकिन देशद्रोही को इसने सस्ते कौन छोड़ता? भाँति–भाँति के प्रस्ताव होने लगे — 'सूअर का हाथ पकड़कर बाहर खींच लो।'

'ऐसे देशद्रोही का वध करने के लिए देवी हमें क्षमा कर देंगी।'

'देवी, आप उसे क्यों नहीं निगल जाती?'

'पत्थरों से मारों, पत्थरों से; आप निकलकर भागेगा।'

'निकलता क्यों नहीं रे कायर! वहाँ क्या मुँह में कालिख लगाकर बैठा हुआ है?'

रात भर यही शोर मचा रहा और पासोनियस न निकला। आखिर यह निश्चय हुआ कि मन्दिर की छत खोदकर फेंक दी जाये और पासोनियस दोपहर की धूप और रात की कड़ाके की सरदी में आप ही आप अकड़ जाये। बस फिर क्या था। आन की आन में लोगों ने मन्दिर की छत और कलस ढा दिये।

अभागा पासोनियस दिन–भर तेज धूप में खड़ा रहा। उसे जोर की प्यास लगी; लेकिन पानी कहाँ? भूख लगी, पर खाना कहाँ? सारी जमीन तवे की भाँति जलने लगी; लेकिन छाँह कहाँ? इतना कष्ट उसे जीवन भर में न हुआ था। मछली की भांति तड़पता था ओर चिल्ला–चिल्लाकर लोगों को पुकारता था; मगर वहाँ कोई उसकी पुकार सुनने वाला न था। बार–बार कसमें खाता था कि अब फिर मुझसे ऐसा अपराध न होगा; लेकिन कोई उसके निकट न आता था। बार–बार चाहता था कि दीवार से टकरा कर प्राण दे दे; लेकिन यह आशा रोक देती थी कि शायद लोगों को मुझ पर दया आ जाये। वह पागलों की तरह जोर–जोर से कहने लगा — मुझे मार डालो, मार डालो, एक क्षण में प्राण ले लो, इस भाँति जला–जला कर न मारो। ओ हत्यारों, तुमको जरा भी दया नहीं।

दिन बीता और रात — भयंकर रात — आयी। ऊपर तारागण चमक रहे थे मानो उसकी विपत्ति पर हंस रहे हों। ज्यों–ज्यों रात बीतती थी देवी विकराल रूप धारण करती जाती थी। कभी वह उसकी ओर मुँह खोलकर लपकती, कभी उसे जलती हुई आँखो से देखती। उधर क्षण–क्षण सरदी बढती जाती थी, पासोनियस के हाथ–पाँव अकड़ने लगे, कलेजा काँपने लगा। घुटनों में सिर रखकर बैठ गया और अपनी किस्मत को रोने लगा। कुरते की खींचकर कभी पैरों को छिपाता, कभी हाथों को, यहाँ तक कि इस

खींचातानी में कुरता भी फट गया। आधी रात जाते–जाते बर्फ गिरने लगी। दोपहर को उसने सोचा गरमी ही सबसे कष्टदायक है। ठंड के सामने उसे गरमी की तकलीफ भूल गयी। आखिर शरीर में गरमी लाने के लिए एक हिमकत सूझी। वह मन्दिर में इधर–उधर दौड़ने लगा। लेकिन विलासी जीव था, जरा देर में हाँफ कर गिर पड़ा।

5

प्रातःकाल लोगों ने किवाड़ खोले तो पासोनियस को भूमि पर पड़े देखा। मालूम होता था, उसका शरीर अकड़ गया है। बहुत चीखने–चिल्लाने पर उसने आँखें खोली; पर जगह से हिल न सका। कितनी दयनीय दशा थी, किंतु किसी को उस पर दया न आयी। यूनान में देशद्रोह सबसे बड़ा अपराध था और द्रोही के लिए कहीं क्षमा न थी, कहीं दया न थी।

एक — अभी मरा है?

दूसरा — द्रोहियों को मौत नहीं आती!

तीसरा — पडा रहने दो, मर जायेगा!

चौथा — मक्र किये हुए है?

पाँचवा — अपने किये की सजा पा चुका है, अब छोड़ देना चाहिए!

सहसा पासोनियस उठ बैठा और उद्दण्ड भाव से बोला — कौन कहता है कि इसे छोड़ देना चाहिए! नहीं, मुझे मत छोडना, वरना पछताओगे! मैं स्वार्थी दूँ; विषय–भोगी हूँ, मुझ पर भूलकर भी विश्वास न करना। आह! मेरे कारण तुम लोगों को क्या–क्या झेलना पडा, इसे सोचकर मेरा जी चाहता है कि अपनी इन्द्रियों को जलाकर भस्म कर दूँ। मैं अगर सौ जन्म लेकर इस पाप का प्रायश्चित करूँ, तो भी मेरा उद्धार न होगा। तुम भूलकर भी मेरा विश्वास न करो। मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं। विलास के प्रेमी सत्य का पालन नहीं कर सकते। मैं अब भी आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ, मुझे ऐसे–ऐसे गुप्त रहस्य मालूम हैं, जिन्हें जानकर आप ईरानियों का संहार कर सकते है; लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है और आपसे भी यह कहता हूँ कि मुझ पर विश्वास न कीजिए। आज रात को देवी की मैंने सच्चे दिल से वंदना की है और उन्होनें मुझे ऐसे यंत्र बताये हैं, जिनसे हम शत्रुओं को परास्त कर सकते हैं, ईरानियों के बढते हुए दल को आज भी आन की आन में उड़ा सकते है। लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैं यहाँ से बाहर निकल कर इन बातों

को भूल जाऊँगा। बहुत संशय हैं, कि फिर ईरानियों की गुप्त सहायता करने लगूँ। इसलिए मुझ पर विश्वास न कीजिए।

एक यूनानी — देखो-देखो क्या कहता है?

दूसरा — सच्चा आदमी मालूम होता है।

तीसरा — अपने अपराधों को आप स्वीकार कर रहा है।

चौथा — इसे क्षमा कर देना चाहिए और यह सब बातें पूछ लेनी चाहिए।

पाँचवा — देखो, यह नहीं कहता कि मुझे छोड़ दो। हमको बार-बार याद दिलाता जाता है कि मुझ पर विश्वास न करो!

छठा — रात भर के कष्ट ने होश ठंडे कर दिये, अब आँखें खुली है।

पासोनियस — क्या तुम लोग मुझे छोड़ने की बातचीत कर रहे हो? मैं फिर कहता हूँ, मैं विश्वास के योग्य नहीं हूँ। मैं द्रोही हूँ। मुझे ईरानियों के बहुत-से भेद मालूम हैं, एक बार उनकी सेना में पहुँच जाऊँ तो उनका मित्र बनकर सर्वनाश कर दूँ, पर मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है।

एक यूनानी — धोखेबाज इतनी सच्ची बात नहीं कह सकता!

दूसरा — पहले स्वार्थान्ध हो गया था; पर अब आँखें खुली हैं!

तीसरा — देशद्रोही से भी अपने मतलब की बातें मालूम कर लेने में कोई हानि नहीं है। अगर वह अपने वचन पूरे करे तो हमें इसे छोड़ देना चाहिए।

चौथा — देवी की प्रेरणा से इसकी कायापलट हुई है।

पाँचवाँ — पापियों में भी आत्मा का प्रकाश रहता है और कष्ट पाकर जाग्रत हो जाता है। यह समझना कि जिसने एक बार पाप किया, वह फिर कभी पुण्य कर ही नहीं सकता, मान–चरित्र के एक प्रधान तत्व का अपवाद करना है।

छठा — हम इसको यहाँ से गाते–बजाते ले चलेंगे।

जन–समूह को चकमा देना कितना आसान है। जन-सत्तावाद का सबसे निर्बल अंग यही है। जनता तो नेक और बद की तमीज नहीं रखती। उस पर धूर्तों, रंगे–सियारों का जादू आसानी से चल जाता है। अभी एक दिन पहले जिस पासोनियस की गरदन पर तलवार चलायी जा रही थी, उसी को जलूस के साथ मन्दिर से निकालने की तैयारियाँ होने लगीं, क्योंकि वह धूर्त था और जानता था कि जनता की कील क्योंकर घुमायी जा सकती है।

एक स्त्री — गाने–बजाने वालों को बुलाओ, पासोनियस शरीफ है।

दूसरी — हाँ–हाँ, पहले चलकर उससे क्षमा माँगो, हमने उसके साथ जरूरत से ज्यादा सख्ती की।

पासोनियस — आप लोगों ने पूछा होता तो मैं कल ही कल ही सारी बातें आपको बता देता, तब आपको मालूम होता कि मुझे मार डालना उचित है या जीता रखना।

कई स्त्री–पुरूष — हाय–हाय हमसे बड़ी भूल हुई। हमारे सच्चे पासोनियस!

सहसा एक वृद्धा स्त्री किसी तरफ से दौड़ती हुई आयी और मन्दिर के सबसे ऊँचे जीने पर खड़ी होकर बोली — तुम लोगों को क्या हो गया है? यूनान के बेटे आज इतने ज्ञानशून्य हो गये हैं कि झूठे और सच्चे में विवेक नहीं कर सकते? तुम पासोनियस पर विश्वास करते हो? जिस पासोनियस ने सैकड़ों स्त्रियों और बालकों को अनाथ कर दिया, सैकडों घरों में कोई दिया जलाने वाला न छोड़ा, हमारे देवताओं का, हमारे पुरूषों का, घोर अपमान किया, उसकी दो–चार चिकनी–चुपड़ी बातों पर तुम इतने फूल उठे। याद रखो, अब की पासोनियस बाहर निकला तो फिर तुम्हारी कुशल नही। यूनान पर ईरान का राज्य होगा और यूनानी ललनाएँ ईरानियों की कुदृष्टि का शिकार बनेंगी। देवी की आज्ञा है कि पासोनियस फिर बाहर न निकलने पाये। अगर तुम्हें

अपना देश प्यारा है, अपनी माताओं और बहनों की आबरू प्यारी है तो मन्दिर के द्वार को चुन दो जिससे देशद्रोही को फिर बाहर न निकलने और तुम लोगों को बहकाने का मौका न मिले। यह देखो, पहला पत्थर मैं अपने हाथों से रखती हूँ। लोगों ने विस्मित होकर देखा — यह मन्दिर की पुजारिन और पासोनियस की माता थी। दम के दम में पत्थरों के ढेर लग गये और मन्दिर का द्वार चुन दिया गया। पासोनियस भीतर दाँत पीसता रह गया।

वीर माता, तुम्हें धन्य है! ऐसी ही माता से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देश-हित के सामने मातृ-स्नेह की धूल-बराबर परवाह नहीं करतीं! उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता।

लैला

यह कोई न जानता था कि लैला कौन है, कहाँ है, कहाँ से आयी है और क्या करती है। एक दिन लोगों ने एक अनुपम सुंदरी को तेहरान के चौक में अपने डफ पर हाफिज की एक गजल झूम–झूम कर गाते सुना —

रसीद मुजरा कि ऐयामे गम न ख्वाहद माँद,
चुनाँ न माँद, चुनी नीज हम न ख्वाहद माँद।

और सारा तेहरान उस पर फिदा हो गया। यही लैला थी।

लैला के रुप–लालित्य की कल्पना करनी हो तो ऊषा की प्रफुल्ल लालिमा की कल्पना कीजिए, जब नील गगन, स्वर्ण–प्रकाश से रंजित हो जाता है, बहार की कल्पना कीजिए, जब बाग में रंग–रंग के फूल खिलते हैं और बुलबुलें गाती हैं।

लैला के स्वर–लालित्य की कल्पना करनी हो, तो उस घंटी की अनवरत ध्वनि की कल्पना कीजिए जो निशा की निस्तब्धता में ऊँटों की गरदनों में बजती हुई सुनायी देती हैं, या उस बांसुरी की

ध्वनि की जो मध्याह्न की आलस्यमयी शांति में किसी वृक्ष की छाया में लेटे हुए चरवाहे के मुख से निकलती है।

जिस वक्त लैला मस्त होकर गाती थी, उसके मुख पर एक स्वर्गीय आभा झलकने लगती थी। वह काव्य, संगीत सौरभ और सुषमा की एक मनोहर प्रतिमा थी, जिसके सामने छोटे और बड़े, अमीर और गरीब सभी के सिर झुक जाते थे। सभी मंत्रमुग्ध हो जाते थे, सभी सिर धुनते थे। वह उस आनेवाले समय का संदेश सुनाती थी, जब देश में संतोष और प्रेम का साम्राज्य होगा, जब द्वन्द्व और संग्राम का अन्त हो जायगा। वह राजा को जगाती और कहती, यह विलासिता कब तक, ऐश्वर्य-भोग कब तक? वह प्रजा की सोयी हुई अभिलाषाओं को जगाती, उनकी हृत्तन्त्रियों को अपने स्वर से कम्पित कर देती। वह उन अमर वीरों की कीर्ति सुनाती जो दीनों की पुकार सुनकर विकल हो जाते थे, उन विदुषियों की महिमा गाती जो कुल-मर्यादा पर मर मिटी थीं। उसकी अनुरक्त ध्वनि सुन कर लोग दिलों को थाम लेते थे, तड़प जाते थे।

सारा तेहरान लैला पर फिदा था। दलितों के लिए वह आशा की दीपक थी, रसिकों के लिए जन्नत की हूर, धनियों के लिए आत्मा की जाग्रति और सत्ताधारियों के लिए दया और धर्म का संदेश। उसकी भौहों के इशारे पर जनता आग में कूद सकती थी। जैसे

चैतन्य जड़ को आकर्षित कर लेता है, उसी भांति लैला ने जनता को आकर्षित कर लिया था।

और यह अनुपम सौंदर्य सुविधा की भांति पवित्र, हिम के समान निष्कलंक और नव कुसुम की भांति अनिंद्य था। उसके लिए प्रेम कटाक्ष, एक भेदभरी मुस्कान, एक रसीली अदा पर क्या न हो जाता—कंचन के पर्वत खड़े हो जाते, ऐश्वर्य उपासना करता, रियासतें पैर की धूल चाटतीं, कवि कट जाते, विद्वान घुटने टेकते; लेकिन लैला किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखती थी। वह एक वृक्ष की छांह में रहती भिक्षा माँग कर खाती और अपनी हृदयवीणा के राग अलापती थी। वह कवि की सूक्ति की भांति केवल आनन्द और प्रकाश की वस्तु थी, भोग की नहीं। वह ऋषियों के आशीर्वाद की प्रतिमा थी, कल्याण में डूबी हुई, शांति में रंगी हुई, कोई उसे स्पर्श न कर सकता था, उसे मोल न ले सकता था।

2

एक दिन संध्या समय तेहरान का शहजादा नादिर घोड़े पर सवार उधर से निकला। लैला गा रही थी। नादिर ने घोड़े की बाग

रोक ली और देर तक आत्म–विस्मृत की दशा में खड़ा सुनता रहा। गजल का पहला शेर यह था—

मरा दर्देस्त अंदर दिल, गोयम जवां सोजद,
बगैर दम दरकशम, तरसन कि मगजी ईस्तख्वां सोजद।

फिर वह घोड़े से उतर कर वहीं जमीन पर बैठ गया और सिर झुकाये रोता रहा। तब वह उठा और लैला के पास जाकर उसके कदमों पर सिर रख दिया। लोग अदब से इधर–उधर हट गये।

लैला ने पूछा — तुम कौन हो?

नादिर — तुम्हारा गुलाम।

लैला — मुझसे क्या चाहते हो?

नादिर —आपकी खिदमत करने का हुक्म। मेरे झोंपड़े को अपने कदमों से रोशन कीजिए।

लैला — यह मेरी आदत नहीं!

शहजादा फिर वहीं बैठ गया और लैला फिर गाने लगी। लेकिन गला थर्राने लगा, मानो वीणा का कोई तार टूट गया हो। उसने नादिर की ओर करुण नेत्रों से देख कर कहा — तुम यहाँ मत बैठो।

कई आदमियों ने कहा — लैला, हमारे हुजूर शहजादा नादिर हैं।

लैला बेपरवाही से बोली — बड़ी खुशी की बात है। लेकिन यहाँ शहजादों का क्या काम? उनके लिए महल है, महफिलें हैं और शराब के दौर हैं। मैं उनके लिए गाती हूँ, जिनके दिल में दर्द है, उनके लिए नहीं जिनके दिल में शौक है।

शहजादा ने उन्मत्त भाव से कहा—लैला, तुम्हारी एक तान पर अपना सब-कुछ निसार कर सकता हूँ। मैं शौक का गुलाम था, लेकिन तुमने दर्द का मजा चखा दिया।

लैला फिर गाने लगी, लेकिन आवाज काबू में न थी, मानो वह उसका गला ही न था।

लैला ने डफ कंधे पर रख लिया और अपने डेरे की ओर चली। श्रोता अपने-अपने घर चले। कुछ लोग उसके पीछे-पीछे उस वृक्ष तक आये, जहाँ वह विश्राम करती थी। जब वह अपनी झोंपड़ी के द्वार पर पहुंची, तब सभी आदमी विदा हो चुके थे। केवल एक आदमी झोपड़ी से कई हाथ पर चुपचाप खड़ा था।

लैला ने पूछा — तुम कौन हो?

नादिर ने कहा — तुम्हारा गुलाम नादिर।

लैला — तुम्हें मालूम नहीं कि मैं अपने अमन के गोशे में किसी को नहीं आने देती?

नादिर — यह तो देख ही रहा हूँ।

लैला —फिर क्यों बैठे हो?

नादिर — उम्मीद दामन पकड़े हुए हैं।

लैला ने कुछ देर के बाद फिर पूछा — कुछ खाकर आये हो?

नादिर — अब तो न भूख है ना प्यास

लैला — आओ, आज तुम्हें गरीबों का खाना खिलाऊँ, इसका मजा भी चखा लो।

नादिर इनकार न कर सका। आज उसे बाजरे की रोटियों में अभूत-पूर्व स्वाद मिला। वह सोच रहा था कि विश्व के इस विशाल भवन में कितना आनन्द है। उसे अपनी आत्मा में विकास का अनुभव हो रहा था।

जब वह खा चुका तब लैला ने कहा — अब जाओ। आधी रात से ज्यादा गुजर गयी।

नादिर ने आँखो में आँसू भर कर कहा — नहीं लैला, अब मेरा आसन भी यहीं जमेगा।

नादिर दिन–भर लैला के नगमे सुनता गलियों में, सड़को पर जहाँ वह जाती उसके पीछे पीछे घूमता रहता। रात को उसी पेड़ के नीचे जा कर पड़ा रहता। बादशाह ने समझाया मलका ने समझाया उमर ने मिन्नतें की, लेकिन नादिर के सिर से लैला का सौदा न गया जिन हालों लैला रहती थी उन हालों वह भी रहता था। मलका उसके लिए अच्छे से अच्छे खाने बनाकर भेजती, लेकिन नादिर उनकी ओर देखता भी न था।

लेकिन लैला के संगीत में जब वह क्षुधा न थी। वह टूटे हुए तारों का राग,था जिसमें न वह लोच था न वह जादू न वह असर। वह अब भी गाती थी सुननेवाले अब भी आते थे। लेकिन अब वह अपना दिल खुश करने को गाती थी और सुननेवाले विह्वल होकर नही, उसको खुश करने के लिए आते थे।

इस तरह छ महीने गुजर गये।

एक दिन लैला गाने न गयी। नादिर ने कहा — क्यों लैला आज गाने न चलोगी?

लैला ने कहा — अब कभी न गाऊँगी। सच कहना, तुम्हें अब भी मेरे गाने में पहले ही का–सा मजा आता है?

नादिर बोला — पहले से कहीं ज्यादा।

लैला — लेकिन और लोग तो अब पंसद नहीं करते।

नादिर — हाँ मुझे इसका ताज्जुब है।

लैला — ताज्जुब की बात नहीं। पहले मेरा दिल खुला हुआ था उसमें सबके लिए जगह थी। वह सबको खुश कर सकता था। उसमें से जो आवाज निकलती थी, वह सबके दिलो में पहुँचती थी। अब तुमने उसका दरवाजा बन्द कर दिया। अब यह दिल तुम्हारे सिवा और किसी के काम का नहीं रहा। चलो, आज तक तुम मेरे गुलाम थे, आज से मैं तुम्हारी लौंडी होती हूँ। चलो, मै तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगी। आज से तुम मेरे मालिक हो। थोड़ी–सी आग ले कर इस झोंपड़ी में लगा दो। इस डफ को उसी में जला दूँगी।

3

तेहरान में घर–घर आनंदोत्सव हो रहा था। आज शहजादा नादिर लैला को ब्याह कर लाया था। बहुत दिनों के बाद उसके दिल की मुराद पुरी हुई थी सारा तेहरान शहजादे पर जान देता था। और उसकी खुशी में शरीक था। बादशाह ने तो अपनी तरफ से मुनादी करवा दी थी कि इस शुभ अवसर पर धन और समय का

अपव्यय न किया जाय, केवल लोग मसजिदों में जमा होकर खुदा से दुआ माँगे कि वह और वधू चिरंजीवी हो और सुख से रहें। लेकिन अपने प्यारे शहजादे की शादी में धन और धन से अधिक मूल्यवान समय का मुँह देखना किसी को गवारा न था। रईसों ने महफिलें सजायी। चिराग जलाये, बाजे बजवाये गरीबों ने अपनी डफलियाँ संभाली और सड़कों पर घूम-घूमकर उछलते कूदते। फिरे।

संध्या के समय शहर के सारे अमीर और रईस शहजादे को बधाई से चमकता और मनोल्लास से खिलता हुआ आकर खड़ा हो गया।

काजी ने अर्ज की — हुजूर पर खुदा की बरकत हो।

हजारों आदमियों ने कहा- आमीन!

शहर की ललनाएँ भी लैला को मुबारकबाद देने आयी। लैला बिल्कुल सादे कपड़े पहने थी। आभूषणों का कहीं नाम न था।

एक महिला ने कहा — आपका सोहाग सदा सलामत रहे।

हजारों कंठों से ध्वनि निकली — आमीन!’

4

कई साल गुजर गये। नादिर अब बादशाह था। और लैला उसकी मलका। ईरान का शासन इतने सुचारु रूप से कभी न हुआ था। दोनों ही प्रजा के हितैषी थे, दोनों ही उसे सुखी और सम्पन्न देखना चाहते थे। प्रेम ने वे सभी कठिनाइयाँ दूर कर दी जो लैला को पहले शंकित करती रहती थी। नादिर राजसत्ता का वकील था, लैला प्रजा–सत्ता की लेकिन व्यावहारिक रुप से उनमें कोई भेद न पड़ता था। कभी यह दब जाता, कभी वह हट जाती। उनका दाम्पत्य जीवन आदर्श था। नादिर लैला का रुख देखता था, लैला नादिर का। काम से अवकाश मिलता तो दोनो बैठ कर गाते बजाते, कभी नदियों को सैर करते कभी किसी वृक्ष की छाँव में बैठे हुए हाफिज की गजलें पढ़ते और झूमते। न लैला में अब उतनी सादगी थी न नादिर में अब उतना तकल्लुफ था। नादिर का लैला पर एकाधिपत्य था जो साधारण बात न थी। जहाँ बादशाहों की महलसरा में बेगमों के मुहल्ले बसते,थे, दरजनों और कौड़ियों से उनकी गणना होती थी वहाँ लैला अकेली थी। उन महलों में अब शफाखाने, मदरसे और पुस्तकालय थे। जहाँ महलसरा का वार्षिक व्यय करोडों तक पहुँचता था, यहाँ अब हजारों से आगे न बढ़ता था। शेष रुपये प्रजा हित के कामों में

खर्च कर दिये जाते,थे। यह सारी कतर-ब्योत लैला ने की थी। बादशाह नादिर था, पर अख्तियार लैला के हाथों में था।

सब कुछ था, किंतु प्रजा संतुष्ट न थी उसका असंतोष दिन दिन बढ़ता जाता था। राजसत्तावादियों को भय था। कि अगर यही हाल रहा तो बादशाहत के मिट जाने में संदेह नहीं। जमशेद का लगाया हुआ वृक्ष जिसने हजारों सदियों से आँधी और तूफान का मुकाबिला किया। अब एक हसीना के नाजुक पर कातिल हाथों जड़ से उखड़ा जा रहा है। उधर प्रजा सत्तावादियों को लैला से जितनी आशाएँ,थी सभी दुराशाएँ सिद्ध हो रही थीं वे कहते अगर ईरान इस चाल से तरक्की के रास्ते पर चलेगा तो इससे पहले कि वह मंजिले मकसूद पर पहुँचे, कयामत आ जायगी। दुनिया हवाई जहाज पर बैठी उड़ी जा रही है। और हम अभी ठेलो पर बैठते भी डरते है कि कहीं इसकी हरकत से दुनिया में भूचाल न आ जाय। दोनो दलों में आये दिन लड़ाइयाँ होती रहती थी। न नादिर के समझाने का असर अमीरों पर होता था, न लैला के समझाने का गरीबों पर। सामंत नादिर के खून के प्यासे हो गये, प्रज्ञा लैला की जानी दुश्मन।

5

राज्य में तो यह अशांति फैली हुई थी, विद्रोह की आग दिलों में सुलग रही थी। और राजभवन में प्रेम का शांतिमय राज्य था, बादशाह और मलका दोनो प्रजा–संतोष की कल्पना में मग्न थे।

रात का समय था। नादिर और लैला आरामगाह में बैठे हुए, शतरंज की बाजी खेल रहे थे। कमरे में कोई सजावट न थी, केवल एक जाजिम बिछी हुई थी।

नादिर ने लैला का हाथ पकड़कर कहा — बस अब यह ज्यादती नहीं, तुम्हारी चाल हो चुंकी। यह देखो, तुम्हारा एक प्यादा पिट गया।

लैला — अच्छा यह शह। आपके सारे पैदल रखे रह गये और बादशाह को शह पड गयी। इसी पर दावा था।

नादिर — तुम्हारे हाथ हारने मे जो मजा है, वह जीतने में नहीं।

लैला — अच्छा, तो गोया आप दिल खुश कर रहे है।' शह बचाइए, नहीं दूसरी चाल में मात होती।

नादिर — (अर्दन देकर) अच्छा अब संभल जाना, तुमने मेरे बादशाह की तौहीन की है। एक बार मेरा फर्जी उठा तो तुम्हारे प्यादों का सफाया कर देगा।

लैला — बसंत की भी खबर है। आपको दो बार छोड़ दिया, अबकी हर्गिज न छोड़ूँगी।

नादिर — अब तक मेरे पास दिलराम (घोड़ा) है, बादशाह को कोई गम नहीं

लैला — अच्छा यह शह? लाइए अपने दिलराम को कहिए! अब तो मात हुई?

नादिर — हाँ जानेमन अब मात हो गयी। जब मैं ही तुम्हारी अदाओं पर निसार हो गया तब मेरा बादशाह कब बच सकता था।

लैला — बातें न बनाइए, चुपके से इस फरमान पर दस्तखत कर दीजिए जैसा आपने वाद किया था।

यह कह कर लैला ने फरमान निकाला जिसे उसने खुद अपने मोती के से अक्षरों से लिखा था। इसमे अन्न का आयात कर घटाकर आधा कर दिया गया, था। लैला प्रजा को भूली न थी, वह अब भी उनकी हित कामना में संलग्न रहती थी। नादिर ने इस

शर्त पर फरमान पर दस्तखत करने का वचन दिया था कि लैला उसे शतरंज में तीन बार मात करे। वह सिद्धहस्त खिलाड़ी था इसे लैला जानती थी, पर यह शतरंज की बाजी न थी, केवल विनोद था। नादिर ने मुस्कराते हुए फरमान पर हस्ताक्षर कर दिये कलम के एक एक चिन्ह से प्रजा की पाँच करोड़ वार्षिक दर से मुक्ति हो गयी। लैला का मुख गर्व से आरक्त हो गया। जो काम बरसों के आन्दोलन से न हो सकता था, वह प्रेम कटाक्षों से कुछ ही दिनों में पूरा हो गया।

यह सोचकर वह फूली न समाती थी कि जिस वक्त वह फरमान सरकारी पत्रों में प्रकाशित हो जायेगा। और व्यवस्थापिका सभा के लोगो को इसके दर्शन होंगें, उस वक्त प्रजावादियों को कितना आनन्द होगा। लोग मेरा यश गायेंगे और मुझे आशीर्वाद देगे।

नादिर प्रेम मुग्ध होकर उसके चंद्रमुख की ओर देख रहा था, मानो उसका वश होता तो सौन्दर्य की इस प्रतिमा को हृदय में बिठा लेता।

सहसा राज्य—भवन के द्वार पर शोर मचने लगा। एक क्षण में मालूम हुआ कि जनता का टीडी दल; अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित राजद्वार पर खड़ा दीवारों को तोड़ने की चेष्टा कर रहा है। प्रतिक्षण शोर बढ़ता जाता था और ऐसी आशंका होती थी कि क्रोधोन्मत्त जनता द्वारों को तोड़कर भीतर घुस आयेगी। फिर ऐसा मालूम हुआ कि कुछ लोग सीढ़ियाँ लगाकर दीवार पर चढ़ रहे है। लैला लज्जा और ग्लानि से सिर झुकाये खड़ी थी उसके मुख से एक शब्द भी न निकलता था। क्या यही वह जनता है, जिनके कष्टों की कथा कहते हुए उसकी वाणी उन्मत्त हो जाती थी? यही वह अशक्त, दलित क्षुधा पीड़ित अत्याचार की वेदा से तड़पती हुई जनता है जिस पर वह अपने को अर्पण कर चुकी थी।

नादिर भी मौन खड़ा था; लेकिन लज्जा से नही, क्रोध से। उसका मुख तमतमा उठा था, आँखो से चिनगारियाँ निकल रही थी बार बार ओठ चबाता और तलवार के कब्जे पर हाथ रखकर रह जाता था। वह बार बार लैला की ओर संतप्त नेत्रों से देखता था। जरा इशारे की देर थी। उसका हुक्म पाते ही उसकी सेना इस विद्रोही दल को यों भगा देगी जैसे आँधी पतों को उड़ा देती है, पर लैला से आँखें न मिलती थी।

आखिर वह अधीर होकर बोला — लैला, मै राज–सेना को बुलाना चाहता हूँ क्या कहती हो?

लैला ने दीनता–पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा — जरा ठहर जाइए पहले इन लोगो से पूछिए कि चाहते क्या है।

आदेश पाते ही नादिर छत पर चढ़ गया, लैला भी उसके पीछे पीछे ऊपर आ पहुँची। दोनों अब जनता के सम्मुख आकर खड़े हो गये। मशालों के प्रकाश में लोगों न इन दोनों को छत पर खड़े देखा मानो आकाश से देवता उतर आयें हों, सहस्रों से ध्वनि निकली — वह खड़ी है लैला वह खड़ी! यह वह जनता थी जो लैला के मधुर संगीत पर मस्त हो जाया करती थी।

नादिर ने उच्च स्वर से विद्रोहियों को सम्बोधित किया — ऐ ईरान की बदनसीब रिआया। तुमने शाही महल को क्यो घेर रखा है? क्यों बगावत का झंडा खड़ा किया है? क्या तुमको मेरा और अपने खुदा का बिल्कुल खौफ नहीं? क्या तुम नहीं जानतें कि मै अपनी आँखों के एक इशारे से तुम्हारी हस्ती खाक में मिला सकता हूँ? मै तुम्हें हुक्म देता हुं कि एक लम्हे के अन्दर यहाँ से चलो जाओं वरना कलामे–पाक की कसम, मै तुम्हारे खून की नदी बहा दूँगा।

एक आदमी ने, जो विद्रोहियों का नेता मालूम होता था, सामने आकर कहा — हम उस वक्त तक न जायेंगे, जब तक शाही महल लैला से खाली न हो जायेगा।

नादिर ने बिगड़कर कहा — ओ नाशुक्रो, खुदा से डरो! तुम्हें अपनी मलका की शान में ऐसी बेअदबी करते हुए शर्म नही आती!' जब से लैला तुम्हारी मलका हुई है, उसने तुम्हारे साथ कितनी रियायतें की है। क्या उन्हें तुम बिलकुल भूल गये? जालिमों वह मलका है, पर वही खाना खाती है जो तुम कुत्तों को खिला देते हो, वही कपड़े पहनती है, जो तुम फकीरों को दे देते हो। आकर महलसरा में देखो तुम इसे अपने झोंपड़ों ही की तरह तकल्लुफ और सजावट से खाली पाओगे। लैला तुम्हारी मलका होकर भी फकीरों की जिंदगी बसर करती है, तुम्हारी खिदमत में हमेशा मस्त रहती है। तुम्हें उसके कदमों की खाक माथे पर लगानी चाहिए आँखों का सुरमा बनाना चाहिए। ईरान के तख्त पर कभी ऐसी गरीबों पर जान देने वाली उनके दर्द में शरीक होनेवाली गरीबों पर अपने को निसार करने वाली मलका ने कदम नही रखे और उसकी शान में तुम ऐसी बेहूदा बातें करते हो।'
अफसोस मुझे मालूम हो गया कि तुम जाहिल इन्सानियत से खाली और कमीने हो। तुम इसी काबिल हो कि तुम्हारी गरदनें कुन्द छुरी से काटी जायें तुम्हें पैरो तले रौंदा जाये...

नादिर बात भी पूरी न कर पाया था कि विद्रोहियों ने एक स्वर से चिल्लाकर कहा — लैला हमारी दुश्मन है, हम उसे अपनी मलका की सूरत में नही देख सकते।

नादिर ने जोर से चिल्लाकर कहा — जालिमों, जरा खामोश हो जाओं, यह देखो वह फरमान है जिस पर लैला ने अभी अभी मुझसे जबरदस्ती दस्तखत कराये है। आज से गल्ले का महसूल घटाकर आधा कर दिया गया है और तुम्हारे सिर से महसूल का बोझ पाँच करोड़ कम हो गया है।

हजारों आदमियों ने शोर मचाया — यह महसूल बहुत पहले बिलकुल माफ हो जाना चाहिए था। हम एक कौड़ी नही दे सकते। लैला, लैला हम उसे अपनी मलका की सूरत में नही देख सकते।

अब बादशाह क्रोध से काँपने लगा। लैला ने सजल नेत्र होकर कहा — अगर रिआया की यही मरजी है कि मैं फिर डफ बजा-बजा कर गाती फिरूँ तो मुझे उज्र नहीं, मुझे यकीन है कि मै अपने गाने से एक बार फिर इनके दिल पर हुकूमत कर सकती हूँ।

नादिर ने उत्तेजित होकर कहा — लैला, मैं रिआया की तुनुक मिजाजियों का गुलाम नहीं। इससे पहले कि मै तुम्हें अपने पहलू

से जूदा करूँ तेहरान की गलियाँ खून से लाल हो जायेगी। मै इन बदमाशों को इनकी शरारत का मजा चखाता हूँ।

नादिर ने मीनार पर चढ़कर खतरे का घंटा बजाया। सारे तेहरान मे उसकी आवाज गूँज उठी, शाही फौज का एक आदमी नजर न आया।

नादिर ने दोबारा घंटा बजाया, आकाश मंडल उसकी झंकार से कम्पित हो गया। तारागण कांप उठे; पर एक भी सैनिक न निकला।

नादिर ने तीसरी बार घंटा बजाया पर उसका भी उत्तर केवल एक क्षीण प्रतिध्वनि ने दिया मानो किसी मरने वाले की अंतिम प्रार्थना के शब्द हों।

नादिर ने माथा पीट लिया। समझ गया कि बुरे दिन आ गये। अब भी लैला को जनता के दुराग्रह पर बलिदान करके वह अपनी राजसत्ता की रक्षा कर सकता था, पर लैला उसे प्राणों से प्रिय थी उसने छत पर आकर लैला का हाथ पकड लिया और उसे लिये हुए सदर फाटक से निकला विद्रोहियों ने एक विजय ध्वनि के साथ उनका स्वागत किया, पर सब के सब किसी गुप्त प्रेरणा के वश रास्ते से हट गये।

दोनों चुपचाप तेहरान की गलियों में होते हुए चले जाते, थे। चारों ओर अंधकार था। दुकानें बन्द थी बाजारों में सन्नाटा छाया हुआ था। कोई घर से बाहर न निकलता था। फकीरों ने भी मसजिदों में पनाह ले ली थी पर इन दोनो प्राणियों के लिए कोई आश्रय न था। नादिर की कमर में तलवार थी, लैला के हाथ में डफ था उनके विशाल ऐश्वर्य का विलुप्त चिह्न था।

7

पूरा साल गुजर गया। लैला और नादिर देश–विदेश की खाक छानते फिरते थे। समरकंद और बुखारा, बगदाद और हलब, काहिरा और अदन, ये सारे देश उन्होंने छान डाले। लैला की डफ फिर जादू करने मेला लगी उसकी आवाज सुनते ही शहर में हलचल मच जाती, आदमियों का मेला लग जाता आवभगत होने लगती; लेकिन ये दोनो यात्री कहीं एक दिन से अधिक न ठहरते थे। न किसी से कुछ माँगते न किसी के द्वार पर जाते। केवल रुखा–सूखा भोजन कर लेते और कभी किसी वृक्ष के नीचे कभी पर्वत की गुफा में और कभी सड़क के किनारे रात काट देते थे। संसार के कठोर व्यवहार ने उन्हें विरक्त हर दिया था, उसके

प्रलोभन से कोसों दूर भागते थे। उन्हे अनुभव हो गया था कि यहाँ जिसके लिए प्राण अर्पण कर दो वहीं, अपना शत्रु हो जाता है, जिसके साथ भलाई करो, वही बुराई की कमर बाँधता है, यहाँ किसी से दिल न लगाना चाहिए। उसके पास बड़े–बड़े रईसों के निमंत्रण आते उन्हे एक दिन अपना मेहमान बनाने के लिए हजारों मिन्नतें करते; पर लैला किसी की न सुनती। नादिर को अब तक कभी कभी बादशाहत की सनक सवार हो जाती थी। वह चाहता था कि गुप्त रुप से शक्ति संग्रह करके तेहरान पर चढ़ जाऊँ और बागियों को परास्त करके अखंड राज्य करूँ; पर लैला की उदासीनता देखकर उसे किसी से मिलने जुलने का साहस न होता था। लैला उसकी प्राणेश्वरी थी वह उसी के इशारों पर चलता था।

उधर ईरान में भी अराजकता फैली हुई थी। जनसत्ता से तंग आकर रईसों ने भी फौजें जमा कर ली थी और दोनों दलों मे आये दिन संग्राम होता रहता था। पूरा साल गुजर गया और खेत न जुते देश में भीषण अकाल पड़ा हुआ था,व्यापार शिथिल था, खजाना खाली। दिन–दिन जनता की शक्ति घटती जाती थी और रईसों को जोर बढ़ता जाता था। आखिर यहाँ तक नौबत पहुँची कि जनता ने हथियार डाल दिये और रईसों ने राजभवन पर अपना अधिकार जमा लिया।। प्रजा के नेताओं को फांसी दे दी

गयी, कितने ही कैद कर दिये गये और जनसत्ता का अन्त हो गया। शक्तिवादियों को अब नादिर की याद आयी। यह बात अनुभव से सिद्ध हो गयी थी कि देश में प्रजातंत्र स्थापित करने की क्षमता का अभाव है। प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की जरुरत न थी। इस अवसर पर राजसत्ता ही देश का उद्धार कर सकती थी। वह भी मानी हुई बात थी कि लैला और नादिर को जनमत से विशेष प्रेम न होगा। वे सिंहासन पर बैठकर भी रईसों ही के हाथ में कठपुतली बने रहेगें और रईसों को प्रजा पर मनमाने अत्याचार करने का अवसर मिलेगा। अतएव आपस में लोगों ने सलाह की और प्रतिनिधि नादिर को मना लाने के लिये रवाना हुए।

8

संध्या का समय था। लैला और नादिर दमिश्क में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। आकाश पर लालिमा छायी हुई थी। और उससे मिली हुई पर्वत मालाओं की श्याम रेखा ऐसी मालूम हो रही थी मानो कमल–दल मुरझा गया हो। लैला उल्लसित नेत्रों से प्रकृति की यह शोभा देख रही थी। नादिर मलिन और चिंतित

भाव से लेटा हुआ सामने के सुदूर प्रांत की ओर तृषित नेत्रों से देख रहा था, मानो इस जीवन से तंग आ गया है।

सहसा बहुत दूर गर्द उड़ती हुई दिखाई दी और एक क्षण में ऐसा मालूम हुआ कि कुछ आदमी घोड़ों पर सवार चले आ रहे है। नादिर उठ बैठा और गौर से देखने लगा कि ये कौन आदमी है। अकस्मात् वह उठकर खड़ा हो गया। उसका मुख मंडल दीपक की भाति चमक उठा जर्जर शरीर में एक विचित्र स्फूर्ति दौड़ गयी। वह उत्सुकता से बोला — लैला, ये तो ईरान के आदमी, कलामे–पाक की कसम, ये ईरान के आदमी है। इनके लिबास से साफ जाहिर हो रहा है।

लैला ने भी उन यात्रियों की ओर देखा और सचेत होकर बोली— अपनी तलवार संभाल लो, शायद उसकी जरुरत पड़े।

नादिर — नहीं लैला, ईरान के लोग इतने कमीने नहीं है कि अपने बादशाह पर तलवार उठायें।

लैला — पहले मै भी यही समझती थी।

सवारों ने समीप आकर घोड़े रोक लिये। उतरकर बड़े अदब से नादिर को सलाम किया। नादिर बहुत जब्त करने पर भी अपने मनोवेग को न रोक सका, दौड़कर उनके गले लिपट गया। वह अब बादशाह न था, ईरान का एक मुसाफिर था। बादशहत मिट

गयी थी, पर ईरानियत रोम–रोम में भरी हुई थ्री। वे तीनों आदमी इस समय ईरान के विधाता थे। इन्हे वह खूब पहचानता था। उनकी स्वामिभक्ति की वह कई बार परीक्षा ले चुका था। उन्हे लाकर अपने बोरिये पर बैठाना चाहा, लेकिन वे जमीन पर ही बैठे। उनकी दृष्टि से वह बोरिया उस समय सिंहासन था, जिस पर अपने स्वामी के सम्मुख वे कदम न रख सकते थे। बातें होने लगीं, ईरान की दशा अत्यंत शोचनीय थी। लूट मार का बाजार गर्म था, न कोई व्यवस्था थी न व्यवस्थापक थे। अगर यही दशा रही तो शायद बहुत जल्द उसकी गरदन में पराधीनता का जुआ पड़ जाये। देश अब नादिर को ढूँढ़ रहा था। उसके सिवा कोई दूसरा उस डूबते हुए बेड़े को पार नहीं लगा सकता था। इसी आशा से ये लोग उसके पास आये थे।

नादिर ने विरक्त भाव से कहा — एक बार इज्जत ली, क्या अबकी जान लेने की सोची है? मै बड़े आराम से हूँ। आप मुझे दिक न करें।

सरदारों ने आग्रह करना शुरु किया — हम हुजूर का दामन न छोड़ेंगे, यहाँ अपनी गरदनों पर छुरी फेर कर हुजूर के कदमों पर जान दे देंगे। जिन बदमाशों ने आपकी परेशान किया। अब उनका कहीं निशान भी नहीं रहा हम लोगो उन्हें फिर कभी सिर न उठाने देंगे, सिर्फ हुजूर की आड़ चाहिए।

नादिर ने बात काटकर कहा — साहबों अगर आप मुझे इस इरादे से ईरान का बादशाह बनाना चाहते है, तो माफ कीजिए। मैंने इस सफर मे रिआया की हालत का गौर से मुलाहजा किया है और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सभी मुल्कों में उनकी हालत खराब है। वे रहम के काबिल है, ईरान में मुझे कभी ऐसे मौके ने मिले थे। मैं रिआया को अपने दरबारियों की आँखों से देखता था। मुझसे आप लोग यह उम्मीद न रखे कि रिआया को लूटकर आपकी जेबें भरूँगा। यह अजाब अपनी गरदन पर नही ने सकता। मैं इन्साफ का मीजान बराबर रखूँगा और इसी शर्त पर ईरान चल सकता हूँ।

लैला ने मुस्कराते कहा — तुम रिआया का कसूर माफ कर सकते हो, क्योंकि उसकी तुमसे कोई दुश्मनी न थी। उसके दाँत तो मुझे पर थे। मै उसे कैसे माफ कर सकती हूँ।

नादिर ने गम्भीर भाव से कहा — लैला, मुझ यकीन नहीं आता कि तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें सुन रहा हूँ।

लोगो ने समझा, अभी उन्हें भड़काने की जरुरत ही क्या है। ईरान में चलकर देखा जायेगा। दो–चार मुखबिरों से रिआया के नाम पर ऐसे उपद्रव खड़े करा देंगे कि इनके सारे ख्याल पलट जायेंगे। एक सरदार ने अर्ज की — माजल्लाह! हुजूर यह क्या

फरमाते है? क्या हम इतने नादान है कि हुजूर को इन्साफ के रास्ते से हटाना चाहेंगे? इन्साफ ही बादशाह का जौहर है और हमारी दिली आरजू है कि आपका इन्साफ ही नौशेरवां को भी शर्मिन्दा कर दे,। हमारी मंशा सिर्फ यह थी कि आइंदा से हम रिआया को कभी ऐसा मौका न देंगे कि वह हुजूर की शान में बेअदबी कर सके। हम अपनी जानें हुजूर पर निसार करने के लिए हाजिर रहेंगे।

सहसा ऐसा मालूम हुआ कि सारी प्रकृति संगीतमय हो गयी है। पर्वत और वृक्ष, तारे, और चाँद वायु और जल सभी एक स्वर से गाने लगे। चाँदनी की निर्मल छटा में वायु के नीरव प्रहार में संगीत की तरंगें उठने लगी। लैला अपना डफ बजा बजा कर गा रही थी। आज मालूम हुआ, ध्वनि ही सृष्टि का मूल है। द पर्वतों पर देवियाँ निकल निकल कर नाचने लगीं आकाश पर देवता नृत्य करने लगे। संगीत ने एक नया संसार रच डाला।

उसी दिन से जब कि प्रजा ने राजभवन के द्वार पर उपद्रव मचाया था और लैला के निर्वासन पर आग्रह किया था, लैला के विचारों में क्रांति हो रही थी जन्म से ही उसने जनता के साथ सहानुभूति करना सीखा था। वह राजकर्मचारियों को प्रजा पर अत्याचार करते देखती थी और उसका कोमल हृदय तड़प उठता था। तब धन, ऐश्वर्य और विलास से उसे घृणा होने लगती थी। जिसके

कारण प्रजा को इतने कष्ट भोगने पड़ते है। वह अपने में किसी ऐसी शक्ति का आह्वान करना चाहती थी कि जो आततायियों के हृदय में दया और प्रजा के हृदय में अभय का संचार करे। उसकी बाल कल्पना उसे एक सिंहासन पर बिठा देती, जहाँ वह अपनी न्याय नीति से संसार में युगान्तर उपस्थित कर देती। कितनी रातें उसने यही स्वप्न देखने में काटी थी। कितनी बार वह अन्याय पीड़ितों के सिरहाने बैठकर रोयी थी लेकिन जब एक दिन ऐसा आया कि उसके स्वर्ण स्वप्न आंशिक रीति से पूरे होने लगे तब उसे एक नया और कठोर अनुभव हुआ! उसने देखा प्रजा इतनी सहनशील इतनी दीन और दुर्बल नहीं है, जितना वह समझती थी इसकी अपेक्षा उसमें ओछेपन, अविचार और अशिष्टता की मात्रा कहीं अधिक थी। वह सद्व्यवहार की कद्र करना नही जानती, शक्ति पाकर उसका सदुपयोग नहीं कर सकती। उसी दिन से उसका दिल जनता से फिर गया था।

जिस दिन नादिर और लैला ने फिर तेहरान में पदार्पण किया, सारा नगर उनका अभिवादन करने के लिए निकल पड़ा। शहर पर आतंक छाया हुआ था, चारों ओर करुण रुदन की ध्वनि सुनाई देती थी। अमीरों के मुहल्ले में श्री लोटती फिरती थी गरीबों के मुहल्ले उजड़े हुए थे, उन्हे देखकर कलेजा फटा जाता था। नादिर

रो पड़ा, लेकिन लैला के होठों पर निष्ठुर निर्दय हास्य छटा दिखा रहा था।

नादिर के सामने अब एक विकट समस्या थी। वह नित्य देखता कि मैं जो करना चाहता हूँ वह नही होता और जो नहीं करना चाहता वह होता है और इसका कारण लैला है, पर कुछ कह न सकता था। लैला उसके हर एक काम में हस्तक्षेप करती रहती, थी। वह जनता के उपकार और उद्धार के लिए विधान करता, लैला उसमे कोई न कोई विघ्न अवश्य डाल देती और उसे चुप रह जाने के सिवा और कुछ न सूझता लैला के लिए उसने एक बार राज्य का त्याग कर दिया था तब आपत्ति-काल ने लैला की परीक्षा की थी। इतने दिनों की विपत्ति में उसे लैला के चरित्र का जो अनुभव प्राप्त हुआ था, वह इतना मनोहर इतना सरस था कि वह लैला मय हो गया था। लैला ही उसका स्वर्ग थी, उसके प्रेम में रत रहना ही उसकी परम अभिलाषा थी। इस लैला के लिए वह अब क्या कुछ न कर सकता था? प्रजा की ओर साम्राज्य की उसके सामने क्या हस्ती थी।

इसी भाँति तीन साल बीत गये प्रजा की दशा दिन दिन बिगड़ती ही गयी।

9

एक दिन नादिर शिकार खेलने गया। और साथियों से अलग होकर जंगल में भटकता फिरा यहाँ तक कि रात हो गयी और साथियों का पता न चला। घर लौटने का भी रास्ता न जानता था। आखिर खुदा का नाम लेकर वह एक तरफ चला कि कहीं तो कोई गाँव या बस्ती का नाम निशान मिलेगा! वहाँ रात, भर पड़ रहूँगा सबेरे लौट जाऊँगा। चलते चलते जंगल के दूसरे सिरे पर उसे एक गाँव नजर आया। जिसमें मुश्किल से तीन चार घर होगें हा, एक मसजिद अलबत्ता बनी हुई थी। मसजिद मे एक दीपक टिमटिमा रहा था पर किसी आदमी या आदमज़ात का निशान न था। आधी रात से ज्यादा बीत चुकी थी, इसलिए किसी को कष्ट देना भी उचित न था। नादिर ने घोड़े का एक पेड़ से बाँध दिया और उसी मसजिद में रात काटने की ठानी। वहाँ एक फटी सी चटाई पड़ी हुई थी। उसी पर लेट गया। दिन भर का थका था, लेटते ही नींद आ गई। मालूम नहीं वह कितनी देर तक सोता रहा; पर किसी की आहट पाकर चौका तो क्या देखता है कि एक बूढा आदमी बैठा नमाज पढ़ रहा है। नादिर को आश्चर्य हुआ कि इतनी रात गये कौन नमाज पढ़ रहा है। उसे यह खबर न थी कि रात गुजर गयी और यह फ़जिर की नमाज है। वह

पड़ा–पड़ा देखता रहा। वृद्ध पुरुष ने नमाज अदा कही फिर वह छाती के सामने अंजलि फैलकर दुआ माँगने लगा। दुआ के शब्द सुनकर नादिर का खून सर्द हो गया। वह दुआ उसके राज्यकाल की ऐसी तीव्र, ऐसी वास्तविक ऐसी शिक्षाप्रद आलोचना थी जो आज तक किसी ने न की थी उसे अपने जीवन में अपना अपयश सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। वह यह तो जानता था कि मेरा शासन आदर्श नहीं है, लेकिन उसने कभी यह कल्पना न की थी कि प्रजा की विपत्ति इतनी असत्य हो गयी है। दुआ यह थी –

''ए खुदा! तू ही गरीबों का मददगार और बेकसों का सहारा है। तू इस जालिम बादशाह के जुल्म देखता है और तेरा कहर उस पर नहीं गिरता। यह बेदीन काफिर एक हसीन औरत की मुहब्बत में अपने को इतना भूल गया है कि न आँखों से, देखता है, न कानों से सुनता है। अगर देखता है तो उसी औरत की आँखें से सुनता है तो उसी औरत के कानों से अब यह मुसीबत नहीं सही जाती। या तो तू उस जालिम को जहन्नुम पहुँचा दे; या हम बेकसों को दुनिया से उठा ले। ईरान उसके जुल्म से तंग आ गया है। और तू ही उसके सिर से इस बला को टाल सकता है।'

बूढ़े ने तो अपनी छड़ी सँभाली और चलता हुआ, लेकिन नादिर मृतक की भाँति वहीं पड़ा रहा मानों उसे पर बिजली गिर पड़ी हों।

10

एक सप्ताह तक नादिर दरबार में न आया, न किसी कर्मचारी को अपने पास आने की आज्ञा दी। दिन के दिन अन्दर पड़ा सोचा करता कि क्या करूँ। नाममात्र को कुछ खा लेता। लैला बार–बार उसके पास जाती और कभी उसका सिर अपनी जाँघ पर रखकर कभी उसके गले में बाहें डालकर पूछती — तुम क्यों इतने उदास और मलिन हो। नादिर उसे देखकर रोने लगता; पर मुँह से कुछ न कहता। यश या लैला, यही उसके सामने कठिन समस्या थी। उसके हृदय में भीषण द्वन्द्व रहता और वह कुछ निश्चय न कर सकता था। यश प्यारा था; पर लैला उससे भी प्यारी थी वह बदनाम होकर जिंदा रह सकता था। लैला उसके रोम रोम में व्याप्त थी।

अन्त को उसने निश्चय कर लिया — लैला मेरी है मै लैला का हूँ। न मै उससे अलग न वह मुझे से जुदा। जो कुछ वह करती

है मेरा है, जो मै करता हू। उसका है यहाँ मेरा और तेरा का भेद ही कहाँ? बादशाहत नश्वर है प्रेम अमर। हम अनंत काल तक एक दूसरे के पहलू में बैठे हुए स्वर्ग के सुख भोगेंगे। हमारा प्रेम अनन्त काल तक आकाश में तारे की भाति चमकेगा।

नादिर प्रसन्न होकर उठा। उसका मुख मंडल विजय की लालिमा से रंजित हो रहा था। आँखों में शौर्य टपका पड़ता था। वह लैला के प्रेम का प्याला पीने जा रहा था, जिसे एक सप्ताह से उसने मुँह नहीं लगाया था। उसका हृदय उसी उमंग से उछल पड़ता था। जो आज से पाँच साल पहले उठा करती थी। प्रेम का फूल कभी नही मुरझाता प्रेम की नींद कभी नहीं उतरती।

लेकिन लैला की आरामगाह के द्वार बन्द थे और उसका डफ़ जो द्वार पर नित्य एक खूंटी से लटका रहता था, गायब था। नादिर का कलेजा सन्न–सा हो गया। द्वार बन्द रहने का आशय तो यह हो सकता हे कि लैला बाग में होगी; लेकिन डफ़ कहाँ गया? सम्भव है, वह डफ़ लेकर बाग में गयी हो, लेकिन यह उदासी क्यो छायी है? यह हसरत क्यो बरस रही है।'

नादिर ने काँपते हुए हाथों से द्वार खोल दिया। लैला अन्दर न थी पलंग बिछा हुआ था, शमा जल रही थी, वजू का पानी रखा हुआ था। नादिर के पाँव थर्राने लगे। क्या लैला रात को भी नहीं

सोती? कमरे की एक एक वस्तु में लैला की याद थी, उसकी तस्वीर थी ज्योति–हीन नेत्र।

नादिर का दिल भर आया। उसकी हिम्मत न पड़ी कि किसी से कुछ पूछे। हृदय इतना कातर हो गया कि हतबुद्धि की भांति फर्श पर बैठकर बिलख–बिलख कर रोने लगा। जब जरा आँसू थमे तब उसने बिस्तर को सूँघा कि शायद लैला के स्पर्श की कुछ गन्ध आये; लेकिन खस और गुलाब की महक के सिवा और कोई सुगन्ध न थी।

सहसा उसे तकिये के नीचे से बाहर निकला हुआ एक कागज का पुर्जा दिखायी दिया। उसने एक हाथ से कलेजे को संभालकर पुर्जा निकाल लिया और सहमी हुई आँखो से उसे देखा। एक निगाह में सब कुछ मालूम हो गया। वह नादिर की किस्मत का फैसला था। नादिर के मुँह से निकला, हाय लैला; और वह मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। लैला ने पुर्जे में लिखा था — 'मेरे प्यारे नादिर, तुम्हारी लैला तुमसे जुदा होती है। हमेशा के लिए। मेरी तलाश मत करना तुम मेरा सुराग न पाओगे। मै तुम्हारी मुहब्बत की लौड़ी थी, तुम्हारी बादशाहत की भूखी नहीं। आज एक हफ्ते से देख रही हूँ तुम्हारी निगाह फिरी हुई है। तुम मुझसे नहीं बोलते, मेरी तरफ आँख उठाकर नहीं देखते। मुझे से बेजार रहते हो। मै किन–किन अरमानों से तुम्हारे पास जाती हूँ

और कितनी मायूस होकर लौटती हूँ इसका तुम अंदाज नहीं कर सकते। मैंने इस सजा के लायक कोई काम नहीं किया। मैंने जो कुछ है, तुम्हारी ही भलाई के खयाल से। एक हफ्ता मुझे रोते गुजर गया। मुझे मालूम हो रहा है कि अब मै तुम्हारी नजरों से गिर गयी, तुम्हारे दिल से निकाल दी गयी। आह! ये पाँच साल हमेशा याद रहेगें, हमेशा तड़पाते रहेंगें! यही डफ़ ले कर आयी थी, वही लेकर जाती हूँ पाँच साल मुहब्बत के मजे उठाकर जिंदगी भर के लिए हसरत का दाग लिये जाती हूँ। लैला मुहब्बत की लौंडी थी, जब मुहब्बत न रही, तब लैला क्योंकर रहती? रूखसत!’

मुक्तिधन

भारतवर्ष में जितने व्यवसाय हैं, उन सब में लेन–देन का व्यवसाय सबसे लाभदायक हैं। आमतौर पर सूद की दर 25 रुपए सैंकड़ा हैं, प्रचुर स्थावर या जंगम सम्पति पर 12 रुपए सैंकड़े सालाना सूद लिया जाता हैं, इससे कम ब्याज पर रुपया मिलना प्रायः असम्भव हैं, बहुत कम ऐसे व्यवसाय हैं, जिनमें 15 रुपए सैंकड़े से अधिक लाभ हो और वह भी बिना किसी झंझट के, उस पर नजराने की रकम अलग, लिखाई, दलाली अलग, अदालत का खर्चा भी अलग, ये सब रकमें भी किसी–न–किसी तरह महाजन ही की जेब में जाती हैं, यही कारण हैं कि यहाँ लेन–देन का धन्धा इतनी तरक्की पर हैं, वकील, डॉक्टर, सरकारी कर्मचारी, जमींदार कोई भी जिसके पास फालतू धन हो, यह व्यवसाय कर सकता हैं, अपनी पूँजी के सदुपयोग का यह सर्वोत्तम साधन हैं, लाला दाऊदयाल भी इसी श्रेणी के महाजन थे, वह कचहरी में मुख्तारगिरी करते थे और जो कुछ बचत होती थी, उसे 25–30 रुपए सैंकड़ा वार्षिक ब्याज पर उठा देते थे, उनका व्यवहार अधिकतर निम्न श्रेणी के मनुष्यों से ही रहता था, उच्च वर्णवालों से वह चौकन्ने रहते थे, उन्हें अपने

यहाँ फटकने ही न देते थे, उनका कहना था (और प्रत्येक व्यवसायी पुरुष उसका समर्थन करता हैं) कि ब्राह्मण, क्षत्रिय या कायस्थ को रुपए देने से यह कहीं अच्छा हैं कि रुपया कुएँ में डाल दिया जाए, लेते समय तो इनके पास बहुत सम्पत्ति होती हैं, लेकिन रुपए हाथ में आते ही वह सारी सम्पत्ति गायब हो जाती हैं, उस पर पत्नी, पुत्र या भाई का अधिकार हो जाता हैं अथवा यह प्रकट होता हैं कि उस सम्पत्ति का अस्तित्व ही न था, इनकी कानूनी व्यवस्थाओं के सामने बड़े-बड़े नीति-शास्त्र के विद्वान भी मुँह की खा जाते हैं।

लाला दाऊदयाल एक दिन कचहरी से घर आ रहे थे, रास्ते में उन्होंने एक विचित्र घटना देखी, एक मुसलमान खड़ी अपनी गऊ बेच रहा था और कई आदमी उसे घेरे खड़े थे, कोई उसके हाथ में रुपए रखे देता था, कोई उसके हाथ से गऊ की पगहिया छीनने की चेष्टा करता था, किन्तु वह गरीब मुसलमान एक बार उन ग्राहकों के मुँह की ओर देखता था और कुछ सोचकर पगहिया को और भी मजबूत पकड़ लेता था, गऊ मोहनी-रूप थी, छोटी-सी गरदन, भारी पुट्ठे और दूध से भरे हुए थन थे, पास ही एक सुन्दर, बलिष्ठ बछड़ा गऊ की गर्दन से लगा हुआ खड़ा था, मुसलमान बहुत क्षुब्ध और दुखी था, वह करुण नेत्रों से गऊ को देखता और दिल मसोसकर रह जाता था, दाऊदयाल गऊ को

देखकर रीझ गए, पूछा — क्यों जी, यह गऊ बेचते हो? क्या नाम हैं तुम्हारा?

मुसलमान ने दाऊदयाल को देखा तो खुश होकर उसके समीप जाकर बोला — हाँ हजूर, बेचता हूँ।

दाउदयाल — कहाँ से लाए हो? तुम्हारा नाम क्या हैं?

मुसलमान — नाम तो हैं रहमान, पचौली में रहता हूँ।

दाऊदयाल —'दूध देती हैं?

मुसलमान — हाँ हजूर, एक बेला में तीन सेर दुह लीजिए, अभी दूसरा ही तो बेत हैं, इतनी सीधी हैं कि बच्चा भी दुह ले, बच्चे पैर के पास खेलते रहते हैं, पर क्या मजाल कि सिर भी हिलाए।

दाऊदयाल — कोई तुम्हें यहाँ पहचानता हैं?

मुख्तार साहब को शुब्हा हुआ कि कहीं चोरी का माल न हो।

मुसलमान — नहीं हजूर, गरीब आदमी हूँ, मेरी किसी से जान–पहचान नहीं हैं।

दाऊदयाल — क्या दाम माँगते हो?

रहमान ने 50 रुपए बतलाए, मुख्तार साहब को 30 रुपए का माल जँचा, कुछ देर तक दोनों ओर से मोल–भाव होता रहा, एक को

रुपयों की गरज थी और दूसरे को गऊ की चाह, सौदा पटने में कोई कठिनाई न हुई, 35 रुपये में सौदा तय हो गया।

रहमान ने सौदा तो चुका दिया, पर अब भी वह मोह के बंधन में पड़ा हुआ था, कुछ देर तक सोच में डूबा खड़ा रहा, फिर गऊ को लिए मंद गति से दाऊदयाल के पीछे–पीछे चला, तब एक आदमी ने कहा– अबे हम 36 रुपए देते हैं, हमारे साथ चल।

रहमान — नहीं देते तुम्हें, क्या कुछ जबरदस्ती हैं?

दूसरे आदमी ने कहा — हमसे 40 रुपए ले ले, अब तो खुश हुआ?

यह कहकर उसने रहमान के हाथ से गाय को ले लेना चाहा, मगर रहमान मे हामी न भरी, आखिर उन सबने निराश होकर अपनी राह ली।

रहमान जरा दूर निकल गया, तो दाऊदयाल से बोला — हजूर, आप हिन्दू हैं इसे लेकर आप पालेंगे, इसकी सेवा करेंगे, ये सब कसाई हैं, इनके हाथ 50 रुपए में भी कभी न बेचता, आप बड़े मौके से आ गए, नहीं तो ये जबरदस्ती से गऊ को छीन ले जाते, बड़ी विपत में पड़ गया हूँ, सरकार, तब यह गाय बेचने निकला हूँ, नहीं तो इस घर की लक्ष्मी को कभी न बेचता, इसे अपने हाथों से पाला–पोसा हैं, कसाइयों के हाथ कैसे बेच देता? सरकार इसे जितनी ही खली देंगे, उतना ही यह दूध देगी, भैंस का दूध भी

इतना मीठा और गाढ़ा नहीं होता, हजूर से एक अरज और हैं, अपने चरवाहे को डाँट दीजिएगा कि इसे मारे–पीटे नहीं।

दाऊदयाल ने चकित होकर रहमान की ओर देखा, भगवान! इस श्रेणी के मनुष्य में भी इतना सौजन्य, इतनी सहृदयता हैं, यहाँ तो बड़े–बड़े तिलक–त्रिपंडुधारी महात्मा कसाइयों के हाथ गउएँ बेच जाते हैं, एक पैसे का घाटा भी नहीं उठाना चाहते, और यह गरीब 5 रुपए का घाटा यह कर इसलिए मेरे हाथ बेच रहा हैं कि यह किसी कसाई के हाथ न पड़ जाए, गरीबों में भी इतनी समझ हो सकती हैं!

उन्होंने घर आकर रहमान को रुपए दिए, रहमान ने रुपए गाँठ में बाँधे, एक बार गऊ को प्रेम–भरी आँखों से देखा और दाऊदयाल को सलाम करके चला गया।

रहमान एक गरीब किसान था और गरीब के सभी दुश्मन होते हैं, जमींदार ने इजाफा–लगान का दावा दायर किया था, उसी की जवाबदेही करने के लिए रुपयों की जरूरत थी। घर में बैलों के सिवा और कोई सम्पत्ति न थी, वह इस गऊ को प्राणों से भी प्रिय समझता था, पर रुपयों की कोई तदबीर न हो सकी तो विवश होकर गाय बेचनी पड़ी।

2

पचौली में मुसलमानों के कई घर थे, अबकी कई साल के बाद हज का रास्ता खुला था, पाश्चात्य महासमर के दिनों में राह बन्द थी, गाँव के कितने ही स्त्री–पुरुष हज करने चले। रहमान की बूढ़ी माता भी हज के लिए तैयार हुई, रहमान से बोली — बेटा इतना सबाब करो, बस मेरे दिल में यहीं एक अरमान बाकी हैं। इस अरमान को लिए हुए दुनिया से जाऊँ। खुदा तुमको इस नेकी की सजा (फल) देगा।' मातृ–भक्ति ग्रामीणों का विशिष्ट गुण हैं। रहमान के पास इतने रुपए कहाँ थे कि हज के लिए काफी होते, पर माता की आज्ञा कैसे टालता? सोचने लगा, किसी से रुपये उधार ले लूँ, कुछ अबकी ईख पेरकर दे दूँगा। कुछ अगले साल चुका दूँगा। अल्लाह के फजल से ईख ऐसी हुई कि कभी न हुई थी, यह माँ की दुआ ही का फल हैं। मगर किससे लूँ?
कम–से–कम 200 रुपए हो तो काम चले। किसी महाजन से जान–पहचान भी तो नहीं हैं। यहाँ जो दो–एक बनिए हैं, वे तो असामियों का गरदन ही रेतते हैं। चलूँ, लाला दाऊदयाल के पास। इन सबसे तो वही अच्छे हैं, सुना हैं, वादे पर रुपए लेते हैं। किसी तरह नहीं छोड़ते। लोनी चाहे दीवार को छोड़ दे, दीमक चाहें लकड़ी को छोड़ दे पर वादे पर रुपए न मिले तो

वह असामियों को नहीं छोड़ते। बात पीछे करते हैं, नालिश पहले। हाँ, इतना हैं कि आसामियों की आँख में धूल नहीं झोंकते। हिसाब-किताब साफ रखते हैं। कई दिनों वह इसी सोच-विचार में पड़ा रहा कि उनके पास जाऊँ या न जाऊँ। अगर कहीं वादे पर रुपए न पहुँचे तो? बिना नालिश किए न मानेंगे, घर-बार, बैल-बछिया, सब नीलाम कर लेंगे। लेकिन जब कोई वश न चला तो हारकर दाऊदयाल के ही पास गया और रुपए कर्ज माँगे।

दाउदयाल — तुम्हीं ने तो मेरे हाथ गऊ बेची थी न?

रहमान — हाँ हजूर!

दाऊदयाल — रुपए तो तुम्हें दे दूँगा, लेकिन मैं वादे पर रुपए लेता हूँ। अगर वादा पूरा न किया तो तुम जानो। फिर मैं रियाअत न करूँगा, बताओ कब दोगे?

रहमान ने मन में हिसाब लगाकर कहा — सरकार, दो साल की मियाद रख लें।

दाऊदयाल — अगर दो साल में न दोगे तो ब्याज की दर 32 रुपए हो जाएगी। तुम्हारे साथ इतनी मुरौवत करूँगा कि नालिश न करूँगा।

रहमान — जो चाहे कीजिएगा, हुजूर के हाथ में ही तो हैं।

रहमान को 200 रुपए के 180 रुपए मिले। कुछ लिखाई कट गई, कुछ नजराना निकल गया, कुछ दलाली में आ गया। घर आया थोडा–सा गुड़ मुँह में रखा हुआ था। उसे बेचा और स्त्री को समझा–बुझा कर माता के साथ हज को चला।

3

मियाद गुजर जाने पर लाला दाऊदयाल ने तकाजा किया। एक आदमी रहमान के घर भेजकर उसे बुलाया और कठोर स्वर में बोले– क्या अभी दो साल नहीं पूरे हुए! लाओ, रुपए कहाँ हैं?

रहमान ने बड़े दीन भाव से कहा — हजूर बड़ी गर्दिश में हूँ। अम्मा जब से हज करके आई हैं, तभी से बीमार पड़ी हैं। रात–दिन उन्हीं की दवा–दारू में दौड़ते गुजरता हैं। जब तक जीती हैं, हुजूर कुछ सेवा कर लूँ, पेट का धन्धा तो जिन्दगी–भर लगा रहेगा। अबकी बार कुछ फसल नहीं हुई हुजूर। ईख पानी बिना सूख गई, सन खेत में पड़े–पड़े सूख गया। ढोने की मुहलत न मिली। रबी के लिए खेत जोत न सका, परती पड़े हुए हैं। अल्लाह ही जानता हैं, किस मुसीबत से दिन कट रहे हैं। हुजूर

के रुपए कौड़ी–कौड़ी अदा करुँगा, साल–भर की और मुहलत दीजिए। अम्माँ अच्छी हुई और मेरे सिर से बला टली।

दाऊदयाल ने कहा — 32 रुपए सैकड़े ब्याज हो जाएगा।

रहमान ने जवाब दिया — जैसी हुजूर की मरजी।

रहमान यह वादा करके घर आया तो देखा कि माँ का अन्तिम समय आ पहुँचा हैं। प्राण–पीड़ा हो रही हैं, दर्शन बदे थे, सो हो गए। माँ ने बेटे को एक बार वात्सल्य दृष्टि से देखा। आशीर्वाद दिया और परलोक सिधारी। रहमान अब तक गरदन तक पानी में था, अब पानी सिर पर आ गया।

इस वक्त पड़ोसियों से कुछ उधार लेकर दफन–कफन का प्रबन्ध किया। किन्तु मृत आत्मा का शान्ति और परितोष के लिए जकात और फातिहे की जरूरत थी। कब्र बनवानी जरूरी थी, बिरादरी का खाना, गरीबों को खैरात, कुरान का तलावत और ऐसे कितने ही संस्कार करने परमावश्यक थे।

मातृ–सेवा का इसके सिवा अब और कौन–सा अवसर हाथ आ सकता था। माता के प्रति समस्त सांसारिक और धार्मिक कर्तव्यों का अन्त हो रहा था, फिर तो माता की स्मृति–मात्र रह जाएगी, संकट के समय फरियाद सुनाने के लिए? मुझे खुदा ने सामर्थ्य दी

होती तो इस वक्त क्या कुछ न करता, लेकिन अब क्या अपने पड़ोसियों से भी गया–गुजरा हूँ?

उसने सोचना शुरू किया, रुपये लाऊँ कहाँ से? अब तो लाला दाऊदयाल भी न देंगे। एक बार जाकर देखूँ तो सही। कौन जाने, मेरी विपत्ति सुनकर उन्हें दया आ जाए। बड़े आदमी हैं, कृपादृष्टि हो गई तो सौ–दो–सौ उनके लिए कौन सी बड़ी बात हैं!

इस भाँति मन में सोच–विचार करता हुआ वह लाला दाऊदयाल के पास चला। रास्ते में एक–एक कदम मुश्किल से उठता था। कौन मुँह लेकर जाऊँ? अभी तीन दिन ही हुए हैं, साल भर में पिछले रुपए अदा करने का वादा करके आया हूँ। अब तो 200 रुपए और मागूँगा तो वह क्या कहेंगे। मैं ही उनकी जगह होता तो कभी न देता। उन्हें जरूर सन्देह होगा कि यह आदमी नीयत का बुरा हैं। कहीं दुत्कार दिया, घुड़कियाँ दी तो? पूछें, तेरे पास ऐसी कौन–सी जायदाद हैं, वह यही दोनों हाथ हैं, तो क्या जवाब दूँगा? घर को कोई सेंत भी न पूछेगा, खेत हैं, जमींदार के। उनपर अपना कोई काबू ही नहीं। बेकार जा रहा हूँ। वहाँ धक्के खाकर निकलना पड़ेगा। रही–सही आबरू भी मिट्टी में मिल जाएगी।

परन्तु इन निराशाजनक शंकाओं के होने पर भी वह धीरे–धीरे आगे बढ़ा चला जाता था, जैसे कोई अनाथ विधवा थाने फरियाद करने जा रही हो।

लाला दाऊदयाल कचहरी से आकर अपने स्वभाव के अनुसार नौकरों पर बिगड़ रहे था — द्वार पर पानी क्यों नहीं छिड़का, बरामदे में कुर्सियाँ क्यों नहीं निकाल रखी? इतने में रहमान सामने जाकर खड़ा हो गया।

लाला साहब इल्लाए तो बैठे थे। रुष्ट होकर बोले — तुम क्या करने आए हो जी? क्यों मेरे पीछे पड़े हो। मुझे इस वक्त बातचीत करने की फुरसत नही हैं।

रहमान कुछ न बोल सका। डाँट सुनकर इतना हताश हुआ कि उल्टे पैरों लौट पड़ा। हुई न वही बात, यही सुनने तो मैं आया था? मेरी अकल पर पत्थर पड़ गए थे।

दाऊदयाल को कुछ दया आ गई। जब रहमान बरामदे के नीचे उतर गया तो बुलाया। जरा नर्म होकर बोले — कैसे आए थे जी! क्या कुछ काम था?

रहमान — नहीं सरकार, यों ही सलाम करने चला आया था।

दाऊदयाल — एक कहावत हैं — सलामे रोस्ताई बेगरज नेस्त — किसान बिना मतलब के सलाम नहीं करता, मतलब की बात कहो।

रहमान फूट-फूटकर रोने लगा। दाऊदयाल ने अटकल से समझ लिया, इसकी माँ मर गई। पूछा — क्यों रहमान, तुम्हारी माँ सिधार तो नहीं गई?

रहमान — हाँ हुजूर, आज तीसरा दिन हैं।

दाऊदयाल — रो न, रोने से क्या फायदा? सब्र करो, ईश्वर को जो मंजूर था, वह हुआ। ऐसी मौत पर गम न करना चाहिए। तुम्हारे हाथों उनकी मिट्टी ठिकाने लग गई। अब और क्या चाहिए?

रहमान — हुजूर, कुछ अरज करने आया हूँ मगर हिम्मत नहीं पड़ती। अभी पिछला ही पड़ा हुआ हैं और अब किस मुँह से माँगू? लेकिन अल्लाह जानता हैं, कहीं से एक पैसा मिलने की उम्मीद नहीं और काम ऐसा आ पड़ा हैं कि अगर न करूँ तो जिन्दगी भर पछतावा रहेगा। आपसे कुछ कह नहीं सकता, आगे आप मालिक हैं। यह समझकर कि कुँए में डाल रहा हूँ। जिन्दा रहा तो एक-एक कौड़ी माय सूद के अदा कर दूँगा, मगर इस घड़ी मना न कीजिएगा।

दाऊदयाल — तीन सौ तो हो गए, दो सौ फिर माँगते हो। दो साल में कोई सात सौ रुपए हो जाएँगे, इसकी खबर हैं या नहीं?

रहमान — गरीबपरवर! अल्लाह दे, तो दो बीघे ईख में पाँच सौ आ सकते हैं। अल्लाह ने चाहा तो मियाद के अन्दर आपकी कौड़ी–कौड़ी अदा कर दूँगा।

दाऊदयाल ने दो सौ रुपये दे दिए। जो लोग उनके व्यवहार से परिचित थे, उन्हें उनकी इस रियायत पर बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

4

खेती की हालत अनाथ बालक की–सी हैं। जल और वायु अनुकूल हुए तो अनाज का ढेर लग गए। इनकी कृपा न हुई तो लहलहाते हुए खेत कपटी मित्र की भाँति दगा दे गए। ओला और पाल, सूखा और बाढ़ टिड्डी और लाही, दीपक और आँधी से प्राण बचे तो फसल खलिहान में आई। और खलिहान से आग और बिजली दोनों ही का बैर हैं। इतने दुश्मनों से बची, तो फसल, नहीं तो फैसला! रहमान ने कलेजा तोड़कर मेहनत की, दिन को दिन और रात को रात न समझा। बीवी–बच्चे दिलोजान से

निपट गए। ऐसी ईख लगी कि हाथी घुसे तो समा जाए। सारा गाँव दाँतों तले उंगली दबाता था। लोग रहमान से कहते — यार, अबकी तुम्हारे पौ–बारह हैं। हारे दर्जे सात–सौ कहीं नहीं गए। अबकी बेड़ा पार हैं, रहमान सोचा करता, अबकी ज्यों ही गुड़ के रुपए हाथ आए। सब–के–सब ले जाकर लाला दाऊदायल के कदमों में रख दूँगा। अगर वह उसमें से खुद दो–चार रुपए निकाल कर देंगे तो ले लूँगा, नहीं तो अबकी साल और चूनी–चोकर खाकर काट लूँगा।

मगर भाग्य के लिखे को कौन मिटा सकता हैं। अगहन का महीना था, रहमान खेत की मेंड़ पर बैठा रखवाली कर रहा था। ओढ़ने को केवल एक पुराने गाढ़े की चादर थी, इसलिए ईख के पत्ते जला दिए थे। सहसा हवा का एक झोंका आया कि जलते हुए पत्ते उड़कर खेत में जा पहुँचे। आग लग गई। गाँव के लोग बुझाने दौड़े, मगर आग की लपटें टूटते तारों की भाँति एक हिस्से से उड़कर दूसरे सिर पर जा पहुँचती थी। सारे उपाय व्यर्थ हुए। पूरा खेत जलकर राख का ढेर गो गया और खेत के साथ रहमान की सारी अभिलाषाएँ नष्ट–भ्रष्ट हो गई। गरीब की कमर टूट गई, दिल बैठ गया, हाथ–पाँव ढीले हो गए। परोसी हुई थाली सामने से छिन गई। घर आया तो दाऊदयाल के रुपयों की फ्रिक सिर पर सवार हुई। अपनी कुछ फ्रिक न थी, बाल–बच्चों

भी फ्रिक न थी, भूखो मरना और नंगे रहना तो किसान का काम ही है। फ्रिक कर्ज की, दूसरी साल बीत रहा हैं। दो–चार दिन में लाला दाऊदयाल का आदमी आता होगा उसे कौन–सा दिखाऊँगा? चलकर उन्हीं की चिरौरी करूँ कि साल–भर की मुहलत और दीजिए। लेकिन साल–भर में तो सात सौ के नौ सौ हो जाएँगे। कहीं नालिश कर दी तो हजार ही समझो। साल–भर में ऐसी क्या हुन बरस जाएगी। बेचारे कितने भले आदमी हैं, दौ सौ उठाकर दे दिया। खेत भी तो ऐसे नहीं कि बै–रिहन करके आबरू बचाऊँ। बैल भी ऐसे कौन से तैयार हैं कि दो–चार सौ मिल जाए। आधे भी तो नहीं रह गए। अब इज्जत खुदा के हाथ हैं। मैं तो अपनी–सी करके देख चुका।

सुबह का वक्त था। वह अपने खेत की मेंड़ भर खड़ा अपनी तबाही का दृश्य देख रहा था। देखा, दाऊदयाल का चपरासी कंधे पर लट्ठ रखे चला आ रहा हैं, प्राण सूख गए। खुदा, अब तू ही इस मुश्किल को आसान कर, कहीं आते ही गालियाँ ने देने लगें। अल्लाह कहाँ छिप जाऊँ?

चपरासी ने समीप आकर कहा — रुपए लेकर देना नहीं चाहते? मियाद कल गुजर गई, जानते हो न सरकार की? एक दिन भी देर हुई और उन्होंने नालिश ठोकी। बेभाव की पड़ेगी।

रहमान ने काँपते हुए कहा — यहाँ का हाल तो देख रहे हो न?

चपरासी — यहाँ हाल-हवाल सुनने का काम नहीं, ये चकमे किसी और को देना। सात सौ रुपए ले चलो और चुपके से गिनकर चले आओ।

रहमान — जमादार, सारी ईख जल गई। अल्लाह जानता हैं, अबकी कौड़ी-कौड़ी बेबाक कर देता।

चपरासी — मैं यह कुछ नहीं जानता, तुम्हारी ईख का किसी ने ठेका नहीं लिया। अभी चलो सरकार बुला रहे हैं।'

यह कहकर चपरासी उसका हाथ पकड़कर घसीटता हुआ ले चला। गरीब को घर में जाकर पगड़ी भी बाँधने का मौका तक न दिया।

5

पाँच कोस का रास्ता कट गया और रहमान ने एक बार भी सिर न उठाया। बस, रह-रहकर 'या अली मुश्किलकुशा!' उसके मुँह से निकल जाता था। उसे अब इस नाम का भरोसा था। यही जप हिम्मत को संभाले हुए था, नहीं तो शायद वह वहीं गिर

पड़ता। वह नैराश्य की उस दशा को पहुँचा गया था, जब मनुष्य को चेतना नहीं उपचेतना शासन करती हैं।

दाऊदयास द्वार पर टहल रहे थे। रहमान जाकर उनके कदमों पर गिरकर बोला — खुदाबन्द, बड़ी विपत पड़ी हैं, अल्लाह जानता हैं कहीं का नहीं रहा।

दाउदयाल — क्या सारी ईख जल गई?

रहमान — हुजूर सुन चुके हैं क्या? सरकार, जैसे किसी ने खेत में झाड़ू लगा दी हो। गाँव के ऊपर ईख लगी हुई थी गरीबपरवर। यह दैवी आफत न पड़ी होती तो और नहीं कह सकता, हुजूर से उरिन हो जाता।

दाऊदयाल — अब क्या सलाह हैं? देते हो या नालिश कर दूँ?

रहमान — हुजूर मालिक हैं, जो चाहें करे। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि हजूर के रुपए सिर पर है और मुझे कौड़ी–कौड़ी देनी हैं। अपनी सोची नहीं होती, दो बार वादे किए, दोनो बार झूठा पड़ा। अब वादा न करूँगा। जब जो कुछ मिलेगा, लाकर हजूर के कदमों पर रख दूँगा। मेहनत–मजूरी से, पेट और तन काटकर, जिस तरह हो सकेगा आपके रुपए भरूँगा।

दाऊदयाल ने मुस्करा कर कहा — तुम्हारे मन में इस वक्त सबसे बड़ी कौन–सी आरजू हैं?

रहमान — यही हुजूर, कि आपके रुपए अदा हो जाएँ। सच कहता हूँ हजूर, अल्लाह जानता हैं।

दाऊदयाल — अच्छा तो समझ लो कि मेरे रुपए अदा हो गए।

रहमान — अरे हुजूर, यह कैसे समझ लूँ? यहाँ न दूँगा तो वहाँ तो देने पड़ोगे।

दाऊदयाल — नहीं रहमान, अब इसकी फ्रिक मत करो, मैं तुम्हें आजमाता था।

रहमान — सरकार, ऐसा न कहें, इतना बोझ सिर पर लेकर न मरूँगा।

दाऊदयाल — कैसा बोझ जी, मेरा तुम्हारे ऊपर कुछ नहीं आता ही नहीं। अगर कुछ आता भी हो तो मैंने माफ कर दिया। यहाँ भी वहाँ भी। अब तुम मेरे एक पैसे के भी देनदार नहीं हो। असल में मैने तुमसे जो कर्ज लिया था, वही अदा कर रहा हूँ। मैं तुम्हारा कर्जदार हूँ, तुम मेरे कर्जदार नहीं हो। तुम्हारी गऊ अब तक मेरे पास हैं, उसने मुझे कम–से–कम आठ सौ रुपए का दूध दिया हैं! दो बछड़े नफे में अलग, अगर तुमने यह गऊ कसाइयों

को दे ही होती तो मुझे इतना फायदा क्योंकर होता? तुमने उस वक्त पाँच रुपए का नुकसान उठाकर गऊ मेरे हाथ बेची थी। जब तुम इतने गरीब और नादान होकर एक गऊ की जान के लिए पाँच रुपए का नुकसान उठा सकते हो तो मैं तुम्हारी सौगुनी हैसियत रखकर अगर चार-पाँच सौ रुपए माफ कर देता हूँ तो कोई बड़ा काम नहीं कर रहा हूँ। तुमने भले ही जानकर मेरे ऊपर कोई अहसान न किया हो, पर असल में वह मेरे धर्म पर अहसान था। मैने भी तो तुम्हें धर्म का काम ही के लिए रुपए दिए थे, बस हम-तुम दोनो बराबर हो गए। तुम्हारे दोनो बछ्ड़े मेरे यहाँ हैं, जी चाहे तो लेते जाओ, तुम्हारी खेती में काम आएँगे। तुम सच्चे और शरीफ आदमी हो, मैं तुम्हारी मदद करने को हमेशा तैयार रहूँगा। इस वक्त भी तुम्हें रुपयों की जरूरत हो तो जितने चाहो, ले सकते हो।

रहमान को ऐसा मालूम हुआ कि उसके सामने कोई फरिश्ता बैठा हुआ हैं। मनुष्य उदार हो तो फरिश्ता है और नीच हो तो शैतान। ये दोनो मानवी वृत्तियों ही के नाम हैं। रहमान के मुँह-से धन्यवाद के शब्द भी न निकल सकें। बड़ी मुश्किल के आँसुओं को रोककर बोला — हुजूर को इस नेकी का बदला खुदा देगा, मैं तो आज से अपने को आपका गुलाम ही समझूँगा।

दाऊदयाल — नहीं जी तुम मेरे दोस्त हो।

रहमान — नहीं हुजूर, गुलाम।

दाऊदयाल — गुलाम छुटकारा पाने के लिए जो रुपए देता हैं, उसे मुक्तिधन कहते हैं। तुम बहुत पहले 'मुक्तिधन' अदा कर चुके, अब भूलकर भी यह शब्द मुँह से न निकालना।

दीक्षा

जब मैं स्कूल में पढ़ता था, गेंद खेलता था और अध्यापक महोदय की घुड़कियाँ खाता था अर्थात् मेरी किशोरावस्था थी। न ज्ञान का उदय हुआ था और न बुद्धि का का विकास। उस समय मैं टेंपरेंस एसोशिएशन (नशा निवारणी सभा) का उत्साहित सदस्य था। नित्य उसके जलसों में शरीक होता। उसके लिए चंदा वसूल करता। इतनी ही नहीं, व्रतधारी भी था और इस व्रत के पालन का अटल संकल्प कर चुका था। प्रधान महोदय ने मेरी दीक्षा लेते समय जब पूछा — 'तुम्हें विश्वास हैं कि जीवन–पर्यन्त इस व्रत पर अटल रहोगे?' तो मैंने निश्शंक भाव से उत्तर दिया — 'हाँ मुझे विश्वास हैं।' प्रधान ने मुस्करा कर प्रतिज्ञा–पत्र मेरे सामने रख दिया, उस दिन मुझे कितना आनन्द हुआ था। गौरव से सिर उठाए घूमता–फिरता था। कई बार पिताजी से भी बे–अदबी कर बैठा, क्योंकि वह सन्ध्या समय थकान मिटाने के लिए एक गिलास पी लिया करते थे। मुझे यह असह्य था, कहूँगा ईमान की। पिताजी ऐब करते थे, पर हुनर के साथ। ज्यों ही जरा–सा सरूर आ जाता, आँखों में सुर्खी की आभा झलकने लगती

कि ब्यालू करने बैठ जाते — बहुत ही सूक्ष्माहारी थे — और फिर रात-भर के लिए माया-मोह के बन्धनों से मुक्त हो जाते। मैं उन्हें उपदेश देता था। उनसे वाद-विवाद करने पर उतारू हो जाता था। एक बार तो मैने गजब कर डाला था। उनकी बोतल और गिलास को पत्थर पर इतनी जोर सो पटका कि भगवान कृष्ण ने कंस को भी इतनी जोर से न पटका होगा। घर में काँच के टुकड़े फैल गए और कई दिनों तक नग्न चरणों से फिरने वाली स्त्रियों के पैरों से खून बहा, पर मेरा उत्साह देखिए! पिता की तीव्र दृष्टि की परवाह न की। पिताजी ने आकर अपनी संजीवनी-प्रदायिनी बोतल का यह शोक समाचार सुना तो सीधे बाजार गये और एक क्षण में ताक के शून्य-स्थान की फिर पूर्ति हो गई। मैं देवासुर-संग्राम के लिए कमर कसे बैठा था, मगर पिताजी के मुख पर लेशमात्र भी मैल न आया। उन्होंने मेरी ओर उत्साहपूर्ण दृष्टि से देखा — अब मुझे मालूम होता हैं कि वह आत्मोल्लास , विशुद्ध सत्कामना और अलौकिक स्नेह से परिपूर्ण थी — और मुस्करा दिए। उसी तरह मुस्कराए, जैसे कई मास पहले प्रधान महोदय मुस्कराए थे। अब उनके मुस्कराने का आशय समझ रहा हूँ। उस समय न समझ सका। बस, इतनी ही ज्ञान की वृद्धि हुई हैं, उस मुस्कान में व्यंग्य था। मेरे बाल-व्रत

का कितना उपहास और मेरी सरलता पर कितनी दया थी। अब उसका मर्म समझा हूँ!

मैं अपने कॉलेज में अपने व्रत पर दृढ़ रहा। मेरे कितने ही मित्र संयमशील न थे। मैं आदर्श-चरित्र समझा जाता था। कॉलेज में उस संकीर्णता का निर्वाह कहाँ, बुद्धू बना दिया जाता। कोई मुल्ला की पदवी देता, कोई नासेह कहकर मजाक उड़ाता। मित्रगण व्यंग्य-भाव में कहते — हाय, अफसोस, तूने पी ही नहीं!' सारांश यह कि यहाँ मुझे उदार बनना पड़ा। मित्र को कमरे में चुस्कियाँ लगाते देखता और बैठा रहता। भंग घुटती और मैं देखा करता। लोग आग्रहपूर्वक कहते — 'अजी, जरा ले भी लो।' तो विनीत भाव से कहता — 'क्षमा कीजिए यह मेरे सिस्टम को सूट नहीं करती।' सिद्धांत के बदले अब मुझे शारीरिक असमर्थता का बहाना करना पड़ा। वह सत्याग्रह का जोश, जिसने पिताजी की बोतल पर हाथ साफ किया था, गायब हो गया था। यहाँ तक कि एक बार कॉलेज के चौथे वर्ष में मेरे लड़का पैदा होने की खबर मिली तो मेरी उदारता की हद हो गई। मैंने मित्रों के आग्रह से मजबूर होकर उनकी दावत की और अपने हाथों से ढाल-ढालकर उन्हें पिलाई। उस दिन साकी बनने में हार्दिक आनन्द मिल रहा था। उदारता वास्तव में सिद्धान्त से गिर जाने, आदर्श से च्युत हो जाने का ही दूसरा नाम हैं। अपने मन को समझाने के लिए

युक्तियों का अभाव कभी नहीं होता। संसार में सबसे आसान काम अपने को धोखा देना हैं। मैने खुद तो नहीं पीस पिला दी, इसमें मेरा क्या नुकसान? दोस्तों की दिलशिकनी तो नहीं की? मजा तो तभी हैं कि दूसरों को पिलाए और खुद न पिए।

खैर, कॉलेज से मैं बेदाग निकल आया। अपने शहर में वकालत शुरू की। सुबह से आधी रात तक चक्की में जुतना पड़ा। कॉलेज के सैर-सपाटे, आमोद-विनोद, सब स्वप्न हो गए। मित्रों की आमदपरत बन्द हुई। यहाँ तक की छुट्टियों में भी दम मारने की फुरसत न मिलती। जीवन-संग्राम कितना विकट हैं, इसका अनुभव हुआ। यह संग्राम कहना ही भ्रम हैं। संग्राम की उमंग, उत्तेजना, वीरता और जय-ध्वनि यहाँ कहाँ? यह संग्राम नहीं हैं, ठेलम-ठेल, धक्का-पेल हैं। यहाँ 'चाहे धक्के खाएँ, मगर तमाशा घुसकर देखे' की दशा हैं। माशूक का वस्ल कहाँ, उसकी चौखट को चूमना, दरबान की गालियाँ खाना और अपना-सा मुँह लेकर चले आना। दिन-भर बैठे-बैठे अरूचि हो जाती। मुश्किल से दो चपातियाँ खाता और मन में कहता — क्या इन्हीं दो चपातियों के लिए यह सिर-मग्जन और दादी-रेजी हैं? मरो, खपो और व्यर्थ के लिए!' इसके साथ यह अरमान भी था कि अपनी मोटर हो, विशाल भवन हो, थोड़ी-सी जमींदारी हो, कुछ रुपए बैंक में हो। पर यह सब हुआ भी तो मुझे क्या? संतान उनका सुख भोगेगी, मैं तो व्यर्थ

ही मरा। मैं तो खजाने की साँप ही रही। नहीं, यह नहीं हो सकता, मैं दूसरों के लिए ही प्राण न दूँगा, अपनी मेहनत का मजा खुद भी चखूँगा, क्या करूँ? कहीं सैर करने चलूँ? मुवक्किल तितर बितर हो जाएँगे! ऐसा नामी वकील तो हूँ नहीं कि मेरे बगैर काम ही न चले और कतिपय नेताओं की भाँति असहयोग–व्रत धारण करने पर भी कोई बड़ा शिकार देखूँ तो झपट पड़ूँ। यहाँ तो पिद्दी, बटेर, हारिल इन्हीं सब पर निशाना मारना हैं। फिर क्या रोज थिऐटर जाया करूँ? फिजूल हैं, कहीं दो बजे रात को सोना नसीब होगी। बिना मौत मर जाऊँगा। आखिर मेरे हमपेशा और भी तो हैं? वे क्या करते हैं जो उन्हें बराबर खुश और मस्त देखता हूँ? मालूम होता हैं, उन्हें कोई चिन्ता ही नहीं हैं, स्वार्थ–सेवा अंग्रेजी शिक्षा का प्राण हैं। पूर्व सन्तान के लिए, यश के लिए, धर्म के लिए मरता हैं, पश्चिम अपने लिए। पूर्व में घर का स्वामी सबका होता हैं। वह सबसे ज्यादा काम करता, दूसरों को खिलाकर खाता, दूसरों को पहनाकर पहनता हैं। किन्तु पश्चिम में वह सबसे अच्छा खाना, अच्छा पहनना अपना अधिकार समझता हैं। यहाँ परिवार सर्वोपरि हैं, वहाँ व्यक्ति सर्वोपरि हैं। हम बाहर से पूर्व और भीतर से पश्चिम हैं। हमारे सत् आदर्श दिन–दिन लुप्त होते जा रहे हैं। मैंने सोचना शुरु किया, इतने दिनों की तपस्या से मुझे क्या मिल गया? दिन–भर छाती फाड़कर काम

करता हूँ, आधी रात को मुँह ढाँपकर सोए रहता हूँ। यह भी क्या जिन्दगी हैं? कोई सुख नहीं, मनोरंजन का कोई सामान नहीं। दिन–भर काम करने के बाद टेनिस क्या खाक खेलूँगा? हवाखोरी के लिए भी तो पैरों में जूता चाहिए! ऐसे जीवन को रसमय बनाने के लिए एक ही उपाय हैं– आत्म–विस्मृति, जो एक क्षण के लिए मुझे संसार की चिन्ताओं से मुक्त कर दे। मैं अपनी परिस्थिति को भूल जाऊँ। अपने को भूल जाऊँ, जरा हँसूँ, जरा कहकहा मारूँ, जरा मन में स्फूर्ति आए। केवल एक ही बूटी हैं, जिसमें यह गुण हैं और वह मैं जानता हूँ। कहाँ की प्रतिज्ञा, कहाँ का व्रत, वे बचपन की बातें थी। उस समय क्या जानता था कि मेरी यह हालत होगा? नव स्फूर्ति का बाहुल्य था, पैरों में शक्ति थी, घोड़े पर सवार होने की क्या जरूरत थी? तब जवानी की नशा था, अब वह कहाँ? यह भावना मेरे पूर्व संचित समय की जड़ों को हिलाने लगी। यह नित्य नई–नई युक्तियों से सशक्त होकर आती थी। क्यों, क्या तुम्हीं सबसे अधिक बुद्धिमान हो? सब तो पीते हैं, जजों को देखो इजलास छोड़कर जाते हैं और पी आते हैं। प्राचीनकाल में ऐसे व्रत निभ जाते थे, जब जीविका इतनी प्राणधातक न थी। लोग हँसेंगे ही न कि बड़े व्रतधारी की दुम बने थे। आखिर आ गए न चक्कर में! हँसने दो, मैंने नाहक व्रत लिया। उसी व्रत के कारण इतने दिनों की तपस्या करनी पड़ी। नहीं पी तो कौन–सा

बड़ा आदमी हो गया, कौन सा सम्मान पा लिया? पहले किताबों में पढ़ा करता था, यह हानि होती हैं, वह हानि होती हैं, मगर कहीं तो नुकसान होते नहीं देखा। हाँ, पियक्कड़, मदमस्त हो जाने की बात और हैं। उस तरह तो अच्छी–से–अच्छी वस्तु का दुरुपयोग भी हानिप्रद होता हैं। ज्ञान भी जब सीमा से बाहर हो जाता हैं, नास्तिकता के क्षेत्र में पहुँचता हैं। पीना चाहिए एकान्त में, चेतना को जाग्रत करने के लिए, सुलाने के लिए नहीं। बस पहले दिन जरा–जरा झिझक होगी, फिर किसका डर हैं। ऐसी आयोजना करनी चाहिए कि लोग मुझे जबरदस्ती पिला दें, जिसमें अपनी शान बनी रहे। जब एक दिन प्रतिज्ञा टूट जाएगी तो फिर मुझे अपनी सफाई पेश करने की जरूरत न रहेगी। घरवालों के सामने भी आँखें नीची न करनी पड़ेगी।

2

मैंने निश्चय किया, यह अभिनय होली के दिन हो, इस दीक्षा के लिए इससे उत्तम मुहूर्त कौन–सा होगा? होली पीने–पिलाने का दिन है, उस दिन मस्त हो जाना क्षम्य हैं। पवित्र होली अगर हो

सकती हैं तो पवित्र चोरी, पवित्र रिश्वत–सितानी भी हो सकता हैं।

होली आई, अबकी बहुत इंतजार के बाद आई। मैंने दीक्षा लेने की तैयारी शुरू की। कई पीने वालों को निमंत्रित किया। केलनर की दुकान से व्हिस्की और शेम्पेन मँगवाई। लेमनेड, सोड़ा, बर्फ, गजक, खमीरा तम्बाकू वगैरह सब सामान मँगवा कर लैस कर दिया। कमरा बहुत बड़ा न था। कानूनी किताबों की अलमारियाँ हटवा दी। फर्श बिछ्वा दिया और शाम को मित्रों का इंतजार करने लगा, जैसे चिड़िया पंख फैलाए बहेलियों को बुला रही हो।

मित्रगण एक–एक करके आने लगे। नौ बजते–बजते सब–के–सब आ विराजे। उनमें कई तो ऐसे थे, चुल्लू में उल्लू हो जाते थे। पर कितने ही कुम्भज ऋषि के अनुयायी थे — पूरे समुद्र–सोख, बोतल–की–बोतल गटागट पी जाएँ और आँखों में सुर्खी न आए! मैंने बोतल, गिलास और गजक की तस्तरियाँ सामने लाकर रखीं।

एक महाशय बोले — यार, बर्फ और सोड़े के बगैर लुत्फ न आएगा।

मैने उत्तर दिया — मँगवा रखा हैं, भूल गया था।

एक — तो फिर बिस्मिल्ला हो।

दूसरा — साकी कौन होगा?

मैं — यह खिदमत मेरे सुपुर्द कीजिए।

मैंने प्यालियाँ भर-भर कर देनी शुरू की और यार लोग पीने लगे। हू-हक का बाजार गर्म हुआ। अश्लील हास-परिहास की आँधी-सी चलने लगी। पर मुझे कोई न पूछता था, खूब अच्छा उल्लू बना! शायद मुझसे कहते हुए सकुचाते हैं, कोई मजाक से भी नहीं कहता, मानो मैं वैष्णव हूँ। इन्हें कैसे इशारा करूँ? आखिर सोचकर बोला — मैंने तो कभी पी ही नहीं।

एक मित्र — क्यों नहीं पी? ईश्वर के यहाँ आपको इसका जवाब देना पड़ेगा!

दूसरा — फरमाइए जनाब, फरमाइए, फरमाइए, क्या जवाब दीजिएगा। मैं ही उसकी तरफ से पूछता हूँ — क्यों नहीं पीते?

मैं — अपनी तबीयत, नहीं जी चाहता।

दूसरा — यह तो कोई जवाब नहीं, कोदो देकर वकालत पास की थी क्या?

तीसरा — जवाब दीजिए, जवाब। दीजिए, दीजिए, आपने समझा क्या हैं ईश्वर को आपने ऐसा-वैसा समझ लिया हैं क्या?

दूसरा — क्या आपको कोई धार्मिक आपत्ति है?

मैंने कहा — हो सकता है।

तीसरा — वाह रे धर्मात्मा! क्यों न हों, आप बड़े महात्मा हैं, जरा आपकी दुम देखूँ?

मैं — क्या धर्मात्मा आदमियों के दुम होती है?

चौथा — और क्या, किसी के हाथ की, किसी के दो हाथ की। आप हैं किस फेर में? दुमदारों के सिवा आज धर्मात्मा है ही कौन? हम सब पापात्मा हैं।

तीसरा — धर्मात्मा वकील, ओ हो, धर्मात्मा वेश्या, ओ–हो!

दूसरा — धार्मिक आपत्ति तो आपको हो ही नहीं सकती, वकील होना धार्मिक विचारों से शून्य होने का चिह्न है।

मैं — भाई, मुझे सूट नहीं करती?

तीसरा — अब मार लिया, मूजी को मार लिया। आपको सूट नहीं करती, मैं सूट करा दूँ?

दूसरा — क्या किसी डॉक्टर ने मना किया है?

मैं — नहीं।

तीसरा — वाह–वाह! आप खुद ही डॉक्टर बन गए। अमृत आपको सूट नहीं करता। अरे धर्मात्माजी, एक बार पी के देखिए।

दूसरा — मुझे आपके मुँह से यह सुनकर आश्चर्य हुआ। भाईजी, यह दवा हैं, महौषधि हैं। यही सोम–रस हैं। कहीं आपने टेंपरेंस की प्रतिज्ञा तो नहीं ले ली हैं।

मैं — मान लीजिए, ली हो तो?

तीसरा — तो आप बुद्धू हैं, सीधे–सीधे कोरे बुद्धू!

चौथे ने यह शेर गुनगुनाया —

'जाम चलने को है सब, अहले–नजर बैठे हैं,
आँख साकी न चुराना, हम इधर बैठे हैं।'

दूसरा — हम सभी टेंपरेंस के प्रतिज्ञाधारी हैं, पर जब वह हम ही नहीं रहे तो वह प्रतिज्ञा कहाँ रही? हमारे नाम वही हैं, पर हम वह नहीं हैं। जहाँ लड़कपन की बातें गई, वहीं वह प्रतिज्ञा भी गई।

मैं — आखिर इससे फायदा क्या हैं?

दूसरा — यह तो पीने ही से मालूम हो सकता हैं। एक प्याली पीजिए, फायदा न मालूम हो तो फिर न पीजिएगा।

तीसरा –'मारा, मारा, अब मूजी को पिलाकर छोड़ेंगे।

चौथे ने शेर पढ़ा —

'ऐसे मयख्वार हैं दिन–रात पिया करते हैं
हम तो सोते में तेरा नाम लिया करते हैं।'

पहला — तुम लोगों से न बनेगा, मैं पिलाना जानता हूँ।

यह महाशय मोटे–ताजे आदमी थे। मेरा टेंटुआ दबाया और प्याली मुँह से लगा दी। मेरी प्रतिज्ञा टूट गई। मुराद मिल गई, किन्तु बनावटी क्रोध से बोला — आप लोग अपने साथ मुझे भी ले डूबे।

दूसरा — मुबारक हो, मुबारक!

तीसरा — मुबारक, मुबारक, सौ बार मुबारक।

3

नवदीक्षित मनुष्य बड़ा धर्मपरायण होता हैं। मैं सन्ध्या समय दिन–भर की वाग्वितंडा से छुटकारा पाकर जब एकान्त में अथवा दो–चार मित्रों के साथ बैठकर प्याले–पर–प्याले चढ़ाता, तो चित्त उल्लासित हो उठता था। रात को निद्रा खूब आती थी। पर प्रातःकाल अंग–अंग में पीड़ा होती, अँगड़ाइयाँ आती। मस्तिष्क

शिथिल हो जाता। यही जी चाहता कि आराम से पलंग पर लेटा जाए तो अति उत्तम हैं, मेरे मन में भी बात बैठ गई। मुँह–हाथ धोकर पहले सन्ध्या किया था, अब मुँह हाथ धोकर चट अपने कमरे के एकांत में लेकर बैठ जाता। मैं इतना जानता था कि नशीली चीजों का चस्का बुरा होता, आदमी धीरे–धीरे उसका दास हो जाता हैं। यहाँ तक कि वह उनके बगैर कुछ काम ही नहीं कर सकता। परन्तु ये बातें जानते हुए भी मैं उनके वशीभूत होता जाता था। यहाँ तक नौबत पहुँची कि नशे के बगैर कुछ काम ही न कर सकता। जिसे आमोद के लिए लगाया था, वह साल ही भर में मेरे लिए जल और वायु की भाँति अत्यन्त आवश्यक हो गई। अगर कभी किसी मुकदमें में बहस करते–करते देर हो जाती तो ऐसी थकावट चढ़ती थी, मानो मंजिलों चला हूँ। उस दशा में घर आता, तो अनायास ही बात–बात पर झुँझलाता। कहीं नौकर को डाँटता, कहीं बच्चों को पीटता, कहीं स्त्री पर गरम होता। यह सब कुछ था, पर मैं कतिपय अन्य शराबियों की भाँति नशा आते ही दून की न लेता था। अनर्गल बातें न करता था, हल्ला न मचाता था। न मेरे स्वास्थ्य पर ही मदिरा–सेवन का कुछ बुरा असर नजर न आता था।

बरसात के दिन थे। नदी–नाले बढ़े हुए थे। हुक्काम बरसात में भी दौरे करते थे। उन्हें अपने भत्ते से मतलब, प्रजा को कितना

कष्ट होता हैं, इससे उन्हें कुछ सरोकार नहीं। मैं एक मुकदमे में दौरे पर गया। अनुमान किया था कि सन्ध्या तक लौट आऊँगा, मगर नदियों का चढ़ाव–उतार पड़ा। दस बजे पहुँचने के बदले शाम को पहुँचा। जंट साहब मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुकदमा पेश हुआ, लेकिन बहस खत्म होते–होते रात के नौ बज गए। मैं अपनी हालत क्या कहूँ। जी चाहता था, जंट–साहब को नोच खाऊँ। कभी अपने प्रतिपक्षी वकील की दाढ़ी नोचने को जी चाहता था, जिसने बरबस बहस को इतना बढ़ाया। कभी जी चाहता था, अपना सिर पीट लूँ। मुझे सोच लेना चाहिए था कि आज को देर हो गई तो? जंट मेरा गुलाम तो हैं नहीं कि जो मेरी इच्छा हो। वहीं करे, न खड़े रहा जाता, न बैठे। छोटे–मोटे पियक्कड़ मेरी दुर्दशा की कल्पना नहीं कर सकते।

खैर, नौ बजते–बजते मुकदमा समाप्त हुआ। पर अब जाऊँ कहाँ? बरसात की रात, कोसों तक आबादी का पता नहीं। घर लौटना कठिन ही नहीं, असम्भव। आस–पास भी कोई ऐसा गाँव नहीं, जहाँ संजीवनी मिल सके। गाँव हो भी तो वहाँ जाए कौन? वकील कोई थानेदार नहीं कि किसी को बेगार में भेज दे। बड़े संकट में पड़ा हुआ था। मुवक्किल चले गए, दर्शक चले गए, बेगार चले गए। मेरा प्रतिद्वन्द्वी मुसलमान चपरासी के दस्तरखान के शरीक होकर डाकबंगले के बरामदे में पड़ा रहा। पर मैं क्या करूँ? यहाँ

तो प्राणान्त–सा हो रहा था। वही बरामदे में टाट पर बैठा अपनी किस्मत को रो रहा था। न नींद ही आती थी कि इस कष्ट को भूल जाऊँ। अपने को उसी की गोद में सौंप दूँ। गुस्सा अलबत्ते था कि वह दूसरा वकील कितनी मीठी नींद सो रहा हैं मानो ससुराल में सुख–सेज पर सोया हुआ हैं।

इधर तो मेरा यह बुरा हाल था, उधर डाकबंगले में साहब बहादुर गिलास पर गिलास चढ़ा रहे थे। शराब के ढालने की मधुर ध्वनि कानों में आकर चित्त को और भी व्याकुल कर देती। मुझसे बैठे न रहा गया। धीरे–धीरे चिक के पास गया और अन्दर झाँकने लगा। आह! कैसा जीवनप्रद दृश्य था। सफेद बिल्लौर के गिलास में बर्फ और सोडावाटर से अलंकृत अरुण–मुख कामिनी शोभायमान थी। मुँह में पानी भर आया। उस समय कोई मेरा चित्र उतारता तो लोलुपता के चित्रण में बाजी मार ले जाता। साहब को आँखों में सुर्खी थीं, मुँह पर सुर्खी थी। एकान्त में बैठा पीता और मानसिक उल्लास की लहर एक अंग्रेजी गीत गाता था। कहाँ वह स्वर्ग का सुख और कहाँ यह मेरा नरकभोग! कई बार प्रबल इच्छा हुई कि साहब के पास चलकर एक गिलास मागूँ। पर डर लगता था कि कहीं शराब के बदले ठोकर मिलने लगे तो यहाँ कोई फरियाद सुननेवाला भी नहीं।

मैं वहाँ तब तक खड़ा रहा, जब तक साहब का भोजन समाप्त न हो गया। मनचाहे भोजन और सुरा–सेवन के उपरान्त उसने खानसामा को मेज साफ करने के लिए बुलाया। खानसामा वहीं मेज के नीचे बैठा ऊँघ रहा था। उठा और प्लेट लेकर बाहर निकला तो मुझे देखकर चौंक पड़ा।

मैंने शीघ्र ही उसको आश्वासन दिया — डरो मत, डरो मत, मैं हूँ।

खानसामा ने चकित होकर कहा — आप हैं वकील साहब, क्या हुजूर यहाँ खड़े थे?

मैं — हाँ, जरा देखता था कि ये सब कैसे खाते–पीते हैं, बहुत शराब पीता हैं।'

खानसामा — अजी कुछ पूछिए मत, दो बोतल दिन–रात में साफ कर डालता हैं। 20 रुपए रोज की शराब पी जाता हैं, दौरे पर चलता हैं तो चार दर्जन बोतलों से कम साथ नहीं रखता।

मैं — मुझे भी कुछ आदत हैं, पर आज न मिली।

खानसामा — तब तो बड़ी तकलीफ हो रही होगी?

मैं — क्या करूँ, यहाँ तो कोई दुकान भी नहीं। समझता था, जल्दी ही मुकदमा हो जाएगा। घर लौट जाऊँगा, इसीलिए कोई सामान साथ न लाया।

खानसामा — मुझे तो अफीम का आदत हैं। एक दिन न मिले तो बावला हो जाता हूँ। अमल वाले को चाहे कुछ मिले, अमल मिल जाए तो उसे कोई फिक्र नहीं। खाना चाहे तीन दिन में मिले।

मैं — वहीं हाल हैं भाई, भुगत रहा हूँ। ऐसा मालूम होता हैं, बदन में जान ही नहीं हैं।

खानसामा — हुजूर को कम-से-कम एक बोतल साथ रख लेनी चाहिए थी, जेब में डाल लेते।

मैं — इतनी ही तो भूल हुई, नहीं तो रोना काहे का था।

खानसामा — नींद न आती होगी?

मैं — कैसी नींद, दम लबों पर हैं, न जाने रात कैसे गुजरेगी।

मैं चाहता था, खानसामा अपनी तरफ से मेरी अग्नि शान्त करने का प्रस्ताव करे, जिससे मुझे लज्जित न होना पड़े। पर खानसामा चंट था, बोला — अल्लाह का नाम लेकर सो जाइए, नींद कब तक न आएगी।

मैं — नींद तो न आएगी, हाँ, मर भले ही जाऊँगा। क्या साहब बोतलें गिनकर रखते हैं? गिनते तो क्या होगे?

खानसामा — अरे हुजूर, एक ही मूजी हैं। बोतल पूरी नहीं होती तो उस पर निशान बना देता हैं। मजाल हैं कि एक बूँद भी कम हो जाए।

मैं — बड़ी मुसीबत हैं। मुझे तो एक गिलास चाहिए, बस, इतना ही चाहता हूँ नींद आ जाए। जो इनाम कहो, वह दूँ।'

खानसामा — इनाम तो हुजूर देंगे ही। लेकिन खौफ यहीं हैं कि कहीं भाँप गया तो फिर मुझे जिन्दा न छोड़ेगा।'

मैं — यार, लाओ, अब ज्यादा सब्र की ताब नही हैं।'

खानसामा — आपके लिए जान भी हाजिर हैं, पर एक बोतल 10 रुपए में आती हैं। मैं कल किसी बेगार से मँगाकर तादाद पूरी कर दूँगा।'

मैं — एक बोतल थोड़े ही पी जाऊँगा।'

खानसामा — साथ लेते जाइएगा हुजूर! आधी बोतल खाली मेरे पास रहेगी तो उसे फौरन शुबहा हो जाएगा। बड़ा शक्की हैं, मेरा मुँह सूँघा करता हैं कि इतने पी न ली हो।'

मुझे 20 रुपए मेहनताने के मिले थे। दिन–भर की कमाई का आधा देते हुए कसक तो हुई, पर दूसरा उपाय ही क्या था? चुपके से 10 रुपए निकाल कर खानसामा के हवाले किए। उसने एक बोतल अंग्रेजी शराब मुझे ला दी। बर्फ और सोडा भी लेता आया। मैं वहीं अंधेरे में बोतल खोलकर अपनी परितप्त आत्मा को सुधा–जल से सिंचित करने लगा।

क्या जानता था कि बिधना मेरे लिए कोई दूसरा ही षडयंत्र रच रहा हैं। विष पिलाने की तैयारियाँ कर रहा हैं।

4

नशे की नींद का पूछना ही क्या? उस पर व्हिस्की की आधी बोतल चढ़ा गया था। दिन चढ़े तक सोता रहा। कोई आठ बजे झाड़ू लगाने वाले मेहतर ने जगाया तो नींद खुली। शराब की बोतल और गिलास सिरहाने रखकर छतरी से छिपा दिया था। ऊपर से अपना गाउन डाल दिया था। उठते–ही–उठते ही सिरहाने निगाह गई। बोतल और गिलास का पता न था। कलेजा धक से हो गया। खानसामा को खोजने लगा कि पूछूँ, उसने तो नहीं उठा कर रख दिया। इस विचार से उठा और

टहलता हुआ डाकबंगले के पिछवाड़े गया। जहाँ नौकरों के लिए अलग कमरे बने हुए थे। पर वहाँ का भयंकर दृश्य देखकर आगे कदम बढ़ाने का साहस न हुआ।

साहब खानसामा का कान पकड़े हुए थे। शराब की बोतलें अलग-अगल रखी हुई थी। साहब एक, दो, तीन करके गिनते थे और खानसामा से पूछते, एक बोतल और कहाँ गया? खानसामा कहता था — हुजूर, खुदा मेरा मुँह काला करे जो मैं कुछ भी दगल-फसल की हो।

साहब — हम क्या झूठ बोलता हैं? 29 बोतल नहीं था?

खानसामा — हुजूर, खुदा की कसम मुझे नहीं मालूम, कितनी बोतलें थी।

इस पर साहब ने खानसामा को कई तमाचे लगाए, फिर कहा — तुम गिने, तुम न बताएगा तो हम तुमको जान से मार डालेगा। हमारा कुछ नहीं हो सकता, हम हाकिम हैं और हाकिम लोग हमारा दोस्त हैं। हम तुमको अभी-अभी मार डालेगा। नहीं तो बतला दे, एक बोतल कहाँ गया?'

मेरे प्राण सूख गए। बहुत दिनों के बाद ईश्वर की याद आई। मन-ही-मन गोवर्धनधारी का स्मरण करने लगा, अब लाज तुम्हारे हाथ हैं, भगवान्! तुम्हीं बचाओ तो नैया बच सकती हैं, नहीं तो

मझधार में डूबी जाती हैं। अंग्रेज हैं, न जाने क्या मुसीबत ढा दें। भगवान्! खानसामा का मुँह बन्द कर दो। उसकी वाणी हर लो। तुमने बड़े-बड़े द्रोहियों और दुष्टों की रक्षा की हैं। अजामिल को तुम्हीं ने तारा था। मैं भी द्रोही हूँ, द्रोहियों का द्रोही हूँ। मेरा संकट हरो, अबकी जान बची तो शराब की ओर आँख भी न उठाऊँगा।

मार के आगे भूत भागता हैं। मुझे प्रतिक्षण यह शंका होती थी कि कहीं यह लोकोक्ति चरितार्थ न हो जाए। कहीं खानसामा खुल न पड़े, नहीं तो खैर नहीं! सनद छीने जाने का, चोरी का मुकदमा चल जाने का अथवा जज साहब से तिरस्कृत किए जाने का इतना भय न था, जितना साहब के पदाघात का लक्ष्य बनने का। जालिम हंटर लेकर दौड़ न पड़े। यों मैं इतना दुर्बल नहीं हूँ। हृष्ट-पुष्ट और साहसी मनुष्य हूँ। कॉलेज में खेल-कूद के लिए पारितोषिक पा चुका हूँ। अब भी बरसात में दो महीने मुग्दर फेर लेता हूँ। लेकिन उस समय भय के मारे बुरा हाल था। मेरे नैतिक बल का आधार पहले ही नष्ट हो चुका था। चोर में बल कहाँ — मेरा भविष्य, मेरा जीवन खानसामा के केवल एक शब्द पर निर्भर था — केवल एक शब्द पर। किसका जीवन-सूत्र इतना क्षीण, इतना जीर्ण, इतना जर्जर होगा।

मैं मन ही मन प्रतिज्ञा कर रहा था — शराबियों की तोबा नही, सच्ची,दृढ़ प्रतिज्ञा कि इस संकट से बचा तो फिर शराब न पीऊँगा। मैंने अपने मन को चारों ओर से बाँध रखने के लिए, उसके कुतर्कों को द्वार बन्द करने के लिए एक भीषण शपथ खाई।

मगर हाय रे दुर्देव! कोई सहायक न हुआ, न गोवर्धनधारी न सुध ली, न नृसिंह भगवान ने। वे सब सत्ययुग में आया करते थे। न प्रतिज्ञा कुछ काम आई, न शपथ का कुछ असर हुआ। मेरे भाग्य या दुर्भाग्य में जो कुछ बदा था, वह होकर रहा। बिधना ने प्रतिज्ञा सुदृढ़ करने के लिए इस शपथ को यथेष्ठ न समझा।

खानसामा बेचारा अपनी बात का धनी था। थप्पड़ खाए, ठोकर खाई, दाढ़ी नुचवाई, पर न खुला। बड़ा सत्यवादी, वीर पुरुष था। मैं शायद ऐसी दशा में इतना अटल न रह सकता। शायद पहले ही थप्पड़ में उगल देता। उसकी ओर से जो घोर शंका हो रही थी, वह निर्मूल सिद्ध हुई। जब तक जिऊँगा, उस वीरात्मा का गुणानुवाद रहूँगा।

पर मेरे ऊपर दूसरी ही ओर से वज्रपात हुआ।

5

खानसामा पर जब मार–धाड़ का कुछ असर न हुआ तो साहब उसके कान पकड़े हुए डाकबंगले की तरफ चले। मैंने उन्हें आते देखा तो चटपट सामने बरामदे में जा बैठा और ऐसा मुँह बना लिया मानो कुछ जानता ही नहीं। साहब ने खानसामा को लाकर मेरे सामने खड़ा कर दिया। मैं भी उठ कर खड़ा हो गया। उस समय यदि कोई मेरे हृदय को चीरता तो रक्त की एक बूँद भी न निकलती।

साहब ने मुझसे पूछा — वेल वकील साहब, तुम शराब पीता हैं?

मैं इनकार न कर सका।

'तुमने रात शराब पी थी?'

मैं इनकार न कर सका।

'तुमने मेरे इस खानसामा से शराब ली थी?'

मैं इनकार न कर सका।

'तुमने रात को शराब पीकर बोतल और गिलास अपने सिर के नीचे छिपाकर रखा था?'

मैं इनकार न कर सका। मुझे भय था कि खानसामा न कहीं खुल पड़े, पर उलटे मैं ही खुल पड़ा।

'तुम जानता हैं, यह चोरी हैं?'

मैं इनकार न कर सका।

'हम तुम को मअत्तल कर सकता हैं। तुम्हारा सनद छीन सकता हैं। तुमको जेल भेज सकता हैं।'

यथार्थ ही था।

'हम तुमको ठोकरों से मारकर गिरा सकता हैं। हमारा कुछ नही हो सकता।'

यथार्थ ही था।

'तुम काला आदमी वकील बनता हैं। खानसामा से चोरी की शराब लेता हैं, तुम सूअर! लेकिन हम तुमको वहीं सजा देगा, जो तुम पसंद करे, तुम क्या चाहता हैं?'

मैंने काँपते हुए कहा — हुजूर, माफी चाहता हूँ।

'नहीं, हम सजा पूछता हैं।'

'जो हुजूर मुनासिब समझें।'

'अच्छा, यही होगा।'

यह कहकर उस निर्दयी, नरपिशाच ने दो सिपाहियों को बुलाया, और उसने मेरे दोनों हाथ पकड़वा दिए। मैं मौन धारण किए इस तरह सिर झुकाए खड़ा रहा, जैसे कोई लड़का अध्यापक के सामने बेंत खाने को खड़ा होता हैं। इसका मुझे क्या दंड देने का विचार हैं? कहीं मेरी मुश्कें तो न कसवाएगा, या कान पकड़कर उठा–बैठी तो न करवाएगा। देवताओं से सहायता मिलने की कोई आशा तो न थी। पर अदृश्य का आवाहन करने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या था!

मुझे सिपाहियों के हाथ छोड़कर साहब दफ्तर गए और वहाँ से मोहर छापने की स्याही और ब्रश लिए हुए निकले। अब मेरी आँखों से अश्रुपात होने लगा। यह घोर अपमान और थोड़ी–सी शराब के लिए, वह भी दुगने दाम देने पर।

साहब ब्रश से मेरे मुँह में कालिमा पोत रहे थे। वह कालिमा जिसे धोने के लिए सेरों साबुन की जरुरत थी और मैं भीगी बिल्ली की भाँति खड़ा था। उन दोनों यमदूतों को भी मुझ पर दया न आती थी। दोनों हिन्दुस्तानी थे, पर उन्हीं के हाथों मेरी यह दुर्दशा हो रही था। इस देश को स्वराज मिल चुका!

साहब कालिमा पोतते और हँसते जाते थे। यहाँ तक कि आँखों के सिवा तिल–भर भी जगह न बची! थोड़ी–सी शराब के लिए

आदमी को वनमानुष बनाया जा रहा था। दिल में सोच रहा था, यहाँ से जाते–ही–जाते बचा पर मानहानि की नालिश कर दूँगा या किसी बदमाश से कह दूँगा, इजलास ही पर बचा की जूतों से खबर ले।

मुझे वनमानुष बनाकर साहब ने मेरे हाथ छुड़वा दिए और ताली बजाता हुआ मेरे पीछे दौड़ा। नौ बजे का समय था। कर्मचारी, मुवक्किल, चपरासी सभी आ गए। सैंकड़ों आदमी जमा थे। मुझे न जाने क्या शामत सूझी कि वहाँ से भागा। यह उस प्रहसन का सबसे करुणाजनक दृश्य था। आगे–आगे मैं दौड़ता जाता था, पीछे–पीछे साहब और अन्य सैंकड़ों आदमी तालियाँ बजाते, 'जाने ना पाए' का गुल मचाते दौड़ते जाते थे, मानो किसी बन्दर को भगा रहे हो।

लगभग एक मील तक यह दौड़ रही। वह तो कहो मैं कसरती आदमी हूँ, बचकर निकल आया, नहीं तो मेरी न जाने और क्या दुर्गति होती। शायद मुझे गधे पर बिठाकर घुमाना चाहते थे। जब सब पीछे रह गए तो मैं एक नाले के किनारे बेदम होकर बैठा रहा। अब मुझे सूझी कि यहाँ कोई आया तो पत्थरों से मारे बिना न छोड़ूँगा, चाहे उल्टी पड़े या सीधी। किन्तु मैंने नाले में मुँह धोने की चेष्टा नही की। जानता था कि पानी से कालिमा न छूटेगी। यही सोचता रहा कि इस अंग्रेज पर कैसे अभियोग

चलाऊँ? यह तो छिपाना ही पड़ेगा कि मैंने इसके खानसामा से चोरी की शराब ली। अगर यह बात साबित हो गई। उल्टा मैं ही फँस जाऊँगा। क्या हरज हैं, इतना छिपा दूँगा। शत्रुता का कारण कुछ और ही दिखा दूँगा, पर मुकदमा जरूर चलाना चाहिए।

जाऊँ कहाँ? यह कालिमा–मंडित मुँह किसे दिखाऊँ! हाय! बदमाश को कालिख ही लगानी थी, तो क्या तवे में कालिख न थी, लैम्प में कालिख न थी! कम–से–कम छूट तो जाती। जितना अपमान हुआ हैं, वहीं तक रहता। अब तो मैं मानो अपने कुकृत्य का स्वयं ढिंढोरा पीट रहा हूँ। दूसरा होता तो इतनी दुर्गति पर डूब मरता!

गनीमत यही थी कि अभी तक रास्ते में किसी से मुलाकात नहीं हुई थी, नहीं तो उसे कालिमा सम्बन्धी प्रश्नो का क्या उत्तर देता? जब जरा थकन कम हुई तो मैंने सोचा, यहाँ कब तक बैठा रहूँगा! लाओ, एक बार यत्न करके देखूँ तो शायद स्याही छूट जाए। मैंने बालू से मुँह रगड़ना शुरू किया। देखा, तो स्याही छूट रही थी। उस समय मुझे जितना आनन्द हुई, उसकी कौन कल्पना कर सकता हैं। फिर तो मेरा हौसला बढ़ा। मैंने मुँह को इतना रगड़ा कि कई जगह चमड़ा तक छिल गया, किन्तु वह कालिमा छुड़ाने के लिए मुझे इस समय बड़ी–से–बड़ी पीड़ा भी तुच्छ जान पड़ती

थी। यद्यपि मैं नंगे सिर था, केवल कुर्ता और धोती पहने हुए था, पर यह कोई अपमान की बात नहीं। गाउन, अचकन, पगड़ी डाकबंगले ही में रह गई। इसकी मुझे चिन्ता न थी। कालिख तो छूट गई।

लेकिन कालिमा छूट जाती हैं, पर उसका दाग दिल से कभी नहीं मिटता। इस घटना को आज बहुत दिन हो गए। पूरे पाँच साल हुए, मैं शराब का नाम नहीं लिया, पीने की कौन कहे। कदाचित् मुझे सन्मार्ग पर लाने के लिए यह ईश्वरीय विधान था। कोई युक्ति, कोई तर्क, कोई चुटकी मुझ पर इतना स्थायी प्रभाव न डाल सकती थी। सुफल को देखते हुए तो मैं यही कहूँगा कि जो कुछ हुआ बहुत अच्छा हुआ। वहीं होना चाहिए था, पर उस समय दिल पर जो गुजरी थी, उसे याद करके आज भी नींद उचट जाती हैं।

अब विपत्ति-कथा को क्यों तूल दूँ। पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। खबर तो फैल गई। किन्तु मैने झेंपने और शरमाने के बदले बेहयाई से काम लेना अधिक अनुकूल समझा। अपनी बेवकूफी पर हँसता था और बेधड़क अपनी दुर्दशा की कथा कहता था। हाँ, चालाकी यह कि कि उसमें कुछ थोड़ा-सा अपनी तरफ से बढ़ा दिया, अर्थात् रात को जब मुझे नशा चढ़ा तो मैं बोतल और गिलास लिए साहब के कमरे में घुस गया और उसे

कुर्सी से पटक कर खूब मारा। इस क्षेपक से मेरी दलित, अपमानित, मर्दित आत्मा को थोड़ी–सी तस्कीन होती थी। दिल पर जो कुछ गुजरी, वह दिल ही जानता हैं।

सबसे बड़ा भय मुझे यह था कि कहीं यह बात मेरी पत्नी के कानों तक न पहुँचे, नहीं तो उन्हें बड़ा दुख होगा। मालूम नहीं उन्होंने सुना या नहीं, पर मुझसे इसकी चर्चा नहीं की।

क्षमा

मुसलमानों को स्पेन-देश पर राज्य करते कई शताब्दियाँ बीत चुकी थी। कलीसाओं की जगह मसजिदें बनती थीं। घंटों की जगह अजान की आवाजें सुनाई देती थी। गरनाता और अलहमरा में वे समय की नश्वर गति पर हँसनेवाले प्रासाद बन चुके थे, जिनके खंडहर अब तक देखने वालों को अपने पूर्व ऐश्वर्य की झलक दिखाते हैं। ईसाइयों के गणमान्य स्त्री और पुरुष मसीह की शरण छोड़कर इस्लामी भ्रातृत्व में सम्मिलित होते जाते थे, और आज तक इतिहासकारों को यह आश्चर्य हैं कि ईसाइयों का निशान वहाँ क्योंकर बाकी रहा! जो ईसाई-नेता अब तक मुसलमानों के सामने सिर न झुकाते थे, और अपने देश में स्वराज स्थापित करने का जो स्वप्न देख रहे थे उसमें एक सौदागर दाऊद भी था। दाऊद विद्वान और साहसी था। वह अपने इलाके में इस्लाम को कदन न जमाने देता था। दीन और निर्धन ईसाई विद्रोही देश के अन्य प्रान्तों से आकर उसके शरणागत होते थे और वह बड़ी उदारता से उनका पालन-पोषण करता। मुसलमान दाऊद से सशंक रहते थे। वे धर्म-बल से उस पर विजय न

पाकर उसे अस्त्र–बल से परास्त करना चाहते थे, पर दाऊद कभी उनका सामना न करता। हाँ, जहाँ कहीं ईसाइयों के मुसलमान होने की खबर पाता, हवा की तरह पहुँच जाता और तर्क या विनय से उन्हें अपने धर्म में रहने की प्रेरणा देता। अन्त में मुसलमानों ने उसे चारों तरफ से घेर कर उसे गिरफ्तार करने की तैयारी की। सेनाओं ने उसके इलाके को घेर लिया। दाऊद को प्राण–रक्षा के लिए अपने सम्बन्धियों के साथ भागना पड़ा। वह घर से भागकर गरनाता में आया, जहाँ उन दिनों इस्लामी राजधानी थी। वहाँ सबसे अलग रहकर वह अच्छे दिनों की प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत करने लगा। मुसलमानों के गुप्तचर उसका पता लगाने के लिए बहुत सिर मारते थे। उसे पकड़ लाने के लिए बड़े–बड़े इनामों की विज्ञप्ति निकाली जाती थी, पर दाऊद की टोह न मिलती।

2

एक दिन एकान्तवास से उकताकर दाऊद गरनाता के एक बाग में सैर करने चला गया। सन्ध्या हो गई थी। मुसलमान नीची अबाएँ पहने, बड़े–बड़े अमामे सिर पर बाँधे, कमर से तलवार

लटकाए रविशों में टहल रहे थे। स्त्रियाँ सफेद बुरके ओढ़े, जरी की जूतियाँ पहने बेंचों और कुर्सियों पर बैठी हुई थी। दाऊद सबसे अलग हरी–हरी घास पर लेटा हुआ सोच रहा था कि वह दिन कब आएगा जब हमारी जन्मभूमि इन अत्याचारियों के पंजे से छूटेगी! वह अतीत काल की कल्पना कर रहा था, जब ईसाई स्त्री और पुरुष इन रबिशों पर टहलते होंगे। जब यह स्थान ईसाइयों के परस्पर वाग्विलास से गुलजार होगा।

सहसा एक मुसलमान युवक आकर दाऊद के पास बैठ गया। वह उसे सिर से पाँव तक अपमानजनक दृष्टि से देखकर बोला — क्या अभी तक तुम्हारा हृदय इस्लाम की ज्योति से प्रकाशित नहीं हुआ?

दाऊद ने गम्भीर भाव से कहा — इस्लाम की ज्योति पर्वत–श्रृंगों को प्रकाशित कर सकती हैं, अंधेरी घाटियों मे उसका प्रवेश नहीं हो सकता।

उस मुसलमान अरब का नाम जमाल था, यह आक्षेप सुनकर तीखे स्वर में बोला — इससे तुम्हारा क्या मतलब हैं?

दाऊद — इससे मेरा मतलब यही हैं कि ईसाइयों में जो उच्च श्रेणी के हैं, वे जागीरों और राज्याधिकारों के लोभ तथा राजदंड के भय से इस्लाम की शरण में आ सकते हैं। पर दुर्बल और दीन

ईसाइयों के लिए इस्लाम में वह आसमान की बादशाहत कहाँ हैं जो हजरत मसीह के दामन में उन्हें नसीब होगी! इस्लाम का प्रचार तलवार के बल से हुआ हैं, सेवा के बल से नहीं।

जमाल अपने धर्म का अपमान सुनकर तिलमिला उठा। गरम होकर बोला — यह सर्वथा मिथ्या हैं, इस्लाम की शक्ति उसका आंतरिक भ्रातृत्व और साम्य हैं, तलवार नहीं।

दाऊद — इस्लाम ने धर्म के नाम पर जितना रक्त बहाया हैं, उसमें उसकी सारी मसजिदें डूब जाएँगी।

जमाल — तलवार ने सदा सत्य की रक्षा की हैं।

दाऊद ने अविचलित भाव से कहा — जिसको तलवार का आश्रय लेना पड़े, वह सत्य ही नहीं।

जमाल जातीय गर्व से उन्मत्त होकर बोला — जब तक मिथ्या के भक्त रहेंगे, तब तक तलवार की जरूरत भी रहेगी।

दाऊद — तलवार का मुँह ताकने वाला सत्य ही मिथ्या हैं।

अरब ने तलवार के कब्जे पर हाथ रखकर कहा — खुदा की कसम, अगर तुम निहत्थे न होते तो इस्लाम की तौहीन करने का मजा चखा देता।

दाऊद ने अपनी छाती में छिपाई हुई कटार निकालकर कहा — नहीं, मैं निहत्था नहीं हूँ। मुसलमानों पर जिस दिन इतना विश्वास करूँगा, उस दिन ईसाई न रहूँगा। तुम अपने दिल के अरमान निकाल लो।

दोनों ने तलवारें खींच ली। एक-दूसरे पर टूट पड़े। अरब की भारी तलवार ईसाई की हल्की कटार के सामने शिथिल हो गई। एक सर्प की भाँति फन से चोट करती थी, दूसरी नागिन की भाँति उठती थी। एक लहर की तरह लपकती थी, दूसरी जल की मछलियों की भाँति चमकती थी। दोनों योद्धाओं में कुछ देर तक चोटें होती रही। सहसा एक बार नागिन उछल कर अरब के अन्तस्तल में जा पहुँची। वह भूमि पर गिर पड़ा।

3

जमाल के गिरते ही चारों तरफ के लोग दौड़ पड़े। वे दाऊद को घेरने की चेष्टा करने लगे। दाऊद ने देखा, लोग तलवार लिए दौड़े चले आ रहे हैं, प्राण लेकर भागा। पर जिधर जाता था, सामने बाग की दीवार रास्ता रोक लेती थी, दीवार ऊँची थी, उसे फाँदना मुश्किल था। यह जीवन और मृत्यु का संग्राम था, कहीं शरण की

आशा नहीं, कहीं छिपने का स्थान न था। उधर अरबों की रक्त-पिपासा प्रतिक्षण तीव्र होती जाती थी। यह केवल एक अपराधी को दंड देने की चेष्टा न थी, जातीय अपमान का बदला था। एक विजित ईसाई की यह हिम्मत कि अरब पर हाथ उठाए! ऐसा अनर्थ!

जिस तरह पीछा करने वाले कुत्ते के सामने गिलहरी इधर-उधर दौड़ती हैं। किसी वृक्ष पर चढ़ने की बार-बार चेष्टा करती हैं पर हाथ-पाँव फूल जाने के कारण बार-बार गिर पड़ती हैं, वही दशा दाऊद की थी।

दौड़ते-दौड़ते उसका दम फूल गया। पैर मन-मन भर के हो गए। कई बार जी मे आया, इन सब पर टूट पड़े और जितने महँगे प्राण बिक सकें, उतने महँगे बेचे। पर शत्रुओं की संख्या देखकर हतोत्साह हो जाता था।

लेना, दौड़ना, पकडना का शोर मचा हुआ था। कभी-कभी पीछा करने वाले इतने निकट आ जाते थे कि मालूम होता था, अब संग्राम का अन्त हुआ। वह तलवार पड़ी, पर पैरों की एक ही गति, एक कावा, एक कन्नी उसे खून की प्यासी तलवार से बाल-बाल बचा लेती थी।

दाऊद को अब इस संग्राम में खिलाड़ियों का-सा आनन्द आने लगा। यह निश्चय था कि उसके प्राण नहीं बच सकते, मुसलमान दया करना नही जानते, इसलिए उसे अपने दाँव-पेंच में मजा आ रहा था। किसी वार से बचकर उसे अब इसकी खुशी न होती थी कि उसके प्राण बच गए, बल्कि इसका आनन्द होता था कि उसने कातिल को कैसा जिच किया।

सहसा उसे अपनी दाहिनी ओर बाग की दीवार कुछ नीची नजर आई, आह! यह देखते ही उसके पैरों में एक नई शक्ति का संचार हो गया। धमनियों में नया रक्त दौड़ने लगा। वह हिरन की तरह उस तरफ दौड़ा और एक छलांग में बाग के उस पार पहुँच गया। जिन्दगी और मौत में सिर्फ एक कदम का फासला था। पीछे मृत्यु थी और आगे जीवन का विस्तृत क्षेत्र। जहाँ दृष्टि जाती थी, झाड़ियाँ नजर आती थी, जमीन पथरीली थी, कहीं ऊँची, कहीं नीची। जगह-जगह पत्थर की शिलाएँ पड़ी हुई थी। दाऊद एक शिला के नीचे छिपकर बैठ गया।

दम-भर में पीछा करने वाले भी वहाँ आ पहुँचे और इधर-उधर झाड़ियों में, वृक्षों पर, गड्ढे में, शिलाओं के नीचे तलाश करने लगे। एक अरब उस चट्टान पर आकर खड़ा हो गया, जिसके नीच दाऊद छिपा हुआ था। दाऊद का कलेजा धक्-धक् कर रहा था, अब जान गई! अरब ने जरा नीचे को झाँका और प्राणों का

अन्त हुआ! संयोग — केवल संयोग पर अब उसका जीवन निर्भर था। दाऊद ने साँस रोक ली, सन्नाटा खींच लिया। एक निगाह पर उसकी जिन्दगी का फैसला था, जिंदगी और मौत में कितनी सामीप्य हैं।

मगर अरबों को इतना अवकाश कहाँ था कि वे सावधान होकर शिला के नीचे देखते। वहाँ तो हत्यारे को पकड़ने की जल्दी थी। दाऊद के सिर से बला टल गई। वे इधर–उधर ताक–झाँककर आगे बढ़ गए।

4

अंधेरा हो गया। आकाश में तारागण निकल आए और तारों के साथ दाऊद भी शिला के नीचे से निकला, लेकिन देखा, उस समय भी चारों तरफ हलचल मची हुई हैं। शत्रुओं का दल मशालें लिए झाड़ियों में घूम रहा हैं, नाकों पर भी पहरा हैं। कहीं निकल भागने का रास्ता नही हैं। दाऊद एक वृक्ष के नीचे खड़ा होकर सोचने लगा कि अब क्योंकर जान बचे। उसे अपनी जान की वैसी परवाह न थी। वह जीवन के सुख–दुख सब भोग चुका था। अगर उसे जीवन की लालसा थी तो केवल यहीं देखने के

लिए कि इस संग्राम का अन्त क्या होगा? मेरे देशवासी हतोत्साह हो जाएँगे, या अदम्य धैर्य के साथ संग्रामक्षेत्र में अटल रहेंगे?

जब रात अधिक बीत गई और शत्रुओं की घातक चेष्टा कुछ कम न होती दीख पड़ी तो दाऊद खुदा का नाम लेकर झाड़ियों से निकला और दबे-पाँव, वृक्षों की आड़ में, आदमियों की नजर बचाता हुआ, एक तरफ को चला। वह इन झाड़ियों से निकलकर बस्ती में पहुँच जाना चाहता था। निर्जनता किसी की आड़ नहीं कर सकती, बस्ती का जनबाहुल्य स्वयं आड़ हैं।

कुछ दूर तक तो दाऊद के मार्ग में कोई बाधा न उपस्थित हुई। वन के वृक्षों ने उसकी रक्षा की, किन्तु जब वह असमतल भूमि से निकलकर समतल भूमि पर आया तो एक अरब की निगाह उस पर पड़ गई। उसने ललकारा, दाऊद भागा।

'कातिल भागा जाता हैं!' यह आवाज हवा में एक बार ही गूँजी और क्षण-भर में चारों तरफ से अरबों ने उसका पीछा किया। सामने बहुत दूर तक आदमी का नामोनिशान न था। बहुत दूर पर एक धुँधला-सा दीपक टिमटिमा रहा था। किसी तरह वहाँ तक पहुँच जाऊँ। वह उस दीपक की ओर इतनी तेजी से दौड़ रहा था मानो वहाँ पहुँचते ही अभय पा जाएगा। आशा उसे उड़ाए लिए जाती था। अरबों का समूह पीछे छूट गया। मशालों की

ज्योति निष्प्रभ हो गई। केवल तारागण उसके साथ दौड़े चले आते थे। अन्त को वह आशामय दीपक के सामने आ पहुँचा। एक छोटा–सा फूस का मकान था। एक बूढ़ा अरब जमीन पर बैठा हुआ रेहल पर कुरान रखे उसी दीपक के मद प्रकाश से पढ़ रहा था। दाऊद आगे न जा सका। उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया। वह वहीं शिथिल होकर गिर पड़ा। रास्ते की थकान घर पहुँचने पर मालूम होती हैं।

अरब ने उठकर कहा — तू कौन हैं?

दाऊद — एक गरीब ईसाई, मुसीबत में फँस गया हूँ। अब आप ही शरण दे तो मेरे प्राण बच सकते हैं।

अरब — खुदा–पाक तेरी मदद करेगा, तुम पर क्या मुसीबत पड़ी हुई हैं?

दाऊद — डरता हूँ कहीं कह दूँ तो आप भी मेरे खून के प्यासे न हो जाए।

अरब — अब तू मेरी शरण में आ गया तो तुझे मुझसे कोई शंका न होनी चाहिए। हम मुसलमान हैं, जिसे एक बार शरण में ले लेते हैं, उसकी जिन्दगी–भर रक्षा करते हैं।

दाऊद — मैंने एक मुसलमान युवक की हत्या कर डाली हैं।

वृद्ध अरब का मुख क्रोध से विकृत हो गया, बोला — उसका नाम?

दाऊद — उसका नाम जमाल था।

अरब सिर पकड़कर वही बैठ गया। उसकी आँखें सुर्ख हो गई, गरदन की नसें तन गई, मुख पर अलौकिक तेजस्विता की आभा दिखाई दी। नथुने फड़कने लगे, ऐसा मालूम होता था कि उसके मन में भीषण द्वन्द्व हो रहा हैं और वह समस्त विचार–शक्ति से अपने मनोभावों को दबा रहा हैं। दो–तीन मिनट तक वह इसी उग्र अवस्था में बैठा धरती की ओर ताकता रहा। अन्त में अवरुद्ध कंठ से बोला — नहीं–नहीं, शरणागत की रक्षा करनी ही पड़ेगी। आह! जालिम! तू जानता हैं, मैं कौन हूँ, मै उसी युवक का अभागा पिता हूँ, जिसकी आज तूने इतनी निर्दयता से हत्या की हैं। तू जानता हैं, तूने मुझ पर कितना अत्याचार किया हैं? तूने मेरे खानदान का निशान मिटा दिया हैं। मेरा चिराग गुल कर दिया! आह जमाल मेरा इकलौता बेटा था। मेरी सारी अभिलाषाएँ उसी पर निर्भर थी। वह मेरी आँखों का उजाला, मुझसे अँधे का सहारा, मेरे जीवन का आधार, मेरे जर्जर शरीर का प्राण था। अभी–अभी उसे कब्र की गोद में लिटा कर आया हूँ। आह, मेरा शेर, आज खाक के नीचे सो रहा हैं। ऐसा दिलेर, ऐसा दीनदार, ऐसा सजीला जवान मेरी कौम में दूसरा न था। जालिम तुझे उस पर तलवार

चलाते जरा भी दया न आई? तेरा पत्थर का कलेजा जरा भी न पसीजा! तू जानता हैं, मुझे इस वक्त तुझ पर कितना गुस्सा आ रहा हैं? मेरा जी चाहता हैं कि अपने दोनो हाथों से तेरी गरदन पकड़कर इस तरह दबाऊँ कि तेरी जबान बाहर निकल आए। तेरी आँखें कौड़ियों की तरह बाहर निकल पड़े। पर नहीं, तूने मेरी शरण ली हैं, कर्त्तव्य मेरे हाथों को बाँधे हुए हैं, क्योंकि हमारे रसूल–पाक ने हिदायत की हैं कि जो अपनी पनाह में आए, उस पर हाथ न उठाओ। मै नहीं चाहता कि नबी के हुक्म को तोड़कर दुनिया के साथ अपनी आकबत भी बिगाड़ लूँ। दुनिया तूने बिगाड़ी, दीन अपने हाथों बिगाड़ूँ? नहीं, सब्र करना मुश्किल हैं, पर सब्र करूँगा ताकि नबी के सामने आँखें नीची न करनी पड़े। आ, घर में आ, तेरा पीछा करने वाले दौड़े आ रहे हैं। तुझे देख लेगे तो फिर मेरी सारी मिन्नत–समाजत तेरी जान न बचा सकेगी। तू नही जानता कि अरब लोग खून कभी माफ नहीं करते।

यह कहकर अरब ने दाऊद का हाथ पकड़ लिया और उसे घर ले जाकर एक कोठरी में छिपा दिया। वह घर से बाहर निकला ही था कि अरबों का एक दल द्वार पर आ पहुँचा।

एक आदमी ने पूछा — क्यों शेख हसन, तुमने इधर से किसी को भागते देखा हैं?

'हाँ देखा हैं।'

'उसे पकड़ क्यो न लिया? यही तो जमाल का कातिल था!'

'यह जानकर भी मैंने उसे छोड़ दिया।'

'ऐ! गजब खुदा का! यह तुमने क्या किया? जमाल हिसाब के दिन हमारा दामन पकड़ेगा तो हम क्या जवाब देंगे?'

'तुम कह देना कि तेरे बाप ने तेरे कातिल को माफ कर दिया।'

'अरब ने कभी कातिल का खून नहीं माफ किया।'

'यह तुम्हारी जिम्मेदारी हैं, मैं उसे अपने सिर क्यों लूँ?'

अरबों ने शेख हसन से ज्यादा हुज्जत न की, कातिल की तलाश में दौड़े। शेख हसन फिर चटाई पर बैठ कर कुरान पढ़ने लगा। लेकिन उसका मन पढ़ने में न लगता था। शत्रु से बदला लेने की प्रवृत्ति अरबों में बद्धमूल होती हैं। खून का बदला खून था, इसके लिए खून की नदियाँ बह जाती हैं। कबीले-के-कबीले मर मिटते थे, शहर के शहर वीरान हो जाते थे। उस प्रवृत्ति पर विजय पाना शेख हसन को असाध्य-सा प्रतीत हो रहा था। बार-बार प्यारे पुत्र की सूरत आँखों के आगे फिरने लगती थी। बार-बार उसके मन में प्रबल उत्तेजना होती थी कि चलकर दाऊद के खून से अपने क्रोध की आग बुझाऊँ। अरब वीर होते

थे, कटना–मरना उनके लिए कोई असाधारण बात न थी। मरने वालों के लिए वे आँसुओं की कुछ बूँदे बहाकर फिर अपने काम में प्रवृत्त हो जाते थे। वे मृत व्यक्ति की स्मृति को केवल उसी दशा में जीवित रखते थे, जब तक उनके खून का बदला लेना होता था। अन्त में शेख हसन अधीर हो उठा। उसको भय हुआ कि अब मैं अपने ऊपर काबू नहीं रख सकता। उसने तलवार म्यान से निकाल ली और दबे पाँव उस कोठरी के द्वार पर आकर खड़ा हो गया, जिसमें दाऊद छिपा हुआ था। तलवार को दामन में छिपाकर उसने धीरे से द्वार खोला। दाऊद टहल रहा था, बूढे अरब का रौद्र रूप देखकर दाऊद उसके मनोवेग को ताड़ गया। उसे बूढ़े से सहानुभूति हो गई। उसने सोचा, यह धर्म का दोष नहीं, जाति का दोष नहीं, मेरे पुत्र की किसी ने हत्या की होती तो कदाचित् मैं भी उसके खून का प्यासा हो जाता। यही मानव प्रकृति हैं।

अरब ने कहा — दाऊद, तुम्हें मालूम हैं बेटे की मौत का कितना गम होता हैं।

दाऊद — इसका अनुभव तो नहीं, पर अनुमान कर सकता हूँ, अगर मेरी जान से आपके उस गम का एक हिस्सा भी मिट सके, तो लीजिए, यह सिर हाजिर हैं। मैं इसे शौक से आपकी नजर करता हूँ। आपने दाऊद का नाम सुना होगा।

अरब — क्या पीटर का बेटा?

दाऊद — जी हाँ, मैं वही बदनसीब दाऊद हूँ। मैं केवल आपके बेटे का घातक ही नहीं, इस्लाम का दुश्मन हूँ। मेरी जान लेकर आप जमाल के खून का बदला ही न लेंगे, बल्कि अपने जाति और धर्म की सच्ची सेवा भी करेंगे।

शेख हसन ने गम्भीर भाव से कहा — दाऊद, मैंने तुम्हें माफ किया। मैं जानता हूँ मुसलमानों के हाथ ईसाइयों को बहुत तकलीफ पहुँची हैं। मुसलमानों ने उनपर बड़े–बड़े अत्याचार किए। उनकी स्वाधीनता हर ली! लेकिन यह इस्लाम का नहीं, मुसलमानों का कुसूर हैं। विजय–गर्व ने मुसलमानों की मति हर ली हैं। हमारे पाक नबी ने यह शिक्षा नहीं दी, जिस पर आज हम चल रहे हैं। वह स्वयं क्षमा और दया का सर्वोच्च आदर्श हैं। मैं इस्लाम के नाम को बट्टा न लगाऊँगा। मेरी ऊँटनी ले लो और रातों–रात जहाँ तक भागा जाए, भागो, कहीं एक क्षण के लिए भी न ठहरना। अरबों को तुम्हारी बू भी मिल गई तो तुम्हारी जान की खैरियत नहीं। जाओ, तुम्हें खुदा–ए–पाक घर पहुँचावे। बूढ़े शेख हसन और उसके बेटे जमाल के लिए खुदा से दुआ किया करना।

दाऊद खैरियत से घर पहुँच गया। किन्तु अब वह दाऊद न था, जो इस्लाम को जड़ से खोदकर फेंक देना चाहता था। उसके विचारों में गहरा परिवर्तन हो गया था। अब वह मुसलमानों का आदर करता और इस्लाम का नाम इज्जत से लेता था।

मनुष्य का परम-धर्म

होली का दिन हैं, लड्डू के भक्त और रसगुल्ले के प्रेमी पंडित मोटेराम शास्त्री अपने आँगन मे एक टूटी खाट पर सिर झुकाए, चिन्ता और शोक की मूर्ति बने बैठे हैं, उनकी सहधर्मिणी उनके निकट बैठी हुई उनकी ओर सच्ची सहवेदना की दृष्टि से ताक रही हैं और अपनी मृदुवाणी से पति की चिन्ताग्नि को शान्त करने की चेष्टा कर रही हैं।

पंडितजी बहुत देर तक चिन्ता में डूबे रहने के पश्चात उदासीन भाव से बोले — नसीबा ससुरा न जाने कहाँ जाकर सो गया, होली के दिन भी न जागा!

पंडिताइन — दिन ही बुरे आ गए हैं, इहाँ तो जौन ते तुम्हारा हुकुम पावा ओही घड़ी ते साँझ-सवेरे दोनो जून सूरजनरायन से ही बरदान माँगा करि हैं कि कहूँ से बुलौवा आवै सैकड़न दिया तुलसी माई का चढ़ावा, मुदा सब सोय गए, गाढ़ परे कोऊ काम नहीं आवत हैं।

मोटेराम — कुछ नहीं, ये देवी–देवता सब नाम के हैं। हमारे बखत पर काम आवें तब हम जाने कि कोई देवी–देवता हैं। सेंत–मेंत में मालपुआ और हलुवा खाने वाले तो बहुत हैं।'

पंडिताइन — का सहर–भर माँ अब कोई भलमनई नाहीं रहा? सब मरि गए?

मोटेराम — सब मर गए। बल्कि सड़ गए, दस–पाँच हैं तो साल–भर में दो–एक बार जीते हैं। वह भी बहुत हिम्मत की तो रुपये की तीन सेर मिठाई खिला दी। मेरा बस चलता तो इन सबों को सीधे कालेपानी भिजवा देता। यह सब इसी अरियासमाज की करनी हैं।

पंडिताइन — तुमहूँ तो घर माँ बैठे रहत हो। अब ई जमाने माँ कोई ऐसन दानी नाहीं हैं कि घर बैठे नेवता भेज देय, कभूँ–कभूँ जुबान लड़ा दिया करो।

मोटेराम — तुम कैसे जानती हो कि मैने जबान नहीं लड़ाई? ऐसा कौन रईस इस शहर में हैं, जिसके यहाँ जाकर मैंने आशीर्वाद न दिया हो। मगर कौन सुसरा सुनता हैं सब अपने–अपने रंग मस्त हैं।

इतने में पंडित चिंतामणिजी ने पदार्पण किया। यह पंडित मोटेरामजी के परम मित्र थे। हाँ, अवस्था कुछ कम थी और उसी के अनुकूल उनकी तोंद भी कुछ उतनी प्रतिभाशाली न थी।

मोटेराम — कहो मित्र, क्या समाचार लाए? कहीं डौल?

चिंतामणि — डौल नहीं, अपना सिर हैं! अब वह नसीब ही नहीं रहा।

मोटेराम — 'घर ही से आ रहे हो?

चिंतामणि — भाई हम तो साधु हो जाएँगें, जब इस जीवन में कोई सुख ही नहीं रहा तो जीकर क्या करेंगे? अब बताओ कि आज के दिन अब उत्तम पदार्थ न मिले तो कोई क्योंकर जिए।

मोटेराम — हाँ भाई, बात तो यथार्थ करते हो।

चिंतामणि — तो अब तुम्हारा किया कुछ न होगा? साफ–साफ कहो, हम सन्यास ले लें।'

मोटेराम — नहीं मित्र, घबराओ मत, जानते नहीं हो, बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता। तर माल खाने के लिए कठिन तपस्या करनी पड़ती हैं। हमारी राय हैं कि चलो, इसी समय गंगातट पर चलें और वहाँ व्याख्यान दें। कौन जाने किसी सज्जन की आत्मा जाग्रत हो जाए।

चिंतामणि — हाँ, बात तो अच्छी हैं, चलो चलें।

दोनों सज्जन उठकर गंगाजी की ओर चले। प्रातःकाल था, सहस्रों मनुष्य स्नान कर रहे थे। कोई पाठ करता था, कितने ही लोग पंड़ो की चौकियों पर बैठे तिलक लगा रहे थे। कोई–कोई तो गीली धोती ही पहने घर जा रहे थे।

दोनों महात्माओं को देखते ही चारों तरफ से 'नमस्कार', 'प्रणाम' और 'पालागन' की आवाजें आने लगी। दोनों मित्र इन अभिवादनों का उत्तर देते गंगातट पर जा पहुँचे और स्नानादि में प्रवृत हो गए। तत्पश्चात एक पंड़े की चौकी पर भजन गाने लगे। वह विचित्र घटना थी कि सैंकड़ों आदमी कौतूहलवश आकर एकत्रित हो गए। जब श्रोताओं की संख्या कई सौ तक पहुँच गई तो पंडित मोटेराम गौरवयुक्त भाव से बोले — सज्जनों, आपको ज्ञात हैं कि बह्मा ने इस संसार की रचना की तो ब्राह्मणों को अपने मुख से निकाला, किसी को इस विषय में शंका तो नहीं हैं?

श्रोतागण — नहीं महाराज, आप सर्वथा सत्य कहते हो। आपको कौन काट सकता हैं।

मोटेराम — तो ब्राह्मण ब्रह्मा के मुखे से निकले। यह निश्चय हैं, इसलिए मुख मानव शरीर का श्रेष्ठतम भाग हैं। अतएव मुख को सुख पहुँचाना प्रत्येक प्राणी का परम कर्त्तव्य हैं। हैं या नहीं?

कोई काटता हैं हमारे वचन को? सामने आए, हम उसे शास्त्र का प्रणाम दे सकते हैं।

श्रोतागण — महाराज, आप ज्ञानी पुरुष हो, आपको काटने का साहस कौन कर सकता हैं?

मोटेराम — अच्छा, तो जब यह निश्चय हो गया कि मुख को सुख देना प्रत्येक प्राणी का परम धर्म हैं, तो क्या देखना कठिन हैं कि जो लोग मुख से विमुख हैं, वे दुख के भागी हैं। कोई काटता हैं इस वचन को?

श्रोतागण — महाराज, आप धन्य हो। आप न्याय-शास्त्र के पंडित हो।

मोटेराम — अब प्रश्न यह होता हैं कि मुख को सुख कैसे दिया जाए? हम कहते हैं- जैसी तुममें श्रद्धा हो, जैसा सामर्थ्य हो। इसके अनेक प्रकार हैं, देवताओं के गुण गाओ, ईश्वर-वन्दना करो, सत्संग करो और कठोर वचन न बोलो। इन बातों से मुख को सुख प्राप्त होगा। किसी को विपत्ति में देखो तो उसे ढाढ़स दो, इससे मुख को सुख होगा। किन्तु इस सब उपायों से श्रेष्ठ, सबसे उत्तम, सबसे उपयोगी एक और ही ढंग हैं। कोई आप में ऐसा हैं जो उसे बतला दे? हैं कोई, बोले।

श्रोतागण — महाराज, आपके सम्मुख कौन मुँह खोल सकता हैं। आप ही बताने की कृपा कीजिए।

मोटेराम — अच्छा, तो हम चिल्लाकर, गला फाड़-फाड़कर करते हैं कि वह इन सब विधियों से श्रेष्ठ हैं, उसी भाँति जैसे चन्द्रमा सभी नक्षत्रों में श्रेष्ठ हैं।

श्रोतागण — महाराज, अब विलम्ब न कीजिए, यह कौन-सी विधि हैं।

मोटेराम — अच्छा सुनिए, सावधान होकर सुनिए। यह विधि हैं मुख को उत्तम पदार्थों का भोजन करवाना। अच्छी-अच्छी वस्तु खिलाना। कोई काटता हैं हमारी बात को? आए, हम उसे वेद-मंत्रों का प्रमाण दे।

एक मनुष्य ने शंका की — यह समझ में नहीं आता कि सत्य भाषण से मिष्ट-भक्षण क्योंकर मुख के लिए अधिक सुखकारी हो सकता हैं?

कई मनुष्यों ने कहा — हाँ-हाँ, हमें भी यही शंका हैं। महाराज इस शंका का समाधान कीजिए।

मोटेराम — और किसी को कोई शंका हैं? हम बहुत प्रसन्न होकर उसका निवारण करेंगे। सज्जनों आप पूछते हैं कि उत्तम भोजन

करना और कराना क्योंकर सत्य भाषण से अधिक सुखदायी हैं। मेरा उत्तर हैं कि पहला रुप प्रत्यक्ष हैं और दूसरा अप्रत्यक्ष, उदाहरणतः कल्पना कीजिए कि मैंने कोई अपराध किया। हाकिम मुझे बुलाकर नम्रतापूर्वक समझाए कि पंडितजी, आपने अच्छा काम नहीं किया। आपको ऐसा उचित नहीं था। तो उसको यह दंड मुझे सुमार्ग पर लाने में सफल न होगा। सज्जनों मैं ऋषि नहीं हूँ, दीन-हीन मायाजाल में फँसा हुआ प्राणी हूँ। मुझ पर दंड का कोई प्रभाव न होगा। मैं हाकिम के सामने से हटते ही फिर उसी कुमार्ग पर चलने लगूँगा। मेरी बात समझ में आती हैं? कोई इसे काटता हैं?

श्रोतागण — महाराज! आप विद्यासागर हो, आप पंडितों के भूषण हो, आपको धन्य हैं।'

मोटेराम — अच्छा. अब उसी उदाहरण पर फिर विचार करो। हाकिम ने बुलाकर तत्क्षण कारागार में डाल दिया और वहाँ मुझे नाना प्रकार के कष्ट दिए गए। अब जब मैं छुटूँगा, तो बरसों की यातनाओं को याद करता रहूँगा और सम्भवतः कुमार्ग को त्याग दूँगा। आप पूछेंगे, ऐसा क्यों हैं? दंड दोनो है तो क्यों एक का प्रभाव पड़ता हैं और दूसरे का नहीं। इसका कारण यही हैं कि एक का रूप प्रत्यक्ष हैं और दूसरे का गुप्त, समझ आप लोग?

श्रोतागण — धन्य हो कृपानिधान! आपको ईश्वर ने बड़ी बुद्धि–सामर्थ्य दी हैं।

मोटेराम — अच्छा तो अब आपका प्रश्न होता हैं उत्तम पदार्थ किसे कहते हैं? मैं इसकी विवेचना करता हूँ। जैसे भगवान ने नाना प्रकार के रंग नेत्रों के विनोदार्थ बनाए, उसी प्रकार मुख के लिए भी अनेक रसों की रचना की, किन्तु इन समस्त रसों में श्रेष्ठ कौन हैं? यह अपनी–अपनी रुचि हैं, लेकिन वेदों और शास्त्रों के अनुसार मिष्ट रस सबसे श्रेष्ठ माना जाता हैं। देवतागण इसी रस पर मुग्ध होते हैं। यहाँ तक कि सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान भगवान को भी मिष्ठ–पाकों से ही अधिक रुचि हैं। कोई ऐसे देवता का नाम बता सकता हैं जो नमकीन वस्तुओं को ग्रहण करता हो? हैं कोई जो ऐसे एक भी दिव्य ज्योति का नाम बता सके, कोई नहीं हैं। इसी भाँति खट्टे, कड़वे और चरपरे, कसैले पदार्थों से भी देवताओं को प्रीति नहीं हैं।

श्रोतागण — महाराज, आपकी बुद्धि अपरम्पार हैं।

मोटेराम — तो यह सिद्ध हो गया कि मीठे पदार्थों में श्रेष्ठ हैं। अब आपका पुनः प्रश्न होता हैं कि क्या समस्त मीठी वस्तुओं से मुख को समान आनन्द प्राप्त होता हैं? यदि मैं कह दूँ 'हाँ' तो आप चिल्ला उठोगे कि पंडितजी तुम बाबले हो। इसलिए मैं कहूँगा,

'नहीं' और बारम्बार 'नहीं'। सब मीठे पदार्थ समान रोचकता नहीं रखते। गुड़ और चीनी में बहुत भेद हैं इसीलिए मुख को सुख देने के लिए हमारा परम कर्त्तव्य हैं कि हम उत्तम-से-उत्तम मिष्ठ-पाकों का सेवन करें और कराए। मेरा विचार हैं कि आपके थाल में जौनपुर की इमरतियाँ, आगरे के मोतीचूर, मथुरा के पेडे, बनारस की कलाकंद, लखनऊ के रसगुल्ले, अयोध्या के गुलाबजामुन और दिल्ली का सोहन हलुआ हो तो यह ईश्वर-भोग के योग्य हैं। देवतागण उस पर मुग्ध हो जाएँगे और जो साहसी, पराक्रमी जीव ऐसे स्वादिष्ट थाल ब्राह्मणों को जिमाएगा, उसे सन्देह स्वर्गधाम प्राप्त होगा। यदि आपको श्रद्धा है तो हम आपसे अनुरोध करेंगे कि अपने धर्म का अवश्य पालन कीजिए, नहीं तो मनुष्य बनने का नाम न लीजिए।

पंडित मोटेराम का भाषण समाप्त हो गया। तालियाँ बजने लगीं। कुछ सज्जनों ने इस ज्ञान-वर्ष और धर्मोपदेश से मुग्ध होकर उनपर फूलों की वर्षा की, तब चिंतामणि ने अपनी वाणी को विभूषित किया —

'सज्जनों, आपने मेरे परम मित्र पंडित मोटेराम का प्रभावशाली व्याख्यान सुना और अब मेरे खड़े होने की आवश्यकता न थी, परन्तु मैं उनसे और सभी विषयों में सहमत हूँ। वहाँ उनसे मुझे थोड़ा मतभेद हैं। मेरे विचार में यदि आपके हाथ में केवल

जौनपुर की अमरतियाँ हो तो वह पंचमेल मिठाइयों से कहीं अधिक सुखवर्द्धक, कहीं स्वादपूर्ण और कहीं कल्याणकारी होगा। इसे मैं शास्त्रोक्त से सिद्ध करता हूँ।'

मोटेराम ने सरोष होकर कहा — तुम्हारी यह कल्पना मिथ्या हैं। आगरे के मोतीचूर और दिल्ली के सोहन हलुए के सामने जौनपुर की अमरतियाँ की गणना ही नहीं हैं।'

चिन्तामणि — प्रमाण से सिद्ध कीजिए?

मोटेराम — प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण?

चिन्तामणि — यह तुम्हारी मूर्खता हैं।

मोटेराम — तुम जन्म-भर खाते ही रहे, किन्तु खाना न आया।

इस पर चिन्तामणि ने अपनी आसनी मोटेराम पर चलाई। शास्त्रीजी ने वार खाली दिया और चिन्तामणि को ओर मस्त हाथी के समान झपटे। किन्तु उपस्थित सज्जनों ने दोनों महात्माओं को अलग-अलग कर दिया।

गुरु-मंत्र

घर के कलह और निमंत्रणों के अभाव से पंडित चिन्तामणिजी के चित्त में वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने संन्यास ले लिया तो उनके परम मित्र पंडित मोटेराम शास्त्रीजी ने उपदेश दिया — मित्र, हमारा अच्छे-अच्छे साधु-महात्माओं से सत्संग रहा हैं, यह जब किसी भलेमानस के द्वार पर जाते हैं तो गिड़गिड़ाकर हाथ नहीं फैलाते और झूठ-मूठ आशीर्वाद नहीं देने लगते कि 'नारायण तुम्हारा चोला मस्त रखे, तुम सदा सुखी रहो।' यह तो भिखारियों का दस्तूर हैं, संत लोग द्वार पर जाते ही कड़ककर हाँक लगाते हैं, जिससे घर के लोग चौंक पड़े और उत्सुक होकर द्वार की ओर दौड़े, मुझे दो-चार वाणियाँ मालूम हैं, चाहे ग्रहण कर लो, गुदड़ी बाबा कहा करते थे — 'मरें तो पाँचों मरें।' यह ललकार सुनते ही लोग उनके पैरों पर गिर पड़ते थे, सिद्ध बाबा की हाँक बहुत उत्तम थी — 'खाओ, पीओ चैन करो, पहनो गहना, पर बाबाजी के सोटे से डरते रहना।' नंगा बाबा कहा करते थे — 'दे तो दे, नहीं दिया दे, खिला दे, पिला दे, सुला दे।' यह समझ लो कि तुम्हारा आदर सत्कार बहुत कुछ तुम्हारी हाँक के ऊपर हैं, और क्या

कहूँ, भूलना मत, हम और तुम बहुत दिनों साथ रहे, सैकड़ों भोज साथ खाए, जिस नवते में हम और तुम दोनों पहुँचते थे तो लाग–डाँट से एक–दो पत्तल और उड़ा ले जाते थे, तुम्हारे बिना अब मेरा रंग न जमेगा, ईश्वर तुम्हें सदा सुगंधित वस्तु दिखाए।

चिंतामणि को उन वाणियों में से एक भी पसन्द न आई और बोले — मेरे लिए कोई वाणी सोचो।

मोटेराम — अच्छा यह वाणी कैसी हैं कि — न दोगे तो हम चढ़ बैठेंगे।

चिंतामणि — हाँ, यह मुझे पसन्द हैं, तुम्हारी आज्ञा हो तो इसमें काँट–छाँट करूँ।

मोटेराम — हाँ, हाँ, करो।

चिंतामणि — अच्छा तो इसे इस भाँति रखो — न देगा तो हम चढ़ बैठेंगे।

मोटेराम — (उछलकर) नारायण जानता हैं, यह वाणी अपने रंग में निराली हैं, भक्ति ने तुम्हारी बुद्धि को चमका दिया हैं, भला एक बार ललकारकर कहो तो रंग देखें, कैसे कहते हो।

चिंतामणि ने दोनों कान उंगलियों से बन्द कर लिए और अपनी पूरी शक्ति से चिल्लाकर बोले — 'न देगा तो चढ़ बैठूँगा।' यह

नाद ऐसा आकाशभेदी था कि मोटेराम भी सहसा चौक पड़े, चमगादड़ घबरा कर वृक्षों से उड़ गए, कुत्ते भौंकने लगे।

मोटेराम — मित्र, तुम्हारी वाणी सुनकर मेरा कलेजा काँप उठा, ऐसा ललकार कहीं सुनने में न आई, तुम सिंह की भाँति गरजते हो, वाणी तो निश्चित हो गई, अब कुछ दूसरी बातें बताता हूँ, कान देकर सुनो, साधुओं की भाषा हमारी बोलचाल से अलग होती हैं, हम किसी को आप कहते हैं, किसी को तुम, साधु लोग छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, बूढ़े-जवान, सबको तू कहकर पुकारते हैं, माई और बाबा का सदैव उचित व्यवहार करते रहना, यह भी याद रखों कि सादी हिन्दी कभी मत बोलना, नहीं तो मरम खुल जाएगा, टेढ़ी हिन्दी बोलना, यह कहना कि 'माई मुझको कुछ खिला दे' साधुओं की भाषा में ठीक नहीं हैं। पक्का साधु इसी बात तो यों कहेगा- माई मेरे को भोजन करा दे, तेरे को बड़ा धर्म होगा।

चिंतामणि — मित्र, हम तेरे को कहाँ तक जस गावें, तेरे साथ बड़ा उपकार किया हैं।

यों उपदेश देकर मोटेराम विदा हुए, चिंतामणिजी आगे बढ़े, तो क्या देखते हैं कि एक गाँजे-भाँग की दुकान के सामने कई जटाधारी महात्मा बैठे हुए गाँजे के दम लगा रहे हैं, चिंतामणि को देखकर

एक महात्मा ने अपनी जयकार सुनाई — चल–चल, जल्दी लेके चल, नहीं तो अभी करता हूँ वेकल।

एक दूसरे साधु में कड़ककर कहा — अ–रा–रा–रा–धम, आए पहुँचे हम, अब क्या हैं गम।

अभी यह कड़ाका आकाश में गूँज ही रहा था कि तीसरे महात्मा ने गरजकर अपनी वाणी सुनाई —देस बंगाला, जिसको देखा न भाला, चटपट भर दे प्याला।

चिंतामणि से अब रहा न गया, उन्होंने भी कड़ककर कहा — न देगा तो चढ़ बैठूँगा।

यह सुनते ही साधुजन ने चिंतामणि का सादर अभिवादन किया, तत्क्षण गाँजे की चिलम भरी गई और उसे सुलगाने का भार पंडितजी पर पड़ा, बेचारे बड़े असमंजस में पड़े। सोचा, अगर चिलम नहीं लेता तो अभी सारी कलई खुल जाएगी, विवश होकर चिलम ले ली, किन्तु जिसने कभी गाँजा न पिया हो, वह बहुत चेष्टा करने पर भी दम नहीं लगा सकता, उन्होंने आँखें बन्द करके अपनी समझ से तो बड़े जोरों से दम लगाया, चिलम हाथ से छूटकर गिर पड़ी, आँखें निकल आयी, मुँह से फिचकर निकल आया, मगर न तो मुँह से धुएँ के बादल निकले, न चिलम ही सुलगी, उनका यह कच्चापन उन्हें साधु–समाज से च्युत करने के

लिए काफी थी, दो–तीन साधु झल्लाकर आगे बढ़े और बड़ी निर्दयता से उनका हाथ पकड़कर उठा दिया।

एक महात्मा — तेरे को धिक्कार हैं।

दूसरे महात्मा — तेरे को लाज नहीं आती? साधु बना हैं मूर्ख!

पंडितजी लज्जित होकर समीप के एक हलवाई की दुकान के सामने जाकर बैठे, और साधु–समाज में खंजड़ी बजा–बजाकर यह भजन गाना शुरू किया —

माया हैं संसार संवलिया, माया हैं संसार,
धर्माधर्म सभी कुछ मिथ्या, यही ज्ञान व्यवहार,
संवलिया, माया हैं संसार।
गाँजे, भंग के वर्जित करते, हैं उन पर धिक्कार,
संवलिया, माया हैं संसार।

सौभाग्य के कोड़े

लड़के क्या अमीर के हों, क्या गरीब के, विनोदशील हुआ ही करते हैं। उनकी चंचलता बहुधा उनकी दशा और स्थिति की परवाह नहीं करती। नथुवा के माँ-बाप दोनों मर चुके थे। अनाथों की भाँति वह राय भोलानाथ के द्वार पर पड़ा रहता था। रायसाहब दयाशील पुरुष थे। कभी-कभी एक-आधा पैसा दे देते, खाने को भी घर में इतना जूठा बचता था कि ऐसे-ऐसे कई अनाथ पल सकते थे। पहनने को भी उनके लड़कों के उतारे मिल जाते थे, इसलिए नथुवा अनाथ होने पर भी दुखी न था। रायसाहब ने उसे एक ईसाई के पंजे से छुड़ाया था, इन्हें इसकी परवाह न हुई कि मिशन में उसकी शिक्षा होगी, आराम से रहेगा। उन्हें यह मंजूर था कि वह हिन्दू रहे। अपने घर के जूठे भोजन को वह मिशन के भोजन से कहीं पवित्र समझते थे। उनके कमरों की सफाई मिशन की पाठशाला की पढ़ाई से कहीं बढ़कर थी। हिन्दू रहे, चाहे जिस दशा में रहे, ईसाई हुआ तो सदा के लिए हाथ से निकल गया।

नुथवा को बस रायसाहब के बंगले में झाड़ू लगा देन के सिवाय और कोई काम न था। भोजन करके खेलता-फिरता था, कर्मानुसार ही उसकी वर्ण व्यवस्था भी हो गई। घर के अन्य नौकर-चाकर उसे भंगी कहते थे और नथुवा को इसमें कोई ऐतराज न होता था। नाम की स्थिति पर क्या असर पड़ सकता हैं, इसकी उस गरीब को कुछ खबर न थी। भंगी बनने में कुछ हानि भी न थी। उसे झाड़ू देते समय कभी पैसे पड़े मिल जाते, कभी और कोई चीज। इससे वह सिगरेट लिया करता था। नौकरों के साथ उठने-बैठने से उसे बचपन ही में तम्बाकू, सिगरेट और पान का चस्का पड़ गया।

रायसाहब के घर में यों तो बालकों और बालिकाओं की कमी न थी। दर्जनों भांजे-भतीजे पड़े रहते थे, पर उनकी निज की संतान केवल एक पुत्री थी, जिसका नाम रत्ना था। रत्ना को पढ़ाने को दो मास्टर थे। एक मेमसाहब अंग्रेजी पढ़ाने आया करती थी। रायसाहब की यह हार्दिक अभिलाषा था कि रत्ना सर्वगुणसंपन्न हो और जिस घर में जाए, उसकी लक्ष्मी बने। वह उसे अन्य बालकों के साथ न रहने देते। उसके लिए अपने बंगले में दो कमरे अलग कर दिए थे, एक पढ़ने के लिए, दूसरा सोने के लिए। लोग कहते हैं, लाड़-प्यार से बच्चे जिद्दी और सरीर हो जाते हैं। रत्ना इतने लाड़-प्यार पर भी बड़ी सुशील बालिका थी। किसी नौकर

को 'रे' न पुकारती, किसी भिखारी तक को न दुत्कारती, नथुवा को वह पैसे, मिठाइयाँ दे दिया करती थी। कभी–कभी उससे बातें भी किया करती थी, इससे वह लौंड़ा उसके मुँह लग गया था।

उस दिन नथुवा रत्ना के सोने के कमरे में झाडू लगा रहा था। रत्ना दूसरे कमरे में मेमसाहब से अंग्रेजी पढ़ रही थी। नथुवा की शामत जो आई तो झाडू लगाते–लगाते उसके मन में यह इच्छा हुई कि रत्ना के पलंग पर सोऊँ। कैसी उजली चादर बिछी हुई हैं, गद्दा कितना नरम और मोटा हैं, कैसा सुन्दर दुशाला हैं! रत्ना इस गद्दे पर कितने आराम से सोती हैं, जैस चिड़िया के बच्चे घोंसले में, तभी तो रत्ना के हाथ इतने गोरे और कोमल हैं। मालूम होता हैं, देह में रुई भरी हुई हैं। यहाँ कौन आकर देखता हैं, सोचकर उसने पैर फर्श में पोंछे और चटपट पलंग पर आकर लेट गया और दुशाला ओढ़ लिया। गर्व और आनन्द से उसका हृदय पुलकित हो गया। वह मारे खुशी के दो–तीन बार पलंग पर उछल पड़ा। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो मैं रुई में लेटा हूँ। जिधर करवट लेता, देह अँगुल–भर धँस जाती थी। यह स्वर्गीय सुख मुझे कहाँ नसीब! मुझे भगवान ने रायसाहब का बेटा क्यों न बनाया? सुख का अनुभव होते ही उसे अपनी दशा का वास्तविक ज्ञान हुआ और चित्त क्षुब्ध हो गया। एकाएक रायसाहब किसी जरूरत से कमरे में आए तो नथुवा को रत्ना के

पलंग पर लेटे देखा, मारे क्रोध से जल उठे और बोले — क्यों बे सूअर, तू यह क्या कर रहा हैं?

नथुवा ऐसा घबराया मानो नदी में पैर फिसल पड़े हो। चारपाई से कूदकर अलग खड़ा हो गया और फिर झाडू हाथ में ले ली।

रायसाहब ने फिर पूछा — यह क्या कर रहा था, बे?

नथुवा — कुछ तो नहीं सरकार!

रायसाहब — अब तेरी इतनी हिम्मत हो गई कि रत्ना की चारपाई पर सोए? नमकहराम कहीं का! लाना मेरा हंटर।

हंटर मँगवाकर रायसाहब ने नथुवा को खूब पीटा। बेचारा हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था। मगर रायसाहब का क्रोध शान्त होने का नाम न लेता। सब नौकर जमा हो गए और नथुवा के जले पर नमक छिड़कने लगे। रायसाहब का क्रोध और भी बढ़ा। हंटर हाथ से फेंककर ठोकरों से मारने लगे। रत्ना ने रोना सुना तो दौड़ी हुई आई और समाचार सुनकर बोली — दादाजी, बेचारा मर जाएगा। अब इस पर दया कीजिए।

रायसाहब — मर जाएगा, उठवाकर फिंकवा दूँगा। इस बदमाशी का मजा तो मिल जाएगा।

रत्ना — मेरी ही चारपाई थी न, मैं उसे क्षमा करती हूँ।

रायसाहब — जरा देखो तो चारपाई की गत, पाजी के बदन की मैंल भर गई होगी, भला, इसे सूझी क्या? क्यों बे, तुझे सूझी क्या?

यह कहकर रायसाहब फिर लपके। मगर नथुवा आकर रत्ना के पीछे दुबक गया। इसके सिवा और कहीं शरण न थी। रत्ना ने रोककर कहा — दादाजी, मेरे कहने से अब इसका अपराध क्षमा कीजिए।

रायसाहब — क्या कहती हो रत्ना, ऐसे अपराधी कहीं क्षमा किए जाते हैं? खैर, तुम्हारे कहने पर छोड़ देता हूँ। नहीं तो आज जान लेकर छोड़ता, सुना बे, नथुवा, अपना भला चाहता हैं तो यहाँ फिर न आना। इसी दम निकल जा, सूअर, नालायक!

नथुवा प्राण छोड़कर भागा। पीछे फिरकर न देखा। सड़क पर पहुँचकर खड़ा हो गया। यहाँ रायसाहब उसकी कुछ नहीं कर सकते थे। यहाँ सब लोग उनकी मुँहदेखी तो न कहेंगे। कोई तो कहेगा कि लड़का था, भूल ही हो गई तो क्या प्राण ले लीजिएगा? यहाँ मारे तो देखूँ, गाली देकर भागूँगा, फिर कौन मुझे पा सकता हैं। इस विचार से उसकी हिम्मत बँधी। बंगले की तरफ मुँह करके जोर से बोला — यहाँ आओ तो देखें। फिर भागा कि कहीं रायसाहब ने सुन न लिया हो।

2

नथुवा थोड़ी ही दूर गया कि रत्ना की मेम साहिबा अपने टमटम पर सवार आती हुई दिखाई दी। उसने समझा, शायद मुझे पकड़ने आ रही हैं। फिर भागा, किन्तु जब पैरों में दौड़ने की शक्ति न रही तो खड़ा हो गया। उसके मन ने कहा, वह मेरा क्या कर लेगी, मैंने उनका कुछ बिगाड़ा हैं? एक क्षण में मेम साहिबा आ पहुँची और टमटम रोककर बोली — नाथू, कहाँ जा रहे हो?

नथुवा — कहीं नहीं।

मेमसाहिबा — रायसाहब के यहाँ फिर जाएगा तो वह मारेंगे, क्यों नहीं मेरे साथ चलता। मिशन में आराम से रह, आदमी हो जाएगा।

नुथवा — किरस्तान तो न बनाओगी?

मेमसाहिबा — किरस्तान क्या भंगी से भी बुरा हैं, पागल!

नथुवा — न भैया, किरस्तान न बनूँगा।

मेमसाहिब — तेरा जी चाहे न बनना, कोई जबरदस्ती थोड़ी ही बना देगा।

नथुवा थोड़ी देर तक टमटम के साथ चला, पर उसके मन में संशय बना हुआ था। सहसा वह उतर गया।

मेमसाहिबा ने पूछा — क्यों, चलता क्यों नहीं?

नथुवा — मैने सुना हैं, मिशन मे जो कोई जाता हैं किरस्तान हो जाता हैं। मैं न जाऊँगा, आप झाँसा देती हैं।

मेमसाहिबा — अरे पागल, वहाँ तुझे पढ़ाया जाएगा। किसी की चाकरी न करनी पड़ेगी, शाम को खेलने की छुट्टी मिलेगी। कोट–पतलून पहनने को मिलेगी। चल के दो–चार दिन देख तो ले।

नथुवा ने इस प्रलोभन का उत्तर न दिया। एक गली से होकर भागा। जब टमटम दूर निकल गया तो वह निश्चित होकर सोचना लगा — जाऊँ? कहीं कोई सिपाही पकड़ कर थाने न ले जाए। मेरी बिरादरी के लोग तो वहाँ रहते हैं, क्या वह मुझे अपने घर रखेंगे, कौन बैठकर खाऊँगा। काम तो करूँगा। बस, किसी की पीठ पर रहना चाहिए, आज कोई मेरी पीठ पर होता तो मजाल थी कि रायसाहब मुझे यों मारते। सारी बिरादरी जमा हो जाती, घेर लेती, घर की सफाई बन्द हो जाती। कोई द्वार पर झाडू तक न लगाता। सारी रायसाहबी निकल जाती। यह निश्चय करके वह घूमता–फिरता भंगियों के मुहल्ले में जा

पहुँचा। शाम हो गई थी। कई भंगी एक पेड़ के नीचे चटाइयों पर बैठे शहनाई और तबला बजा रहे थे। वह नित्य इसका अभ्यास थे। यह उनकी जीविका था। गान–विद्या की यहाँ जितनी छीछालेदर हुई, उतनी कहीं और न हुई होगी? नथुवा जाकर वहाँ खड़ा हो गया। उसे बहुत ध्यान से सुनते देख एक भंगी ने पूछा — कुछ गाता हैं?

नथुवा — अभी तो नहीं गाता, पर सिखा दोंगे तो गाने लगूँगा।

भंगी — बहाना मत कर, बैठ, कुछ गाकर सुना। मालूम तो हो कि तेरे गला भी हैं या नहीं। गला ही न होगा, तो क्या कोई सिखाएगा।

नथुवा मामूली बाजार के लड़को की तरह कुछ–न–कुछ गाना जानता ही था। रास्ते चलता तो कुछ–न–कुछ गाने लगता। तुरन्त गाने लगा। उस्ताद ने सुना, जौहरी था, समझ गया यह काँच का टुकड़ा नहीं हैं। बोला — कहाँ रहता हैं?

नथुवा ने अपनी रामकहानी सुनाई। परिचय हो गया, उसे आश्रय मिल गया और विकास कह अवसर मिल गया, जिसने उसे भूमि से आकाश पर पहुँचा दिया।

3

तीन साल उड़ गए। नथुवा के गाने की सारे शहर में धूम मच गई और वह केवल एक गुणी नहीं था, सर्वगुणी थी। गाना, शहनाई बजाना, पखावज, सारंगी, तम्बूरा, सितार सभी कलाओं में दक्ष हो गया। उस्तादों को उसकी चमत्कारिक बुद्धि पर आश्चर्य होता था। ऐसा मालूम होता था कि उसने पहले ही पढ़ी हुई विद्या दुहरा ली हैं। लोग दस–दस सालों तक सितार बजाना सिखते रहते हैं और नहीं आता। नथुवा को एक महीने में उसके तारों का ज्ञान हो गया। ऐसे कितने ही रत्न पड़े हुए हैं, जो किसी पारखी से भेंट न होने के कारण मिट्टी में मिल जाते हैं।

संयोग से इन्हीं दिनों ग्वालियर में एक संगीत–सम्मेलन हुआ। देश–देशान्तरों से संगीत के आचार्य निमंत्रित हुआ। उस्ताद घूरे को भी नवेता मिला। नथुवा इन्हीं का शिष्य था। उस्ताद ग्वालियर चले तो नाथू को भी साथ लेते गए। एक सप्ताह तक ग्वालियर में बड़ी धूमधाम रही। नाथूराम ने वहाँ खूब नाम कमाया, उसे सोने का तमगा इनाम मिला। ग्वालियर के संगीत–विद्यालय के अध्यक्ष ने उस्ताद घूरे से आग्रह किया कि नाथूराम को संगीत–विद्यालय में दाखिल करा दो। यहाँ संगीत के

साथ उसकी शिक्षा भी हो जाएगी। घूरे को मानना पड़ा, नाथूराम भी राजी हो गया।

नाथूराम ने पाँच वर्षों में विद्यालय की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त कर ली। इसके साथ-साथ भाषा, गणित और विज्ञान में उसकी बुद्धि ने अपनी प्रखरता का परिचय दिया। अब वह समाज का भूषण था। कोई उससे न पूछता , कौन जाति हो। उसका रहन-सहन, तौर-तरीका अब गायकों का-सा नहीं, शिक्षित समुदाय का-सा था। अपने सम्मान की रक्षा के लिए वह ऊँचे वर्ण वालो का-सा आचरण करने लगा। मदिरा-माँस त्याग दिया। नियमित रूप से सन्ध्योपासना करने लगा। कोई कुलीन ब्राह्मण भी इतना आचार-विचार न करता होगा। नाथूराम तो पहले ही उसका नाम हो चुका था, अब उसका कुछ और सुसंस्कार हुआ। वह नाथूराम आचार्य मशहूर हो गया। साधारणतः लोग 'आचार्य' ही कहा करते थे। राज-दरबार से उसे अच्छा वेतन मिलने लगा। 18 वर्ष की आयु में इतनी ख्याति बिरले ही किसी गुणी को नसीब होती हैं। लेकिन ख्याति-प्रेम वह प्यास हैं, जो कभी नहीं बुझती। वह अगस्त ऋषि की भाँति सागर को पीकर भी शान्त नहीं होती। महाशय आचार्य ने योरोप को प्रस्थान किया। वह पाश्चात्य संगीत पर भी अधिकृत होना चाहते थे। जर्मनी के सबसे बडे संगीत-विद्यालय में दाखिल हो गए और पाँच वर्षों के निरंतर

परिश्रम और उद्योग के बाद आचार्य की पदवी लेकर इटली की सैर करते हुए ग्वालियर लौट आए और उसके एक सप्ताह के बाद मदन कम्पनी ने उन्हें तीन हजार रुपए मासिक वेतन पर अपनी शाखाओं का निरीक्षक नियुक्त किया। वह योरोप जाने के पहले भी हजार रुपए जमा कर चुके थे। योरोप में भी ओपराओं और नाट्यशालाओं में उनकी खूब आवभगत हुई थी। कभी–कभी तो इतनी आमदनी हो जाती थी, जितनी यहाँ के बड़े–से–बड़े गवैयों को बरसों में नहीं होती। लखनऊ से विशेष प्रेम होने के कारण उन्होंने वहीं निवास करने का निश्चय किया।

4

आचार्य महाशय लखनऊ पहुँचे तो उनका चित्त गद्गद हो गया। यहीं उनका बचपन बीता था। यहीं एक दिन वह अनाथ थे। यहीं गलियों में कनकौए लूटते फिरते थे। यहीं बाजारों में पैसे माँगते–फिरते थे। आह! यहीं उनपर हंटरों की मार पड़ी थी, जिसके निशान अब तक थे। अब वह दाग इन्हें सौभाग्य की रेखाओं से भी प्रिय लगते। यथार्थ में यह कोड़े की मार उनके लिए शिव का वरदान थी। रायसाहब के प्रति अब उनके दिल में

क्रोध या प्रतिकार का लेशमात्र भी न था। उनकी बुराइयाँ भूल गई थीं भलाइयाँ याद रह गई थी। और रत्ना तो उन्हें दया और वात्सल्य की मूर्ति–सी याद आती। विपत्ति पुराने घावों को बढ़ाती हैं, सम्पत्ति उन्हें भर देती हैं! गाड़ी से उतरे तो छाती धड़क रही थी। 10 वर्ष का बालक 23 वर्ष का जवान, शिक्षित भद्र युवक हो गया था। उसकी माँ भी उसे देखकर न कह सकती कि यही मेरा नथुवा हैं। लेकिन उनकी कायापलट की अपेक्षा नगर की कायापलट और भी विस्मयकारी थी। यह लखनऊ नहीं, कोई दूसरा ही नगर था।

स्टेशन से बाहर निकलते ही देखा कि शहर के कितने ही छोटे–बड़े आदमी उनका स्वागत करने को खड़े हैं। उनमें एक युवती रमणी थी, जो रत्ना से बहुत मिलती थी। लोगों ने उससे हाथ मिलाया और रत्ना ने उनके गले में फूलों का हार डाल दिया। यह विदेश में भारत का नाम रोशन करने का पुरस्कार था। आचार्य के पैर डगमगाने लगे। ऐसा जान पड़ता था, अब नहीं खड़े रह सकते। यह वही रत्ना हैं, भोली–भाली बालिका ने सौन्दर्य, लज्जा, गर्व और विनय की देवी का रूप धारण कर लिया हैं। उनकी हिम्मत न पड़ी कि रत्ना की तरफ सीधी आँखों देख सके।

लोगों ने हाथ मिलाने के बाद वह उस बंगले में आए जो उनके लिए पहले ही से सजाया गया था। उसको देखकर वे चौंक पड़े। यह वहीं बंगला था जहाँ रत्ना के साख वह खेलते थे। सामान भी वही था। तस्वीरे वहीं, कुर्सियाँ और मेजें वहीं, शीशे के आलात वही। यहाँ तक कि फर्श भी वही था। अन्दर कदम रखते हुए आचार्य महाशय के हृदय में कुछ वही भाव जाग्रत हो रहे थे, जो किसी देवता के मन्दिर में जाकर धर्मपरायण हिन्दू के हृदय में होते हैं। वह रत्ना के शयनागार में पहुँचे तो उनके हृदय में ऐसी ऐंठन हुई कि आँसू बहने लगे — यह वहीं पलंग है, वही बिस्तर और वही फर्श! उन्होंने अधीर होकर पूछा — यह किसका बंगला हैं?

कम्पनी का मैनेजर साथ था, बोला — एक राय भोलानाथ हैं, उन्हीं का हैं।

आचार्य — रायसाहब कहाँ गए?

मैनेजर — खुदा जाने कहाँ चले गए। यह बंगला कर्ज की इल्लत में नीलाम हो रहा था मैने देखा हमारे थिएटर के करीब हैं। अधिकारियों से खत-किताबत की और इसे कम्पनी के नाम खरीद लिया। 40 हजार में यह बंगला सामान समेत लिया गया।

आचार्य — मुफ्त मिल गया। तुम्हें रायसाहब की कुछ खबर नहीं?

मैनेजर — सुना था कि कहीं तीर्थ करने गए थे, खुदा जाने लौटें या नहीं।

आचार्य महाशय जब शाम को सावधान होकर बैठे तो एक आदमी से पूछा — क्योंजी, उस्ताद घूरे का भी हाल जानते हो। उनका नाम बहुत सुना हैं।

आदमी ने सकरुण भाव से कहा — खुदाबन्द, उनका हाल कुछ न पूछिए। शराब पीकर घर आ रहे थे। रास्ते में बेहोश होकर सडक पर गिर पड़े। उधर से एक मोटरगाड़ी आ रही थी, ड्राइवर ने देखा नहीं, गाड़ी उनके ऊपर से निकल गई। सुबह को लाश मिली। खुदाबन्द फन में एक था, अब उसकी मौत से लखनऊ वीरान हो गया। अब ऐसा कोई नहीं रहा जिस पर लखनऊ को घमंड हो। नथुवा नाम के एक लड़के को उन्होंने कुछ सिखाया था और उससे हम लोगों को उम्मीद था कि उस्ताद का नाम जिंदा रखेगा। पर वह यहाँ से ग्वालियर चला गया। फिर पता नहीं कि कहाँ गया।

आचार्य महाशय के प्राण सूखे जाते थे कि अब बात खुली, अब खुली। दम रुका हुआ था जैसे कोई तलवार लिए सिर पर ख़ड़ा हो। बारे कुशल हुई, घड़ा चोट खाकर भी बच गया।

5

आचार्य महाशय उस घर में रहते थे, किन्तु उसी तरह जैसे कोई नई बहू अपने ससुराल में रहें। उनके हृदय से पुराने संस्कार न मिटते थे। उनकी आत्मा इस यथार्थ को स्वीकार न करती कि अब यह मेरा घर हैं। वह जोर से हँसते तो सहसा चौंक पड़ते। मित्रगण आकर शोर मचाते तो उन्हें एक अज्ञात शंका होती। लिखने-पढ़ने के कमरे में शायद वह सोते तो उन्हें रात-भर नींद न आती। यह ख्याल दिल में जमा हुआ था कि यह पढ़ने-लिखने का कमरा हैं। बहुत अच्छा होने पर भी वह पुराने सामान को बदल न सकते थे। और रत्ना के शयनागार को तो उन्होंने फिर कभी नहीं खोला। वह ज्यों-का-ज्यों बन्द पड़ा रहता था। उसके अन्दर जाते हुए उनके पैर थरथराने लगते थे। उस पलंग पर सोने का ध्यान ही उन्हें नहीं आया।

लखनऊ में कई बार उन्होंने विश्वविद्यालय में अपने संगीत–नैपुण्य दिखाया। किसी राजा–रईस के घर अब वह गाने न जाते थे, चाहे कोई उन्हें लाखों रुपए ही क्यों न दे। यह उनका प्रण था, लोग उनका अलौकिक गान सुनकर अलौकिक आनन्द उठाते थे।

एक दिन प्रातःकाल आचार्य महाशय सन्ध्या से उठे थे कि राय भोलानाथ उनसे मिलने आए। रत्ना भी साथ थी। आचार्य महाशय पर रोब छा गया। बड़े–बड़े योरोपी थिएटरों में भी उनका हृदय इतना भयभीत न हुआ था। उन्होंने जमीन तक झुककर राय साहब को सलाम किया। भोलानाथ उनकी नम्रता से कुछ विस्मित–से हो गए। बहुत दिनों हुए जब लोग उन्हें सलाम किया करते थे। अब तो जहाँ जाते थे, हँसी उड़ाई जाती थी। रत ना भी लज्जित हुई। रायसाहब ने कातर नेत्रों से इधर–उधर देखकर कहा — आपको यह जगह तो पसंद आई होगी?'

आचार्य — जी हाँ, इससे उत्तम स्थान की तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता।

रायसाहब — यह मेरा ही बंगला हैं। मैंने ही इसे बनवाया और मैंने ही इसे बिगाड़ दिया।

रत्ना ने झेंपते हुए कहा — दादाजी, इन बातों से क्या फायदा?

भोलानाथ — फायदा नहीं हैं बेटी, नुकसान भी नहीं। सज्जनों से अपनी विपत्ति कहकर चित्त शान्त होता हैं। महाशय, यह मेरा ही बंगला हैं, या यों कहिए कि था। 50 हजार सालाना इलाके से मिलते थे। कुछ आदमियों की संगत में मुझे सट्टे का चस्का पड़ गया। दो–तीन बात ताबड़–तोड़ बाजी हाथ आई। हिम्मत खुल गई, लाखों के बारे–न्यारे होने लगे। किन्तु एक ही घाटे में सारी कसर निकल गई। बधिया बैठ गई, सारी जायदाद खो बैठा। सोचिए, पचीस लाख का सौदा था। कौड़ी चित्त पड़ती तो आज इस बंगले का कुछ और ही ठाट होता। नहीं तो अब पिछले दिनों को याद कर–करके हाथ मलता हूँ। मेरी रत्ना को आपके गाने से बड़ा प्रेम हैं। जब देखो आप ही की चर्चा किया करती हैं। मैंने इसे बी. ए. तक पढ़ाया...।

रत्ना का चेहरा शर्म से लाल हो गया। बोला — दादाजी, आचार्य महाशय मेरा हाल जानते हैं। उनको मेरे परिचय की जरूरत नहीं। महाशय, क्षमा कीजिएगा, पिताजी उस घाटे के कारण कुछ अव्यवस्थित चित्त–से हो गए हैं। वह आपसे यह प्रार्थना करने आए हैं कि यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो वह कभी–कभी इस बंगले को देखने आया करे। इससे उनके आँसू पुँछ जाएँगें। उन्हें इस विचार से संतोष होगा कि मेरा कोई मित्र इसका स्वामी हैं। बस, यही कहने के लिए यह आपकी सेवा में आए हैं?

आचार्य ने विनयपूर्ण शब्दों में कहा — इसके पूछने की जरूरत नहीं हैं। घर आपका हैं, जिस वक्त जी चाहे शौक से आए। बल्कि आपकी इच्छा हो तो आप इसमें रह सकते हैं। मैं अपने लिए कोई दूसरा स्थान ठीक कर लूँगा।

रायसाहब ने धन्यवाद दिया और चले गए। वह दूसरे-तीसरे दिन यहाँ जरूर आते और घंटो बैठे रहते। रत्ना भी उनके साथ अवश्य आती। फिर वह एक बार प्रतिदिन आने लगे।

एक दिन उन्होंने आचार्य महाशय को एकान्त में ले जाकर पूछा — क्षमा कीजिएगा, आप अपने बाल बच्चों को क्यों नहीं बुला लेंते? अकेले तो आपको बहुत कष्ट होता होगा।

आचार्य — मेरा तो अभी विवाह नहीं हुआ और न करना चाहता हूँ।

यह कहते ही आचार्य ने आँखें नीची कर लीं।

भोलानाथ — यह क्यों, विवाह से आपको क्यों द्वेष हैं?

आचार्य — कोई विशेष कारण तो नहीं बता सकता, इच्छा ही तो हैं।

भोलानाथ — आप ब्राह्मण हैं?

आचार्य का रंग उड़ गया। उन्होंने सशंक होकर कहा — योरोप की यात्रा के बाद वर्णभेद नहीं रहता। जन्म से चाहे जो कुछ हूँ, कर्म से तो शूद्र ही हूँ।

भोलानाथ — आपकी नम्रता को धन्य हैं। संसार में ऐसे सज्जन लोग भी पड़े हुए हैं। मैं भी कर्मों ही से वर्ण मानता हूँ। नम्रता, शील, विनय, आचार, धर्मनिष्ठा, विद्याप्रेम, यह सब ब्राह्मणों के गुण हैं और मैं आपको ब्राह्मण ही समझता हूँ। जिसमें यह गुण नही, वह ब्राह्मण नहीं, कदापि नहीं। रत्ना को आपसे बड़ा प्रेम हैं। आज तक कोई पुरुष उसकी आँखों में नहीं जँचा। किन्तु आपने उसे वशीभूत कर लिया हैं। इस धृष्टता को क्षमा कीजिएगा। आपके माता-पिता...।

आचार्य — मेंरे माता-पिता तो आप ही हैं। जन्म किसने दिया, यह मैं स्वयं नहीं जानता। मैं बहुत छोटा था तभी उनका स्वर्गवास हो गया।

भोलानाथ — आह! वह आज जीवित होते तो आपको देखकर उनकी गज-भर की छाती होती। ऐसे सपूत बेटे कहाँ होते हैं।

इतने में रत्ना एक कागज लिए हुए आई और रायसाहब से बोली — दादाजी, आचार्य महाशय काव्य-रचना भी करते हैं। मैं इनकी

मेंज पर से यह उठा लाई हूँ। सरोजिनी नायडू के सिवा ऐसी कविता मैंने और कहीं नहीं देखी।

आचार्य ने छिपी हुई निगाहों से एक बार रत्ना को देखा और झेंपते हुए बोले — यों ही कुछ लिख लिया था। मैं काव्य-रचना क्या जानूँ?

6

प्रेम से दोनों विह्वल हो रहे थे। रत्ना उसके गुणों पर मोहित थे। आचार्य उसके मोह के वशीभूत थे। अगर रत्ना उनके रास्ते में न आती तो कदाचित वह उससे परिचित भी न होते! किन्तु प्रेम की फैली हुई बाँहों का आकर्षण किस पर न होगा? ऐसा हृदय कहाँ हैं, जिस प्रेम जीत न सकें?

आचार्य महाशय बड़ी दुविधा में पड़े खड़े थे। उनका दिल कहता था, जिस क्षण रत्ना पर मेरी असलियत खुल जाएगी, उसी क्षण वह मुझसे सदैव के लिए मुँह फेर लेगी। वह कितनी ही उदार हो, जाति के बन्धन को कितना ही कष्टमय समझती हो, किन्तु उस घृणा से मुक्त नहीं हो सकती तो स्वभावतः मेरे प्रति उत्पन्न होगी। मगर इस बात को जानते हुए भी उनकी हिम्मत न पड़ती

थी कि अपना वास्तविक स्वरूप खोलकर दिखा दें। आह! यदि घृणा ही तक होती तो कोई बात न थी, मगर उसे दुख होगा, पीड़ा होगी। उसका हृदय विदीर्ण हो जाएगा। उस दशा में न जाने क्या कर बैठे। उसे इस अज्ञात दशा में रखते हुए प्रणय-पाश को दृढ करना उन्हें परले सिरे की नीचता प्रतीत होती थी। यह कपट हैं, दगा हैं, धूर्तता हैं जो प्रेमाचरण में सर्वथा निषिद्ध हैं। इस संकट में पड़े हुए कुछ निश्चय न कर सकते थे कि क्या करना चाहिए। उधर रायसाहब की आमदोरफ्त दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। उनके मन की बात एक-एक शब्द से झलकती थी। रत्ना का आना-जाना बन्द होता जाता था जो उनके आशय को और भी प्रकट करता था। इस प्रकार तीन-चार महीने व्यतीत हो गए। आचार्य महाशय सोचते, यह वही रायसाहब हैं, जिन्होंने केवल रत्ना की चारपाई पर जरा देर लेटने के लिए मुझे मारकर घर से निकाल दिया था। जब मालूम होगा कि मैं वही अनाथ, अछूत, आश्रयहीन बालक हूँ तो उन्हें कितनी आत्मवेदना कितनी अपमान-पीड़ा, कितनी लज्जा, कितनी दुराशा, कितना पश्चात्ताप होगा!

एक दिन रायसाहब ने कहा — विवाह की तिथि निश्चित कर लेनी चाहिए। इस लग्न में मैं इस ऋण से उऋण हो जाना चाहता हूँ।

आचार्य महाशय ने बात के मतलब समझकर भी प्रश्न किया — कैसी तिथि?

रायसाहब — यही रत्ना के विवाह की। मैं कुंडली का तो कायल नहीं, पर विवाह तो शुभ मुहूर्त में ही होगा।

आचार्य भूमि की ओर ताकते रहे, कुछ न बोले।

रायसाहब — मेरी अवस्था तो आपको मालूम ही हैं। कुश-कन्या के सिवा और किसी योग्य नहीं हूँ। रत्ना के सिवा और कौन हैं जिसके लिए उठा रखता।

आचार्य महाशय विचारों में मग्न थे।

रायसाहब — रत्ना को आप स्वयं जानते हैं, आपसे प्रशंसा करनी व्यर्थ हैं। वह अच्छी हैं या बुरी, उसे आपको स्वीकार करना पड़ेगा।

आचार्य महाशय की आँखों से आँसू बह रहे थे।

रायसाहब — मुझे पूरा विश्वास हैं कि आपको ईश्वर ने उसी के लिए यहाँ भेजा हैं। मेरी ईश्वर से यही याचना हैं कि तुम दोनों का जीवन सुख से कटे। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती। इस कर्तव्य से मुक्त होकर इरादा हैं

कि कुछ दिन भगवत-भजन करूँ। गौण रूप से आप ही उस फल के भी अधिकारी होंगे।

आचार्य ने अवरुद्ध-कंठ से कहा — महाशय, आप मेरे पिता तुल्य हैं, पर मैं इस योग्य कदापि नहीं हूँ।

रायसाहब ने उन्हें गले लगाते हुए कहा — बेटा, तुम सर्वगुण-सम्पन्न हो। तुम समाज के भूषण हो। मेरे लिए महान गौरव की बात हैं कि तुम-जैसा दामाद पाऊँ। मैं आज तिथि आदि ठीक करके कल आपको सूचना दूँगा।

यह कहकर रायसाहब उठ खड़े हुए। आचार्य कुछ कहना चाहते थे, पर मौका न मिला। या यों कहो हिम्मत न पड़ी। मनोबल न था, घृणा सहन करने की इतनी शक्ति न थी।

7

विवाह हुए महीना-भर हो गया। रत्ना के आने से पतिगृह में उजाला हो गया हैं और पति-हृदय पवित्र। सागर में कमल खिल गया। रात का समय था आचार्य महाशय भोजन करके लेटे हुए

थे। उसी पलंग पर जिसने किसी दिन उन्हें घर से निकलवाया था, जिसने उनके भाग्यचक्र को परिवर्तित कर दिया था।

महीना-भर से वह अवसर ढूँढ़ रहे थे कि वह रहस्य रत्ना को बतता दूँ। उनका संस्कारों से दबा हुआ हृदय यह नहीं जानता कि मेरा सौभाग्य मेरे गुणों ही का अनुग्रह हैं। वह अपने रुपए को भट्ठी में पिघलाकर उसका मूल्य जानने की चेष्टा कर रहे हैं। किन्तु अवसर नहीं मिलता, रत्ना ज्यों ही सामने आ जाती हैं, वह मंत्रमुग्ध-से हो जाते हैं। बाग में रोने कौन जाता हैं, रोने के लिए तो अंधेरी कोठरी ही चाहिए।

इतने में रत्ना मुस्कराती हुई कमरे में आई, दीपक की ज्योति मन्द पड़ गई।

आचार्य ने मुस्कराकर कहा — अब चिराग गुल कर दूँ न?

रत्ना बोली — क्यों, क्या मुझसे शर्म आती हैं?

आचार्य — हाँ, वास्तव में शर्म आती हैं।

रत्ना — इसलिए कि मैंने तुम्हें जीत लिया?'

आचार्य — नहीं इसलिए कि मैंने तुम्हें धोखा दिया।

रत्ना — तुममें धोखा देने की शक्ति नहीं हैं।

आचार्य — तुम नहीं जानती, मैंने तुम्हें बहुत बड़ा धोखा दिया हैं।

रत्ना — सब जानती हूँ।

आचार्य — जानती हो मैं कौन हूँ?

रत्ना — खूब जानती हूँ। बहुत दिनों से जानती हूँ, जब हम तुम दोनों इसी बगीचे में खेला करते थे। मैं तुमको मारती थी और तुम रोते थे। मैं तुमको अपनी झूठी मिठाइयाँ देती थी और तुम दौड़कर लेते थे। तब भी मुझे तुमसे प्रेम था, वह दया के रूप में व्यक्त होता था।

आचार्य ने चकित होकर कहा — रत्ना यह जानकर भी तुमने...

रत्ना — हाँ, जानकर ही, न जानती तो शायद न करती।

आचार्य — यह वही चारपाई हैं।

रत्ना — और मैं घाते में।

आचार्य ने उसे गले लगाकर कहा — तुम क्षमा का देवी हो।

रत्ना ने उत्तर दिया — मैं तुम्हारी चेरी हूँ।

आचार्य — रायसाहब भी जानते हैं?

रत्ना — नहीं, उन्हें नहीं मालूम हैं। उनसे भूलकर भी न कहना, नहीं तो आत्मघात कर लेंगे।

आचार्य — वह कोड़े भी अभी तक याद हैं।

रत्ना — अब पिताजी के पास उसका प्रायश्चित करने के लिए कुछ नहीं रह गया, क्या अब भी तुम्हें संतोष नहीं हुआ?

विचित्र होली

होली का दिन था। मिस्टर ए. बी. क्रास शिकार खेलने गए हुए थे। साईस, अर्दली, मेहतर, भिश्ती, ग्वाला, धोबी सब होली मना रहे थे। सभी ने साहब के जाते ही खूब गहरी भंग चढ़ाई थी और इस समय बगीचे में बैठे हुए होली, फाग गा रहे थे। पर रह-रहकर बंगले के फाटक की तरफ झाँक लेते थे कि साहब आ तो नहीं रहे हैं। इतने में शेख नूरअली सामने खड़े हो गए।

साईस ने पूछा — कहो खानसामाजी, साहब कब आएँगे?

नूरअली बोला — उसका जब जी चाहे आए, मेरा आज इस्तीफा हैं। अब इसकी नौकरी न करूँगा।

अर्दली ने कहा — ऐसी नौकरी फिर न पाओगे। चार पैसे ऊपर की आमदनी हैं, नाहक छोड़ते हो।

नूरअली — अजी, लानत भेजो! अब मुझसे गुलामी न होगी। यह हमें जूतों से ठुकरायें और हम इनकी गुलामी करे! आज यहाँ से डेरा कूच हैं। आओ, तुम लोगों की दावत करूँ, चले आओ।

कमरे मे आराम से मेज पर डट जाओ। वह बोतलें पिलाऊँ कि जिगर ठंडा हो जाए।

साईस — और जो कहीं साहब आ जाएँ?

नूरअली — वह अभी नहीं आने का, चले आओ।

साहबों के नौकर प्रायः शराबी होते हैं, जिस दिन से साहब के यहाँ गुलामी लिखाई, उसी दिन से यह बला उनके सिर पड़ जाती हैं। जब मालिक स्वयं बोतल–की–बोतल उँड़ेल जाता हो तो भला नौकर क्यों चुकने लगे। यह निमंत्रण पाकर सब–के–सब उठे। भंग का नशा चढ़ा ही हुआ था। ढोल–मंजरी छोड़–छोड़कर नूरअली के साथ चले और साहब के खाने के कमरे में कुर्सियों पर आ बैठे। नूरअली ने व्हिस्की की बोतल खोलकर गिलास भरे और चारों ने चढ़ाना शुरू किया। ठर्रा पीने वाले ने जब यह मजेदार चीजें पाई तो गिलास लुढ़काने लगे। खानसामा भी उत्तेजित करता जाता था। जरा देर में सभी के सिर फिर गए। भय जाता रहा। एक ने होली छेड़ी, दूसरे ने सुर मिलाया। गाना होने लगा। नूरअली ने ढोल–मजीरा लाकर रख दिया। वहीं मजलिस जम गई। गाते–गाते एक उठकर नाचने लगा। दूसरा उठा यहाँ तक की सब–के–सब कमरे में चौकड़ियाँ भरने लगे। हू–हक मचने लगा। कबीर, फाग, चौताल, गाली–गलौज, मारपीट

बारी–बारी सबका नम्बर आया। सब ऐसे निडर हो गए थे, मानो अपने घर में हैं। कुर्सियाँ उलट गई, दीवारों की तस्वीरें टूट गई, एक ने मेज उलट दी। दूसरे ने रिकाबियों को गेंद बनाकर उछालना शुरू किया।

यहाँ यहीं हंगामा मचा हुआ था कि शहर के रईस लाला उजागरमल का आगमन हुआ। उन्होंने यह कौतुक देखा तो चकराए। खानसामा से पूछा — यह क्या गोलमाल हैं शेखजी, साहब देखेंगे तो क्या कहेंगे?

नूरअली — साहब का हुक्म ही ऐसा हैं तो क्या करें, आज उन्होंने अपने नौकरों की दावत की हैं। उनसे होली खेलने को भी कहा हैं। सुनते है लाट साहब के यहाँ से हुक्म आया हैं कि रिआया के साथ खूब रब्त–जब्त रखो। उनके त्योहारों में शरीक हो, तभी तो यह हुक्म दिया हैं। नहीं तो इनके मिजाज ही मिलते हैं। आइए, तशरीफ रखिए। निकालूँ कोई मजेदार चीज! अभी हाल में ही विलायत से पार्सल आया हैं।

राय उजागरमल बड़े उदार विचारों के मनुष्य थे। अंग्रेजी दावतों में बेधड़क शरीक होते थे। रहन–सहन भी अंग्रेजी ही था और यूनियन क्लब के तो वह एक मात्र कर्ता ही थे। अंग्रेजों से उनकी खूब छनती हैं और मिस्टर क्रास तो उनके परम मित्र ही

थे। जिलाधीश से, चाहे वह कोई हो, सदैव उनकी घनिष्ठता रहती थी। नूरअली की बातें सुनते ही एक कुर्सी पर बैठकर बोले — अच्छा! यह बात हैं? हाँ, तो फिर निकालों कोई मजेदार चीज! कुछ गजल भी हो।

नूरअली — आपके लिए सब–कुछ हाजिर हैं।

लाला साहब कुछ तो घर ही से पीकर चले थे। यहाँ भी कई गिलास चढ़ाए तो जबान लड़खड़ाते हुए बोले — क्यों नूरअली, आज साहब होली खेलेंगे?

नूरअली — जी हाँ।

उजागर — लेकिन मैं रंग–वंग तो लाया नहीं। भेजो चटपट किसी को मेरी कोठी से रंग–पिचकारी वगैरह लाए। (साईस से) क्यों घसीटे, आज तो बड़ी बहार हैं।

घसीटे — बड़ी बहार हैं, बहार हैं, होली हैं!

उगाजर — (गाते हुए) आज साहब के साथ मेरी होली मचेगी, आज साहब के साथ मेरी होली मचेगी। खूब पिचकारी चलाऊँगा।

घसीटे — खूब अबीर लगाऊँ।

ग्वाला — खूब गुलाल उड़ाऊँगा।

धोबी — बोतल–पर–बोतल चढ़ाऊँगा।

अर्दली — खूब कबीरे सुनाऊँगा।

उजागर — आज साहब के साथ मेरी होली मचेगी।

नूरअली — अच्छा, सब लोग सँभल जाओ, साहब का मोटर आ रहा हैं। सेठजी, यह लीजिए मैं दौड़कर रंग–पिचकारी लाया। बस एक चौताल छेड़ दीजिए और जैसे ही साहब कमरे मे आएँ, उनपर पिचकारी छोड़िए और (दूसरे से) तुम लोग भी उनके मुँह में गुलाल मलो। साहब मारे खुशी के फूल जाएँगे। वह लो, मोटर हाते में आ गया। होशियार!

2

मिस्टर क्रास अपनी बन्दूक हाथ में लिए मोटर से उतरे और लगे आदमियों को बुलाने। पर वहाँ तो जोरों सो चौताल हो रहा था। सुनता कौन हैं, चकराए। यह क्या मामला हैं? क्या सब मेरे कमरे में गा रहे हैं? क्रोध से भरे हुए बंगले में दाखिल हुए तो डाइनिंगरूम (भोजन करने के कमरे में) से गाने की आवाज आ रही थी। अब क्या था? जामे से बाहर बाहर हो गए। चेहरा विकृत हो गया। हंटर उतार लिया और डाइनिंगरूम की ओर चले। लेकिन अभी तक एक कदम दरवाजे के बाहर ही था कि

सेठ उजागरमल ने पिचकारी छोड़ी। सारे कपड़े तर हो गए। आँखों में भी रंग घुस गया। आँखें पोंछ ही रहे थे कि साईस, ग्वाला सब-के-सब दौड़े और साहब को पकड़कर उनके मुँह में रंग मलने लगे। धोबी ने तेल और कालिख का पाउडर लगा दिया! साहब के क्रोध की सीमा न रही। हंटर पड़े तो नशा हिरन हो गया। कोई इधर भागा, कोई उधर। सेठ उजागरमल ने यह रंग देखा तो ताड़ गए कि नूरअली ने झाँसा दिया। एक कोने में दुबके रहे। जब कमरा नौकरों से खाली हो गया तो साहब उसकी ओर बढ़े। लाला साहब के होश उड़ गए। तेजी से कमरे के बाहर निकले और सिर पर पैर रखकर बेतहाशा भागे। साहब उनके पीछे दौड़े। सेठजी की फिटन फाटक पर खड़ी थी, घोड़े ने धम-धम खटपट सुनी तो चौका, कनौतियाँ खड़ी की और फिटन ले भागा। विचित्र दृश्य था। आगे-आगे फिटन, उसके पीछे सेठ उजागरमल, उनके पीछे हंटरधारी मिस्टर क्रास, तीनों बगटुट दौड़े चले जाते थे। सेठजी एक बार ठोकर खाकर गिरे, पर साहब के पहुँचते-पहुँचते सम्भलकर उठे। हाते के बाहर सड़क तक घुड़दौड़ रही। अन्त में साहब रुक गए। मुँह में कालिए लगाए अब और आगे जाना हास्यजनक मालूम हुआ। यह विचार भी हुआ कि सेठजी को काफी सजा मिल चुकी। अपने नौकरों की खबर लेना भी जरूरी था, लौट गए। सेठ उजागरमल की

जान–में–जान आई। बैठकर हाँफने लगे। घोड़ा भी ठिठक गया। कोचवान ने उतरकर उन्हें सँभाला और गोद में उठाकर गाड़ी पर बैठा दिया।

3

लाला उजागरमल शहर सहयोगी समाज के नेता थे। उन्हें अंग्रेजों की भावी शुभकामनाओं पर पूर्ण विश्वास था। अंग्रेजी राज्य की तामीली, माली और मुल्की तरक्की के राग गाते रहते थे। अपनी वक्तृताओं में सहयोगियों को खूब फटकारा करते थे। अंग्रेजों में इधर उनका आदर–सम्मान विशेष रुप से होने लगा था।

बड़े–बड़े ठेके, जो पहले अंग्रेज ठेकेदारों ही को मिला करते थे, उन्हें भी दिए गए। सहयोग ने उनके मान और धन को खूब बढ़ाया। अतएव मुँह में चाहे वह असहयोग की कितनी निन्दा करे, पर मन में उसकी उन्नति चाहते थे। उन्हें यकीन था कि सहयोग एक हवा हैं, जब तक चलती रहे उसमें अपने गीले कपड़े सुखा ले। वह असहयोगियों के कृत्यों का खूब–बढ़ाकर बयान किया करते थे, और अधिकारियों के कृत्यों को इन गढ़ी हुई बातों पर विश्वास करते देखकर दिल में उनपर खूब हँसते थे।

ज्यों–ज्यों सम्मान बढ़ता था, उसका आत्माभिमान भी बढ़ता था। वह अब पहले की भाँति भीरु न थे। गाड़ी पर बैठे और जरा साँस फूलना बन्द हुआ तो इस घटना की विवेचना करने लगे। अवश्य नूरअली ने मुझे धोखा दिया, उसकी असहयोगियों से मिली–भगत हैं, ये लोग होली नहीं खेलते तो इतना क्रोधोन्मत्त होना इसके सिवाय और क्या बतलाता हैं कि हमें ये लोग कुत्तों से बेहतर नहीं समझते। इनको अपने प्रभुत्व का कितना घमंड हैं! यह मेरे पीछे हंटर लेकर दौड़े! अब विदित हुआ कि यह जो थोड़ा–बहुत सम्मान करते थे, वह केवल धोखा था। मन में यह हमें अब नीच और कमीना समझते हैं। लाल रंग कोई बाण नहीं था। हम बड़े दिनों में गिरजे जाते हैं। इन्हें डालियाँ देते हैं, वह हमारा त्योहार नहीं हैं। पर यह जरा–सा रंग छोड़ देने पर इतना बिगड़ उठा! हा! इतना अपमान! मुझे उसके सामने ताल ठोककर खड़ा हो जाना चाहिए था। भागना कायरता थी। इसी से दबाना चाहते हैं। इनकी यह विनयशीलता और सज्जनता केवल अपना मतलब गाँठने के लिए हैं। इनकी निरंकुशता, इतना गर्व वही हैं, जरा भी अन्तर नहीं।

सेठजी के हृदगत भावों ने उग्र रूप धारण किया। मेरी यह अधोगति! अपने अपमान की याद रह–रहकर उनके चित्त को विह्वल कर रही थी। यह मेरे सहयोग का फल हैं, मैं इसी योग्य

हूँ। मैं उनकी सौहार्दपूर्ण बातें सुन–सुन फूला न समाता था। मेरी मन्दबुद्धि को इतना भी न सूझता था कि स्वाधीन और पराधीन में कोई मेल नहीं हो सकता। मैं असहयोगियों की उदासीनता पर हँसता था, अब मालूम हुआ कि वे हास्यास्पद नहीं हैं, मैं स्वयं निंदनीय हूँ।

वह अपने घर न जाकर सीधे कांग्रेस कमेटी के कार्यालय की ओर लपके। वहाँ पहुँचे तो एक विराट सभा देखी। कमेटी ने शहर में छूत– अछूत, छोटे–बड़े, सबको होली का आनन्द मनाने के लिए निमंत्रित किया। हिन्दू–मुसलमान साथ–साथ बैठे प्रेम से होली खेल रहे थे। फल–भोज का भी प्रबन्ध किया गया था। इस समय व्याख्यान हो रहा था। सेठजी गाड़ी से तो उतरे, पर सभा स्थल में जाते संकोच होता था। ठिठकते हुए धीरे से जाकर एक ओर खड़े हो गए। उन्हें देखकर लोग चौंक पड़े, सब–के–सब विस्मित होकर उनकी ओर ताकने लगे। यह खुशामदियों के आचार्य आज यहाँ कैसे भूल पड़े? इन्हें तो किसी सहयोगी सभा में राज–भक्ति का प्रस्ताव पास करना चाहिए था। शायद भेद लेने आए हैं कि लोग क्या कर रहे हैं। उन्हें चिढ़ाने के लिए लोगो ने कहा — कांग्रेस की जय!

उजागरमल ने उच्च स्वर से कहा — असहयोग की जय!

फिर ध्वनि हुई — खुशामदियों की क्षय!

सेठजी ने उच्च स्वर से कहा — जी-हुजूरों की क्षय!

यह कहकर वह समस्त उपस्थित जनों को विस्मय में डालते हुए मंच पर जा पहुँचे और गम्भीर भाव से बोले — सज्जनों, मित्रों! मैंने अब तक आपसे असहयोग किया था उसे क्षमा कीजिए। सच्चे दिल से आपसे क्षमा चाहता हूँ। मुझे घर का भेदी, जासूस या विभीषण न समझिए। आज मेरी आँखों के सामने से परदा हट गया। आज इस पवित्र प्रेममयी होली के दिन मैं आपसे प्रेमालिंगन करने आया हूँ। अपनी विशाल उदारता का आचरण कीजिए, आपसे द्रोह करने का आज मुझे दंड मिल गया। जिलाधीश ने आज मेरा अपमान किया। मैं वहाँ से हंटरों की मार खाकर आपकी शरण आया हूँ। मैं देश का द्रोही था, जाति का शत्रु था, मैं अपने स्वार्थ के वश, अपने अविश्वास के वश देश का बड़ा अहित किया। खूब काँटे बोए। उनका स्मरण करके जी चाहता हैं कि हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दूँ।

एक आवाज — हाँ, अवश्य कर दीजिए, आपसे न बने तो मैं तैयार हूँ।

प्रधान की आवाज — यह कटु वाक्यों का अवसर नहीं हैं।

'नहीं, आपको यह कष्ट उठाने की जरूरत नहीं। मैं स्वयं यह काम भली-भाँति कर सकता हूँ। पर अभी मुझे बहुत कुछ प्रायश्चित करना हैं। जाने कितने पापों की पूर्ति करनी हैं। आशा करता हूँ कि जीवन के बचे हुए दिन इसी प्रायश्चित करने में, यही मुँह की कालिमा धोने में काटूँ। आपसे केवल इतनी ही प्रार्थना है कि मुझे आत्म-सुधार का अवसर दीजिए। मुझ पर विश्वास कीजिए और मुझे अपना सेवक समझिए। मैं आज से अपना तन, मन, धन सब आप पर अर्पण करता हूँ।'

मुक्ति-मार्ग

सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुन्दरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे रोगियों पर जो घमंड होता हैं, वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देखकर होता हैं। झींगुर अपने ईख के खेतों को देखता तो उस पर नशा-सा छा जाता। तीन बीघे ईख थी, इसके 600 रुपए तो अनायास ही मिल जाएँगे और जो कहीं भगवान ने डाँड़ी तेज कर दी तो फिर क्या पूछना! दोनों बैल बुड्ढ़े हो गए, अबकी नई गोई बटेसर के मेले से ले आएगा। कहीं दो बीघे खेत और मिल गए तो लिखा लेगा। रुपए की क्या चिन्ता। बनिये अभी से उसकी खुशामद करने लगे थे। ऐसा कोई न था जिससे उसने गाँव में लड़ाई न की हो। वह अपने आगे किसी को कुछ समझता ही न था।

एक दिन सन्ध्या के समय वह अपने बेटे को गोद में लिए मटर की फलियाँ तोड़ रहा था, इतने में उसे भेड़ों का एक झुंड अपनी तरफ आता दिखाई दिया। वह अपने मन में कहने लगा — इधर से भेड़ों के निकलने का रास्ता न था। क्या खेत की मेंड़ पर से भेड़ों का झुंड नही जा सकता था? भेड़ों को इधर से लाने

की क्या जरूरत? ये खेत को कुचलेंगी, चरेंगी, इसका डाँड़ कौन देगा? मालूम होता हैं, बुद्धू गड़ेरिया हैं। बचा को घमंड हो गया हैं, तभी तो खेतों के बीच से भेड़े लिए चला आता हैं। जरा इसकी ढिठाई देखो, देख रहा हैं कि मैं खड़ा हूँ, फिर भी भेड़ों को लौटाता नहीं। कौन मेरे साथ कभी रियायत की हैं कि मैं इसकी मुरौवत करूँ? अभी एक भेड़ा मोल माँगूँ तो पाँच रुपए सुनावेगा। सारी दुनिया में चार रुपए के कम्बल बिकते हैं, पर यह पाँच रुपए से नीचे की बात नहीं करता।

इतने में भेड़े खेत के पास आ गई। झींगुर ने ललकारकर कहा — अरे, ये भेड़ कहाँ लिए आते हो?

बुद्धू ने नम्र भाव से कहा — महतो, डाँड़ पर से निकल जाएगी, घूमकर जाऊँगा तो कोस-भर का चक्कर पड़ेगा।

झींगुर — तो तुम्हारा चक्कर बचाने के लिए मैं अपने खेत क्यों कुचलवाऊँ? डाँड़ ही पर से ले जाना हैं तो और खेतों के डाँड़ से क्यों नहीं ले गए? क्या मुझे कोई चूहड़-चमार समझ लिया? या धन का घमंड हो गया हैं? लौटाओ इनको!

बुद्धू — महतो, आज निकल जाने दो। फिर कभी इधर से आऊँ तो जो सजा चाहे देना।

झींगुर — कह दिया कि लौटाओ इन्हें! अगर एक बेल भी किसी भेड़ के पैरो–तले आ जाए तो मुझे बैठाकर सौ गालियाँ देना।

बुद्धू बातें तो बड़ी नम्रता से कर रहा था, किन्तु लौटाने में अपनी हेठी समझता था। उसने मन में सोचा, इसी तरह जरा–जरा धमकियों पर भेड़ों को लौटाने लगा तो फिर मैं भेड़ें चरा चुका। आज लौट जाऊँ तो कल को कहीं निकलने का रास्ता ही न मिलेगा। सभी रौब जमाने लगेंगे।

बुद्धू भी पोढ़ा आदमी था। 12 कोड़ी भेड़े थी, उन्हें खेतों में बिठाने के लिए प्रति रात 11 कोड़ी मजदूरी थी। इसके उपरान्त दूध बेचता था, ऊन के कम्बल बनाता था। सोचने लगा — इतने गरम हो रहे हैं, मेरा कर ही क्या लेंगे? कुछ इनका दबैल तो हूँ नहीं। भेड़ों ने जो हरी–हरी पत्तियाँ देखीं तो अधीर हो गई। खेत में घुस पड़ी। बुद्धू उन्हें डंडों से मार–मारकर खेत के किनारे हटाता था और वे इधर–उधर से निकलकर खेत में जा पड़ती थीं। झींगुर ने आग होकर कहा — तुम मुझसे हेकड़ी जताने चले हो। तुम्हारी सारी हेकड़ी निकाल दूँगा।

बुद्धू — तुम्हें देखकर चौंकती हैं, तुम हट जाओ तो मैं सबको निकाल ले जाऊँ।

झींगुर ने लड़के को गोद से उतार दिया और अपना डंडा सँभालकर भेड़ों पर पिल पड़ा। धोबी भी इतनी निर्दयता से अपने गधे को न पीटता होगा। किसी भेड़ की टाँग टूटी, किसी की कमर टूटी। सबने बें-बें का शोर मचाना शुरु किया। बुद्धू चुपचाप खड़ा अपनी सेना का विध्वंस अपनी आँखों से देखता रहा। वह न भेड़ों को हाँकता, न झींगुर से कुछ कहता था। बस खड़ा तमाशा देखता रहा। दो मिनट में झींगुर ने इस सेना का अपने अमानुषिक पराक्रम से मार भगाया। मेष-दल का संहार करके विजय-गर्व से बोला — अब सीधे चले जाओ! फिर इधर से आने का नाम न लेना।

बुद्धू ने आहत भेड़ों की ओर देखते हुए कहा — झींगुर, तुमने यह अच्छा काम नहीं किया, पछताओगे।

2

केले को काटना भी इतना आसान नहीं, जितना किसान से बदला लेगा! उसकी सारी कमाई खेतों में रहती हैं या खलिहानों में। कितनी ही दैविक और भौतिक आपदाओं के बाद कहीं अनाज घर में आता हैं और जो कहीं इन आपदाओं के साथ विद्रोह ने भी

संधि कर ली तो बेचारा किसान कहीं का नहीं रहता। झींगुर ने घर आकर दूसरों से इस संग्राम का वृत्तान्त कहा तो लोग समझाने लगे — झींगुर, तुमने बड़ा अनर्थ किया, जानकर अनजान बनते हो। बुद्धू को जानते नहीं, कितना झगड़ालू आदमी हैं। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, जाकर उसे मना लो। नहीं तो तुम्हारे साथ सारे गाँव पर आफत आ जाएगी। झींगुर की समझ में बात आई। पछताने लगा कि मैंने कहाँ–से–कहाँ उसे रोका। अगर भेड़े थोड़ा–बहुत चर ही जाती तो कौन मैं उजड़ा जाता था। वास्तव में हम किसानों का कल्याण दबे रहने में ही हैं। ईश्वर को भी हमारा सिर उठाकर चलना अच्छा नहीं लगता। जी तो बुद्धू के घर जाने को न चाहता था, किन्तु दूसरों के आग्रह से मजबूर होकर चला। अगहन का महीना था, कुहरा पड़ रहा था। चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। गाँव से बाहर निकला ही था कि सहसा अपने ईख के खेत की ओर अग्नि की ज्वाला देखकर चौंक पड़ा। छाती धड़कने लगी। खेत में आग लगी हुई थी। बेतहाशा दौड़ा, मनाता जाता था कि मेरे खेत में न हो पर ज्यों–ज्यों समीप पहुँचता था, यह आशामय भ्रम शान्त होता जाता था। वह अनर्थ हो ही गया, जिसके निवारण के लिए वह घर से चला था। हत्यारे ने आग लगा दी, और मेरे पीछे सारे गाँव को चौपट किया। उसे ऐसा जान पड़ता था कि वह खेत आज बहुत

समीप आ गया। मानो बीच के परती खेतों का अस्तित्व ही नहीं रहा! अन्त में जब वह खेत पर पहुँचा तो आग प्रचंड रूप धारण कर चुकी थी। झींगुर ने 'हाय, हाय' मचाना शुरू किया। गाँव के लोग दौड़ पड़े और खेतों से अरहर के पौधे उखाड़कर आग को पीटने लगे। अग्नि-मानव संग्राम का भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। एक पहर तो हाहाकार मचा रहा, कभी एक प्रबल होता था, कभी दूसरा। अग्नि-पक्ष के योद्धा मर-मरकर जी उठते थे और दुगनी शक्ति से। रणोन्मत्त होकर शस्त्र-प्रहार करने लगते थे। मानव-पक्ष में जिस योद्धा की कीर्ति सबसे उज्ज्वल थी, वह बुद्धू था। बुद्धू कमर तक धोती चढ़ाए, प्राण हाथ में लिए, अग्निराशि में कूद पड़ता और शत्रुओं को परास्त करके, बाल-बाल बचकर निकल आता था। अन्त में मानव-दल की विजय हुई। किन्तु ऐसी विजय जिस पर हार भी हँसती। गाँव-भर की ईख जलकर भस्म हो गई और ईख के साथ सारी अभिलाषाएँ भी भस्म हो गई।

आग किसने लगाई यह खुला हुआ भेद था। पर किसी को कहने का साहस न था। कोई सबूत नहीं, प्रमाणहीन तर्क का मूल्य ही क्या? झींगुर को घर से निकलना मुश्किल हो गया। जिधर जाता, ताने सुनने पड़ते। लोग प्रत्यक्ष कहते थे, यह आग तुमने लगवाई, तुम्हीं ने हमारा सर्वनाश किया, तुम्हीं मारे घमंड के धरती पर पैर न रखते थे। आप–के–आप गए, अपने साथ गाँव–भर को डूबो दिया। बुद्धू को न छेड़ते तो आज क्यो यह दिन देखना पड़ता? झींगुर को अपनी बरबादी का इतना दुख न था, जितना इस जली–कटी बातों का? दिन–भर घर में बैठा रहता था। पूस का महीना आया। जहाँ सारी रात कोल्हू चला करते थे, गुड़ की सुगन्ध उड़ती थी, भट्टियाँ जलती रहती थी और लोग भट्टियों के सामने बैठे हुक्का पिया करते थे, वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। ठंड के मारे लोग साँझ ही से किवाड़ें बन्द करके पड़े रहते थे। झींगुर को कोसते। माघ और भी कष्टदायक था। ईख केवल धनदाता ही नहीं, किसानों की जीवनदाता हैं। उसी के सहारे किसानों का जाड़ा कटता हैं। गरम रस पीते हैं, ईख की पत्तियाँ तापते हैं। उसके अगोड़े पशुओं को खिलाते हैं। गाँव के सारे कुत्ते जो भट्टियों की राख में सोया करते थे ठंड से मर गए। कितने ही जानवर चारे के अभाव में चल बसे। शीत का प्रकोप

हुआ और सारा गाँव खाँसी–बुखार में ग्रस्त हो गया और यह सारी विपत्ति झींगुर की करनी थी — अभागे, हत्यारे झींगुर की!

झींगुर ने सोचते–सोचते निश्चय किया कि बुद्धू की दशा भी अपनी ही–सी बनाऊँगा। उसके कारण मेरा सर्वनाश हो गया और चैन की बंसी बजा रहा हैं। मैं भी उसका सर्वनाश करूँगा।

जिस दिन इस घातक कलह का बीजारोपण हुआ, उसी दिन से बुद्धू ने इधर आना छोड़ दिया था। झींगुर ने उससे रब्त–जब्त बढ़ाना शुरु किया। वह बुद्धू को दिखाना चाहता था कि तुम्हारे ऊपर मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं हैं। एक दिन कम्बल लेने के बहाने गया। फिर दूध लेने के बहाने गया। बुद्धू उसका खूब आदर–सत्कार करता। चिलम तो आदमी दुश्मन को भी पिला देता हैं, वह उसे बिना दूध और शरबत पिलाए न आने देता। झींगुर आजकल एक सन लपेटने वाली कल में मजदूरी करने जाया करता था। बहुधा कई–कई दिनों तक मजदूरी इकट्ठी मिलती थी। बुद्धू ही की तत्परता से झींगुर का रोजाना खर्च चलता था। अतएव झींगुर ने खूब रब्त–जब्त बढ़ा लिया। एक दिन बुद्धू ने पूछा — क्यों झींगुर, अगर अपनी ईख जलाने वाले को पा जाओ तो क्या करो? सच कहना।

झींगुर ने गम्भीर भाव से कहा — मैं उसे कहूँ, भैया तुमने जो कुछ किया, बहुत अच्छा किया। मेरा घमंड तोड़ दिया, मुझे आदमी बना दिया।

बुद्धू — मैं जो तुम्हारी जगह होता तो बिना उसका घर जलाए न मानता।

झींगुर — चार दिन की जिन्दगानी में बैर-विरोध बढ़ाने से क्या फायदा हैं? मैं तो बरबाद हुआ ही, अब उसे बरबाद करके क्या पाऊँगा?

बुद्धू — बस, यही आदमी का धर्म हैं। पर भाई क्रोध के बस में होकर बुद्धि उल्टी हो जाती हैं।

4

फागुन का महीना था। किसान ईख बोने के लिए खेतों को तैयार कर रहे थे। बुद्धू का बाजार गरम था। भेड़ों की लूट मची हुई थी। दो-चार आदमी नित्य द्वार पर खड़े खुशामदें किया करते। बुद्धू किसी से सीधे मुँह बात न करता। भेड़ रखने की फीस दूनी कर दी थी। अगर कोई ऐतराज करता तो बेलाग कहता — तो

भैया, भेड़ें तुम्हारे गले तो नहीं लगाता हूँ, जी न चाहे, मत रखो लेकिन मैंने जो कह दिया, उससे एक कौड़ी भी कम नहीं हो सकती! गरज थी, लोग इस रुखाई पर भी उसे घेरे ही रखते थे, मानो पंडे किया यात्रा के पीछे हो।

लक्ष्मी का आकार तो बहुत बड़ा नहीं, वह भी समयानुसार छोटा-बड़ा होता रहता हैं। यहाँ तक कि कभी वह अपना विराट आकार समेट कर उसे कागज के चन्द अक्षरों में छिपा लेती हैं। कभी-कभी मनुष्य की जिह्वा पर जा बैठती हैं। आकार का लोप हो जाता हैं किन्तु उनके रहने को बहुत स्थान की जरूरत होती हैं। वह आई और घर का आकार बढ़ने लगा। छोटे घर में उनसे नहीं रहा जाता। बुद्धू का घर भी बढ़ने लगा। द्वार पर बरामदा डाला गया। दो की जगह छः कोठरियाँ बनवाई गई। यों कहिए कि मकान नए सिरे से बनने लगा। किसी किसान से लकड़ी माँगी, किसी से खप्पर का आँवा लगाने के लिए उपले, किसी से बाँस और किसी से सरकंडे। दीवार की उठवाई देनी पड़ी, वह भी नकद नही, भेड़ों के रूप में। लक्ष्मी का यह प्रताप हैं, सारा काम बेगार में हो गया, मुफ्त में अच्छा-खासा घर तैयार हो गया। गृह-प्रवेश के उत्सव की तैयारियाँ होने लगी।

इधर झींगुर दिन–भर मजदूरी करता तो कहीं आधा पेट अन्न मिलता। बुद्धू के घर कंचन बरस रहा था, झींगुर जलता था तो क्या बुरा करता था? यह अन्याय किससे सहा जाएगा?

एक दिन वह टहलता हुआ चमारों के टीले की तरफ चला गया। हरिहर को पुकारा। हरिहर ने आकर 'राम–राम' की और चिलम भरी। दोनो पीने लगे। यह चमारों की मुखिया बड़ा दुष्ट आदमी था। सब किसान इससे थर–थर काँपते थे।

झींगुर ने चिलम पीते–पीते कहा — आजकल फाग–बाग नहीं होती क्या? सुनाई नहीं देता?

हरिहर — फाग क्या हो, पेट के धन्धे से छुट्टी ही नहीं मिलती, कहो, आजकल कैसी निभती है?

झींगुर — क्या मिभती हैं, नकटा जिया बुरे हवाल! दिन–भर कल में मजदूरी करते हैं तो चूल्हा जलता हैं। चाँदी तो आजकल बुद्धू की हैं। रखने को ठौर नही मिलता, नया घर बना, भेड़े और ली है! अब गृहपरबेस की धूम हैं, सातों गाँव सुपारी जाएगी!

हरिहर — लच्छिमी मैया आती हैं तो आदमी की आँखों में सील आ जाता हैं। पर उसको देखो, धरती पर पैर नहीं रखता, बोलता हैं तो ऐंठकर ही बोलता हैं।'

झींगुर — क्यों ने ऐंठे, इस गाँव में कौन हैं उसकी टक्कर का! पर यार, यह अनीति तो नहीं देखी जाती। भगवान दे तो सिर झुकाकर चलना चाहिए। यह नहीं कि अपने बराबर किसी को समझे ही नहीं। उसकी डींग सुनता हूँ तो बदन मे आग लग जाती हैं। कल का बानी आज का सेठ। चला हैं हमीं से अकड़ने, अभी कल लंगोटी लगाए खेत में कौए हँकाया करता था आज उसका आसमान में दिया जलता हैं।

हरिहर — कहो तो कुछ उपाय करूँ?

झींगुर — क्या करोगे! इसी डर से तो वह गाय–भैंस नहीं पालता।

हरिहर — भेड़े तो है।

झींगुर — क्या, बगला मारे पखना हाथ।

हरिहर — फिर तुम्हीं सोचो।

झींगुर — ऐसी जुगत निकालो कि फिर से पनपने न पावे।

इसके बाद फुस–फुस करके बातें होने लगी। वह एक रहस्य हैं कि भलाइयों में जितना द्वेष होता हैं, बुराइयों में उतना ही प्रेम। विद्वान विद्वान को देखकर, साधु साधु को देखकर और कवि कवि को देखकर जलता हैं। एक–दूसरे की सूरत नहीं देखना चाहता।

पर जुआरी जुआरी को देखकर, शराबी शराबी को देख कर, चोर–चोर को देख कर सहानुभूति दिखाता हैं, सहायता करता हैं। एक पंडित अगर अंधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़े तो दूसरे पंडितजी उसे उठाने के बदले दो ठोकरें और लगाएँगे कि वह फिर उठ ही न सके। पर एक चोर पर आफत आई देख दूसरा चोर उसकी मदद करता हैं। बुराई से सब घृणा करते हैं, इसलिए बुरों में परस्पर प्रेम होता हैं। भलाई की सारा संसार प्रशंसा करता हैं, इसलिए भलों से विरोध होता हैं। चोर को मारकर चोर क्या पाएगा? घृणा! विद्वान का अपमान करके विद्वान क्या पाएगा? यश!

झींगुर और हरिहर ने सलाह कर ली, षड़यंत्र रचने की विधि सोची गई। उसका स्वरूप, समय और क्रम ठीक किया गया। झींगुर चला तो अकड़ा जाता था, मार लिया दुश्मन को, अब कहाँ जाता हैं!

दूसरे दिन झींगुर काम पर जाने लगा तो पहले बुद्धू के घर पहुँचा। बुद्धू ने पूछा — क्यों, आज नहीं गए क्या?

झींगुर — जा तो रहा हूँ, तुमसे यही कहने आया था कि मेरी बछिया को अपनी भेड़ों के साथ क्यों नहीं चरा दिया करते।

बेचारी खूँटे से बँधी–बँधी मरी जाती हैं, न घास न चारा, क्या खिलाएँ?'

बुद्धू — भैया, मैं गाय–भैंस नहीं रखता, चमारों को जानते हो, एक ही हत्यारे होते हैं। इसी हरिहर ने मेरी दो गऊएँ मार डाली। न जाने क्या खिला देता हैं। तब से कान पकड़े कि अब गाय–भैंस न पालूँगा लेकिन तुम्हारी एक ही बछिया हैं। उसका कोई क्या करेंगा, जब चाहो, पहुँचा दो।

यह कहकर बुद्धू अपने गृहोत्सव का सामान उसे दिखाने लगे। घी, शक्कर, मैदा, तरकारी सब मँगा रखा था। केवल सत्यनारायण की कथा की देर थी। झींगुर की आँखें खुल गई, ऐसी तैयार न उसने स्वयं कभी की और न किसी को करते देखा। मजदूरी करके घर लौटा तो सबसे पहला काम जो उसने किया वह अपनी बछिया को बुद्धू के घर पहुँचाया था। उसी रात को बुद्धू के यहाँ सत्यनारायण की कथा हुई। ब्रह्मभोज भी किया गया। सारी रात विप्रों का आगत–स्वागत करते गुजरी। भेड़ों के झुंड मेम जाने का अवसर ही न मिला। प्रातःकाल भोजन करके ही उठा था (क्योंकि रात का भोजन सवेरे मिला) कि एक आदमी ने आकर खबर दी — बुद्धू तुम यहाँ बैठे हो, उधर भेड़ों में बछिया मरी पड़ी हैं! भले आदमी, उसकी पगहिया भी नहीं खोली थी।

बुद्धू ने सुना, और मानो ठोकर लग गई। झींगुर भी भोजन करके वहीं बैठा था। बोला — हाय-हाय, मेरी बछिया! चलो, जरा देखूँ तो, मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी। उसे भेड़ों में पहुँचाकर अपने घर चला गया, तुमने यह पगहिया कब लगा दी?

बुद्धू — भगवान जाने जो मैंने उसकी पगहिया देखी भी हो, मैं तो तब से भेड़ों में गया ही नहीं।

झींगुर — जाते न तो पगहिया कौन लगा देता? गए होगे, याद न आती होगी।

एक ब्राह्मण — मरी तो भेड़ों मे ही न? दुनिया तो यही कहेगी कि बुद्धू की असावधानी से उसकी मृत्यु हुई, पगहिया किसी ने की हो।

हरिहर — मैंने कल साँझ को इन्हें भेड़ों में बछिया बाँधते देखा था।

बुद्धू — मुझे?

हरिहर — तुम नहीं लाठी कंधे पर रखे बछिया को बाँध रहे थे?

बुद्धू — बड़ा सच्चा हैं तू! तूने मुझे बछिया को बाँधते देखा था?

हरिहर — तो मुझ पर काहे बिगड़ते हो भाई? तुमने नहीं बाँधी, नहीं सही।

ब्राह्मण — इसका निश्चय करना होगा, गोहत्या का प्रायश्चित करना पड़ेगा। कुछ हँसी ठट्ठा हैं!

झींगुर –'महाराज, कुछ जान–बूझकर तो बाँधी नहीं।

ब्राह्मण — इससे क्या होता हैं? हत्या इसी तरह लगती हैं, कोई गऊ को मारने नहीं जाता।

झींगुर — हाँ, गउओं को खोलना–बाँधना हैं तो जोखिम का काम।

ब्राह्मण — शास्त्रों में इसे महापाप कहा हैं। गऊ की हत्या ब्राह्मण की हत्या से कम नहीं।

झींगुर — हाँ, फिर गऊ तो ठहरी ही, इसी से न इनका मान होता हैं। जो माता, सो गऊ लेकिन महाराज, चूक हो गई। कुछ ऐसा कीजिए कि थोड़े में बेचारा निपट जाए?

बुद्धू खड़ा सुन रहा था, अनायास मेरे सिर हत्या मढ़ी जा रही हैं। झींगुर की कूटनीति भी समझ रहा था। मैं लाख कहूँ, बछिया नहीं बाँधी, मानेगा कौन? लोग तो यही कहेंगे कि प्रायश्चित से बचने के लिए ऐसा कह रहा हैं।

ब्राह्मण देवता का भी उसका प्रायश्चित कराने में कल्याण होता था। भला ऐसे अवसर पर कब चूकने वाले थे। फल यह हुआ

कि बुद्धू को हत्या लग गई। ब्राह्मण भी उससे जले हुए थे। कसर निकालने की घात मिली। तीन मास का भिक्षा दंड दिया, फिर सात तीर्थस्थानों की यात्रा, उस पर 500 विप्रों का भोजन और 5 गऊओं का दान। बुद्धू ने सुना, तो बछिया बैठ गई। रोने लगा तो दंड घटाकर दो मास कर दिया। इसके सिवा कोई रियायत नहीं हो सकी, न कहीं अपील, न कहीं फरियाद! बेचारे को यह दंड स्वीकार करना पड़ा।

बुद्धू ने भेड़े ईश्वर को सौंपी। लड़के छोटे थे, स्त्री अकेली क्या-क्या करती। गरीब जाकर द्वारों पर खड़ा होता और मुँह छिपाए हुए कहता — 'गाय की बाछी दिया बनवास' भिक्षा तो मिल जाती, किन्तु भिक्षा के साथ दो-चार कठोर अपमानजनक शब्द भी सुनने पड़ते। दिन को जो-कुछ पाता, वही शाम को किसी पेड़ के नीचे बनाकर खा लेता और वही पड़ा सोता ही था। भोजन भी इससे कुछ ही अच्छा मिलता था पर लज्जा था भिक्षा माँगने की। विशेष कर जब कोई कर्कशा यह व्यंग्य कर देती थी कि रोटी कमाने का अच्छा ढंग निकाला हैं तो उसे हार्दिक वेदना होती थी पर करे क्या?

दो महीने के बाद वह घर लौटा। बाल बढ़े हुए थे, दुर्बल इतना, मानो 60 वर्ष का बूढ़ा हो। तीर्थयात्रा के लिए रुपयों का प्रबन्ध करना था। गड़ेरियों को कौन महाजन कर्ज दे! भेड़ों का भरोसा

क्या? कभी–कभी रोग फैलता है तो रात–भर में दल–का–दल साफ हो जाता हैं। उस पर जेठ का महीना, जब भेड़ों से कोई आमदनी होने की आशा नहीं। एक तेली राजी भी हुआ तो दो रुपये ब्याज पर। आठ महीने में ब्याज मूल के बराबर हो जाएगा। यहाँ कर्ज लेने की हिम्मत न पड़ी। इधर दो महीनों मे कितनी भेड़े चली गई थी। लड़के चराने ले जाते थे, दूसरे गाँव वाले चुपके से एक–दो भेड़ें किसी खेत या घर में छिपा देते और पीछे मारकर खा जाते। लड़के बेचारे एक तो पकड़ न सकते और जो देख भी लेते तो लड़े क्योंकर, सारा गाँव एक हो जाता। एक महीने में तो भेड़े आधी भी न रहेंगी। बड़ी विकट समस्या थी, विवश होकर बुद्धू ने एक बूचड़ को बुलाया और सब भेड़ें उसके हाथ बेच डाली। 500 रुपए हाथ लगे, उसमें से 200 रुपए लेकर तीर्थयात्रा करने गया। शेष रुपए ब्रह्मभोज आदि के लिए छोड़ दिया।

बुद्धू के जाने पर उसके घर में दो बार सेंध लगी। पर कुशल हुई कि जगहट हो जाने के कारण रुपए बच गए।

सावन का महीना था। चारों ओर हरियाली छाई हुई थी। झींगुर के बैल न थे। खेत बटाई पर दे दिए थे। बुद्धू प्रायश्चित से निवृत्त हो गया था और उसके साथ ही माया के फंदे से भी। न झींगुर के पास कुछ था, न बुद्धू के पास। कौन किससे जलता और किसलिए जलता?

सन की कल बन्द हो जाने के कारण झींगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हजारों मजदूर काम करते थे। झींगुर भी उन्हीं में था। सातवें दिन मजदूरी के पैसे लेकर घर आता था और रात-भर रहकर सवेरे चला फिर जाता था।

बुद्धू भी मजदूरी की टोह में यहीं पहुँचा। जमादार ने देखा दुर्बल आदमी हैं, कठिन काम तो इससे हो न सकेगा। कारीगरों को गारा देने के लिए रख लिया। बुद्धू सिर पर तसल्ला रखे गारा लेने गया तो झींगुर को देखा, 'राम-राम' हुई। झींगुर ने गारा भर दिया, बुद्धू उठा लाया। दिन-भर दोनो चुपचाप अपना-अपना काम करते रहे।

सन्ध्या समय झींगुर ने पूछा — कुछ बनाओगे न?

बुद्धू — नहीं तो खाऊँगा क्या?

झींगुर — मैं तो एक जून चबेना कर लेता हूँ। एक जून सत्तू पर काट देता हूँ। कौन झंझट करे।

बुद्धू — इधर-उधर लकड़ियाँ पड़ी हैं बटोर लाओ। आटा मैं घर से लेता आया हूँ। घर ही पिसवा लिया था। यहाँ तो महँगा मिलता हैं। इसी पत्थर की चट्टान पर गूँधे लेता हूँ। तुम तो मेरा बनाया खाओगे नहीं, इसलिए तुम्हीं रोटियाँ सेंको, मैं बना दूँगा।

झींगुर — तवा भी तो नहीं हैं?

बुद्धू — तवे बहुत हैं, यही गारे का तसला माँजे लेता हूँ।

आग जली, आटा गूँधा गया। झींगुर ने कच्ची-पक्की रोटियाँ बनाई। बुद्धू पानी लाया। दोनों ने लाल मिर्च और नमक से रोटियाँ खाई। फिर चिलम भरी गई। दोनो आदमी पत्थर की सिलों पर लेटे, और चिलम पीने लगे।

बुद्धू ने कहा — तुम्हारी ईख में आग मैंने लगाई थी।

झींगुर ने विनोद भाव से कहा — जानता हूँ।

थोड़ी देर बाद झींगुर बोला — बछिया मैंने ही बाँधी थी और हरिहर ने उसे कुछ खिला दिया था।'

बुद्धू ने वैसे ही भाव से कहा — जानता हूँ।

फिर दोनों सो गए।

डिक्री के रुपए

नईम और कैलास में इतनी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक अभिन्नता था, जितनी दो प्राणियों में हो सकती हैं। नईम को क्रिकेट और फुटबाल, सैर और शिकार का व्यसन था, कैलास बाग का कोमल पौधा। नईम एक विनोदशील, वाक्चतुर, निर्द्वन्द्व, हास्यप्रिय और विलासी युवक था, उसे कल की चिन्ता कभी न सताती था। विद्यालय उसके लिए क्रीड़ा का स्थान था और कभी–कभी बेंच पर खड़े होने का। इसके प्रतिकूल कैलास एक एकान्तप्रिय, आलसी, व्यायाम से कोसों भागने वाला, आमोद–प्रमोद से दूर रहने वाला, चिन्ताशील, आदर्शवादी जीव था। वह भविष्य की कल्पनाओं से विकल रहता था।

नईम एक सुखसम्पन्न, उच्च पदाधिकारी पिता का एकमात्र पुत्र था। कैलास एक साधारण व्यवसायी के कई पुत्रों में से एक। उसे पुस्तकों के लिए काफी धन न मिलता था, माँग–जाँचकर काम निकाला करता था। एक के लिए जीवन आनन्द का स्वप्न था और दूसरे के लिए विपत्तियों का बोझ। पर इतनी विषमताओं के होते हुए भी उन दोनों में घनिष्ठ मैत्री और निस्वार्थ विशुद्ध

प्रेम था। कैलास मर जाता, पर नईम का अनुग्रह–पात्र न बनता और नईम मर जाता, पर कैलास से बेअदबी न करता। नईम की खातिर से कैलास कभी–कभी भविष्य के स्वप्न देख लिया करता था। नईम के लिए राज्यपद का द्वार खुला हुआ था, भविष्य कोई अपार सागर न था। कैलास को अपने हाथों कुआँ खोदकर पानी पीना था, भविष्य संग्राम था, जिसके स्मरणमात्र से उसका चित्त अशान्त हो उठता था।

2

कॉलेज से निकलने के बाद नईम को शासन विभाग में एक उच्च पद प्राप्त हो गया, यद्यपि तीसरी श्रेणी में पास हुआ था। कैलास प्रथम में पास हुआ था, किन्तु उसे बरसों एड़ियाँ रगड़ने, खाक छानने और कुएँ झाँकने पर भी कोई काम न मिला। यहाँ तक कि विवश होकर उसे अपनी कलम का आश्रय लेना पड़ा। उसने एक समाचार–पत्र निकाला। एक ने राज्यधिकार का रास्ता लिया, जिसका लक्ष्य धन था और दूसरे ने सेवा–मार्ग का सहारा लिया जिसका परिणाम ख्याति और कष्ट और कभी–कभी कारागार होता हैं। नईम को उसके दफ्तर के बाहर कोई न जानता था, किन्तु

बंगले में रहता, हवा-गाडी पर हवा खाता, थिएटर देखता और गर्मियों में नैनीताल की सैर करता था। कैलास को सारा संसार जानता था, पर उसके रहने का मकान कच्चा था। सवारी के लिए अपने पाँव, बच्चों के लिए दूध भी मुश्किल से मिलता, साग-भाजी में काट-कपट करना पड़ता था। नईम के लिए सबसे सौभाग्य की बात यह थी कि उसके केवल एक पुत्र था, पर कैलास के लिए सबसे बड़ी दुर्भाग्य की बात उसकी सन्तान-वृद्धि थी, जो उसे पनपने न देती थी। दोनों मित्रों में पत्र-व्यवहार होता रहता था। कभी-कभी दोनों में मुलाकात भी हो जाती थी। नईम कहता था- यार, तुम्हीं मजे में हो, देश और जाति की कुछ सेवा तो कर रहे हो, यहाँ तो पेट-पूजा के सिवा और किसी काम के न हुए। पर यह 'पेट-पूजा' उसने कई दिनों की कठिन तपस्या से हृदयंगम कर पाई थी, और उसके प्रयोग के लिए अवसर ढूँढता रहता था।

कैलास खूब समझता था कि यह केवल नईम की विनयशीलता हैं। यह मेरी कुदशा से दुखी होकर मुझे इस उपाय से सांत्वना देना चाहता हैं, इसलिए यह अपनी वास्तविक स्थिति को उससे छिपाने का विफल प्रयत्न किया करता हैं।

विष्णुपुर की रियासत में हाहाकार मचा हुआ था। रियासत के मैनेजर अपने बंगले में, ठीक दोपहर के समय सैंकड़ों आदमियों के

सामने कत्ल कर दिया गया था। यद्यपि खूनी भाग गया था, पर अधिकारियों को सन्देह था कि कुँवर साहब की दुष्प्रेरणा से ही यह हत्याभिनय हुआ हैं! कुँवर साहब अभी बालिग न हुए थे, रियासत का प्रबन्ध कोर्ट ऑफ वार्ड द्वारा होता था। मैनेजर पर कुँवर साहब की देख-रेख कर भार भी था। विलासप्रिय कुँवर को मैनेजर का हस्तक्षेप बहुत ही बुरा मालूम होता था। दोनों में बरसों से मनमुटाव था, यहाँ तक कि कई बार प्रत्यक्ष कटु वाक्यों की नौबत भी आ पहुँची थी। अतएव कुँवर साहब पर सन्देह होना स्वाभाविक ही था। इस घटना की तहकीकात करने के लिए जिले के हाकिम ने मिरजा नईम को नियुक्त किया। किसी पुलिस कर्मचारी द्वारा तहकीकात कराने में कुँवर साहब के अपमान का भय था।

नईम को अपने भाग्य निर्माण को स्वर्ण सुयोग प्राप्त हुआ। वह न त्यागी था, न ज्ञानी। सभी उसके चरित्र की दुर्बलता से परिचित थे। अगर कोई न जानता था तो हुक्काम लोग। कुँवर साहब ने मुँहमाँगी मुराद पाई। नईम जब विष्णुपुर पहुँचा तो उसका असामान्य आदर-सत्कार हुआ। भेंटें चढ़ने लगी। अरदली के चपरासी, पेशकार, साईस, बाबरची, खिदमतगार, सभी के मुँह तर और मुट्ठियाँ गरम होने लगी। कुँवर साहब के हवाली-मवाली रात-दिन घेरे रहते, मानो दामाद ससुराल आया हो।

एक दिन प्रातःकाल कुँवर साहब की माता आकर नईम के सामने अपना हाथ बाँधकर खड़ी हो गई। नईम लेटा हुआ हुक्का पी रहा था। तप, संयम और वैधव्य की उस तेजस्वी प्रतिमा को देखकर उठ बैठा।

रानी उसकी ओर वात्यल्यपूर्ण लोचनों से देखती हुई बोली — हुजूर, मेरे बेटे का जीवन आपके हाथ में हैं। आप ही उसके भाग्यविधाता हैं। आपको उसी माता की सौगन्ध हैं, जिसके आप सुयोग्य पुत्र हैं, मेरे लाल की रक्षा कीजिएगा। मैं तन, मन, धन आपके चरणों में अर्पण करती हूँ।

स्वार्थ ने दया के संयोग से नईम को पूर्ण रीति से वशीभूत कर लिया।

3

उन्हीं दिनों कैलास नईम से मिलने आया। दोनों मित्र बड़े तपाक से गले मिले। नईम ने बातों–बातों में यह सम्पूर्ण वृत्तांत कह सुनाया। और कैलास पर अपने कृत्य का औचित्य सिद्ध करना चाहा।

कैलास ने कहा — मेरे विचार में पाप सदैव पाप हैं, चाहे वह किसी आवरण में मंडित हो।

नईम — और मेरा विचार हैं कि अगर गुनाह से किसी की जान बचती हो तो वह ऐन सबाब हैं। कुँवर साहब अभी नौजवान आदमी हैं। बहुत ही होनहार, बुद्धिमान, उदार और सहृदय हैं। आप उनसे मिले तो खुश हो जाएँ। उनका स्वभाव अत्यंत विनम्र हैं। मैनेजर, जो यथार्थ में दुष्ट प्रकृति का मनुष्य था, बरबस कुँवर साहब को दिक किया करता था। यहाँ तक कि एक मोटर कार के रुपए न स्वीकार किए, न सिफारिश की। मैं यह नहीं कहता कि कुँवर साहब का यह कार्य स्तुत्य हैं, लेकिन बहस यह हैं कि उनको अपराधी सिद्ध करके उन्हें काले पानी की हवा खिलाई जाए, या निरपराध सिद्ध करके उनकी प्राण रक्षा की जाए और भाई, तुमसे तो कोई परदा नहीं हैं। पूरे 20 हजार रुपए की थैली हैं। बस, मुझे अपनी रिपोर्ट में लिख देना होगा कि व्यक्तिगत वैमनस्य के कारण यह दुर्घटना हुई। राजा साहब का इससे कोई सम्पर्क नहीं। जो शहादतें मिल सकीं, उन्हें मैने गायब कर दिया। मुझे इस कार्य के लिए नियुक्त करने में अधिकारियों की एक महलहत थी। कुँवर साहब हिन्दू हैं इसीलिए किसी हिन्दू कर्मचारी को नियुक्त न करके जिलाधीश ने यह भार मेरे सिर रखा। यह साम्प्रदायिक विरोध मुझे निस्पृह सिद्ध करने के लिए

काफी हैं। मैंने दो–चार अवसरों पर कुछ तो हुक्काम की प्रेरणा से और कुछ स्वेच्छा से मुसलमानों के साथ पक्षपात किया। जिससे यह मशहूर हो गया कि मैं हिन्दुओं का कट्टर दुश्मन हूँ। हिन्दू लोग तो मुझे पक्षपात का पुतला समझते हैं। यह भ्रम मुझे आक्षेपों से बचाने के लिए काफी हैं। बताओ तकदीरवर हूँ कि नहीं?

कैलास — अगर कहीं बात खुल गई तो?

नईम — तो यह मेरी समझ का फेर। मेरे अनुसंधान का दोष। मानव प्रकृति के एक अटल नियम का उज्जवल उदाहरण होगा। मैं कोई सर्वज्ञ तो हूँ नहीं, मेरी नीयत पर आँच न आने पाएगी। मुझ पर रिश्वत लेने का संदेह न हो सकेगा। आप इसके व्यावहारिक कोण पर न जाइए। केवल इसके नैतिक कोण पर निगाह रखिए। यह कार्य नीति के अनुकूल हैं या नहीं? आध्यात्मिक सिद्धान्तों को न खींच लाइएगा। केवल नीति के सिद्धान्तों से इसकी विवेचना कीजिए।

कैलास — इसका एक अनिवार्य फल यह होगा कि दूसरे रईसों को भी ऐसे दुष्कृत्यों की उत्तेजना मिलेगी। धन से बड़े–बड़े पापों पर परदा पड़ सकता हैं। इस विचार के फैलने का फल कितना भयंकर होगा, इसका आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं।'

नईम — जी नहीं, मैं यह अनुमान नहीं कर सकता। रिश्वत अब भी 90 फीसदी अभियोगों पर परदा डालती हैं। फिर भी पाप का भय प्रत्येक हृदय में हैं।

दोनों मित्रों मे देर तक इस विषय पर तर्क–वितर्क होता रहा। लेकिन कैलास का न्याय–विचार नईम के हास्य और व्यंग्य से पेश न पा सका।

4

विष्णुपुर के हत्याकांड पर समाचार–पत्रों में आलोचना होने लगी। सभी पत्र एक स्वर से रायसाहब को ही लांछित करते और गवर्नमेंट को राजा साहब से अनुचित पक्षपात करने का दोष लगाते थे। लेकिन इसके साथ यह भी लिख देते थे कि अभी यह अभियोग विचाराधीन हैं, इसलिए इस पर टीका नहीं की जा सकती।

मिरजा नईम ने अपनी खोज को सत्य का रूप देने के लिए पूरा एक महीना व्यतीत किया। जब उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हो हुई तो राजनीतिक क्षेत्र में विप्लव मच गया। जनता के सन्देह की पुष्टि हो गई।

कैलास के सामने अब एक जटिल समस्या उपस्थित हई। अभी तक उसने इस विषय पर एकमात्र मौन धारण कर रखा था। वह यह निश्चय न कर सकता था कि क्या लिखूँ? गवर्नमेंट का पक्ष लेना अपनी अन्तरात्मा को पददलित करना था। आत्मस्वातंत्र्य का बलिदान करना था। पर मौन रहना और भी अपमानजनक था। अन्त में जब सहयोगियों में दो-चार ने उसके ऊपर सांकेतिक रूप से आक्षेप करना शुरू किया कि उनका मौन निरर्थक नहीं हैं। तब उसके लिए तटस्थ रहना असह्य हो गया। उसके वैयक्तिक तथा जातीय कर्त्तव्य में घोर संग्राम होने लगा। उस मैत्री को जिसके अंकुर पचीस वर्ष पहले हृदय में अंकुरित हुए थे, और अब जो एक सघन विशाल वृक्ष का रूप धारण कर चुकी थी हृदय से निकालना हृदय को चीरना था। वह मित्र, जो उसके दुख में दुखी और सुख में सुखी होता था, जिसका हृदय नित्य उसकी सहायता के लिए तत्पर रहता था। जिसके घर जाकर वह अपनी चिन्ताओं को भूल जाता था, जिसके दर्शनमात्र ही से उसे आश्वासन, दृढता तथा मनोबल प्राप्त होता था, उसी मित्र की जड़ खोदनी पड़ेगी! वह बुरी सायत थी। जब मैंने सम्पादकीय क्षेत्र में पदार्पण किया, नहीं तो आज इस धर्म-संकट में क्यों पड़ता? कितना घोर विश्वासघात होगा, विश्वास मैत्री का मुख्य अंग हैं। नईम ने मुझे अपना विश्वासपात्र बनाया हैं, मुझसे

कभी परदा नहीं रखा। उसके गुप्त रहस्यों को प्रकाश में लाना उसके प्रति घोर अन्याय होगा! नहीं मैं मैत्री को कलंकित न करूँगा उसकी निर्मल कीर्ति पर धब्बा न लगाऊँगा। मैत्री पर वज्राघात न करूँगा। ईश्वर वह दिन न लाए कि मेरे हाथों नईम का अहित हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि मुझ पर कोई संकट पड़े तो नईम मेरे लिए प्राण तक दे देने के लिए तैयार हो जाएगा। उसी मित्र को मैं संसार के सामने अपमानित करूँ, उसकी गरदन पर कुठार चलाऊँ! भगवान मुझे यह दिन न दिखाना!

लेकिन जातीय कर्त्तव्य का पक्ष भी निरस्त्र न था। पत्र का सम्पादक परम्परागत नियमों के अनुसार जाति का सेवक हैं। वह जो कुछ देखता हैं, जाति की विराट दृष्टि से देखता हैं। वह जो कुछ विचार करता हैं, उस पर भी जातीयता की छाप लगी होती हैं। नित्य जाति के विस्तृत विचार-क्षेत्र में विचरण करते रहने से व्यक्ति का महत्त्व दृष्टि में अत्यंत संकीर्ण हो जाता हैं। वह व्यक्ति का क्षुद्र, तुच्छ, नगण्य कहने लगता हैं। व्यक्ति को जाति पर बलि देना उसकी नीति का प्रथम अंग हैं। यहाँ तक कि बहुधा अपने स्वार्थ को जाति पर वार देता हैं। उसके जीवन का लक्ष्य महान आत्माओं का अनुगामी होता हैं जिन्होंने राष्ट्रों का निर्माण किया हैं। उनकी कीर्ति अमर हो गई हैं, जो दलित राष्ट्रों

की उद्धारक हो गई हैं। वह यथाशक्ति कोई काम ऐसा नही कर सकता, जिससे उसके पूर्वजों की उज्जवल विरदावली में कालिमा लगते का भय हो। कैलास राजनीतिक क्षेत्र में बहुत कुछ यश और गौरव प्राप्त कर चुका था। उसकी सम्मति आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। उसके निर्भीक विचारों ने, उसकी निष्पक्ष टीकाओं ने उसे सम्पादक-मंडली का प्रमुख-नेता बना दिया था। अतएव इस अवसर पर मैत्री का निर्वाह केवल उसकी नीति और आदर्श ही के विरुद्ध नहीं, उसके मनोगत भावों के भी विरुद्ध था। इसमें उसका अपमान था। आत्मपतन था, भीरुता थी। वह कर्त्तव्यपथ से विमुख होना और राजनीतिक क्षेत्र में सदैव के लिए बहिष्कृत हो जाना था। एक व्यक्ति की, चाहे वह मेरा कितना ही आत्मीय क्यों न हो, राष्ट्र के सामने क्या हस्ती हैं! नईम के बनने या बिगड़ने से राष्ट्र के लिए भयंकर सिद्ध हो सकता हैं। उस इसकी परवाह न थी कि मेरी आलोचना का प्रत्यक्ष कोई असर होगा या नहीं, सम्पादक की दृष्टि में अपनी सम्मति सिंहनाद के समान प्रतीत होती हैं कि मेरी लेखनी शासन को कम्पायमान कर देगी, विश्व को हिला देगी। शायद सारा संसार मेरी कलम की सरसराहट से थर्रा उठेगा। मेरा विचार प्रकट होते ही युगान्तर उपस्थित कर देंगे। नईम मेरा मित्र हैं, किन्तु राष्ट्र मेरा इष्ट हैं।

मित्र के पद की रक्षा के लिए क्या अपने इष्ट पर प्राण–घातक आघात करूँ?

कई दिनों तक कैलास के व्यक्तिगत और सम्पादक के कर्तव्यों में संघर्ष होता रहा। अन्त में जाति ने व्यक्ति को परास्त कर दिया। उसने निश्चय किया कि मैं इस रहस्य का यथार्थ स्वरूप दिखा दूँगा। शासन के अनुत्तरदायित्व को जनता के सामने खोलकर रख दूँगा। शासन–विभाग के कर्मचारियों की स्वार्थ–लोलुपता का नमूना लिख दूँ। दुनिया को दिखा दूँगा कि सरकार किनकी आँखों से देखती हैं, किनके कानों से सुनती हैं, उसकी अक्षमता, उसकी अयोग्यता और उसकी दुर्बलता को प्रमाणित करने का इससे बढ़कर और कौन–सा उदाहरण मिल सकता हैं? नईम मेरा मित्र हैं तो जाति के सामने वह कोई चीज नहीं हैं। उसकी हानि के भय से मैं राष्ट्रीय कर्तव्य से क्यों मुँह फेरूँ। अपनी आत्मा को क्यों दूषित करूँ। अपनी स्वाधीनता को क्यों कलंकित करूँ? आह प्राणों से प्रिय नईम! मुझे क्षमा करना, आज तुम जैसे मित्ररत्न को मैं अपने कर्तव्य की वेदी पर बलि चढ़ता हूँ। मगर तुम्हारी जगह अगर मेरा पुत्र भी होता तो उसे भी इसी कर्तव्य की बलिवेदी पर भेंट कर देता।

दूसरे दिन कैलास ने इस घटना की मीमांसा शुरू की। जो कुछ नईम से सुना था, वह सब एक लेखमाला के रूप में प्रकाशित

करने लगा। घर का भेदी लंका ढाहे! अन्य सम्पादकों को जहाँ अनुमान, तर्क और युक्ति के आधार पर अपना मत स्थिर करना पड़ता था और इसलिए वे कितनी ही अनर्गल, अपवादपूर्ण बातें लिख डालते थे। वहाँ कैलास की टिप्पणियाँ प्रत्यक्ष प्रमाणों से युक्त होती थी। वह पते-पते की बातें कहता था और उस निर्भीकता के साथ, जो दिव्य अनुभव का निर्देश करती थी। उसके लेखों में विस्तार कम, पर सार अधिक होता था। उसने नईम को भी न छोड़ा। उसकी स्वार्थ-लिप्सा का खूब खाका उड़ाया। यहाँ तक कि उस धन की संख्या भी लिख दी जो इस कुत्सित व्यापार पर परदा डालने के लिए उसे दिया गया था। सबसे मजे की बात यह थी कि उसने नईम से एक राष्ट्रीय गुप्तचर की मुलाकात का भी उल्लेख किया, जिसने नईम को रुपए लेते हुए देखा था। अन्त में गवर्नमेंट को भी चैलेंज दिया कि जो उसमें साहस हो तो मेरे प्रमाणों को झूठा साबित कर दे। इतना ही नहीं, उसने वहाँ वार्तालाप भी अक्षरशः प्रकाशित कर दिया जो उसके और नईम के बीच हुआ था। रानी का नईम के पास आना, उसके पैरों पर गिरना, कुँवर साहब का नईम के पास नाना प्रकार के तोहफे लेकर आना, इन सभी प्रसंगों ने उसके लेखों में एक जासूसी उपन्यास का मजा पैदा कर दिया।

इन लेखों ने राजनीतिक क्षेत्र में हलचल मचा दी। पत्र सम्पादकों को अधिकारियों पर निशाना लगाने के ऐसे अवसर बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। जगह–जगह शासन की इस करतूत की निन्दा करने के लिए सभाएँ होने लगी। कई सदस्यों ने व्यवस्थापक–सभा में इस विषय पर प्रश्‍न करने की घोषणा कर की। शासन को कभी ऐसी मुँह की न खानी पड़ी थी। आखिर उन्हें अपनी मान–रक्षा के लिए इसके सिवा और कोई उपाय न सूझा कि वे मिरजा नईम को कैलास पर मानहानि का अभियोग चलाने के लिए विवश करें।

5

कैलास पर इस्तगामा दायर हुआ। मिरजा नईम की ओर से सरकार पैरवी करती थी। कैलास अपनी पैरवी कर रहा था। न्याय के प्रमुख संरक्षकों (वकील–बैरिस्टरों) ने किसी अज्ञात कारणों से उसकी पैरवी करना अस्वीकार किया। न्यायधीश को हार कर कैलास को, कानून की सनद न रखते हुए भी, अपने मुकदमें की पैरवी करने की आज्ञा देनी पड़ी। महीनों अभियोग चलता रहा। जनता में सनसनी फैल गई। रोज हजारों आदमी

अदालत में एकत्र होते थे। बाजारों में अभियोग का रिपोर्ट पढ़ने के लिए समाचार-पत्रों की लूट होती थी। चतुर पाठक पढ़े हुए पत्रों से घड़ी रात जाते-जाते दुगने पैसे खड़े कर लेते थे, क्योंकि उस समय कर पत्र-विक्रेताओं के पास कोई पत्र न बचने पाता था। जिन बातों का ज्ञान पहले गिने-गिनाए पत्र-ग्राहकों को था, उन पर अब जनता की टिप्पणियाँ होने लगी। नईम की मिट्टी कभी इतनी खराब न हुई थी। गली-गली, घर-घर उसी की चर्चा थी। जनता का क्रोध उसी पर केन्द्रित हो गया था। वह दिन भी स्मरणीय रहेगा जब दोनों सच्चे मित्र, एक-दूसरे पर प्राण देने वाले मित्र अदालत में आमने-सामने खड़े हुए और कैलास ने नईम से जिरह करनी शुरू की। कैलास को ऐसा मानसिक कष्ट हो रहा था, मानो वह नईम की गरदन पर तलवार चलाने जा रहा हैं और नईम के लिए तो अग्नि परीक्षा थी। दोनों के मुख उदास था, एक का आत्मग्लानि से, दूसरे का भय से। नईम प्रसन्न बनने की चेष्टा करता था, कभी-कभी सूखी हँसी भी हँसता था, लेकिन कैलास — आह, उस गरीब के दिल पर जो गुजर रही थी, उसे कौन जान सकता हैं!

कैलास ने पूछा — आप और मैं साथ पढ़ते थे, उसे आप स्वीकार करते हैं?

नईम — अवश्य स्वीकार करता हूँ।

कैलास — हम दोनों में इतनी घनिष्ठता थी कि हम आपस में कोई परदा न रखते थे, इसे आप स्वीकार करते हैं?

नईम — अवश्य स्वीकार करता हूँ।

कैलास — क्या उस समय आपने मुझसे यह नहीं कहा था कि कुँवर साहब की प्रेरणा से यह हत्या हुई हैं?

नईम — कदापि नहीं।

कैलास — आपके मुख से ये शब्द नहीं निकले थे कि बीस हजार रुपए की थैली हैं?

नईम जरा भी न झिझका। जरा भी संकुचित न हुआ। उसकी जबान में लेशमात्र भी लुकनत न हुई। वाणी में जरा भी थरथराहट न आई। उसके मुख पर अशान्ति, अस्थिरता या असमंजस का कोई भी चिह्न न दिखाई दिया। वह अविचल खड़ा रहा। कैलास ने बहुत डरते-डरते यह प्रश्न किया था। उसको भय था कि नईम कुछ जवाब न दे सकेगा। कदाचित रोने लगेंगे। लेकिन नईम ने निश्शंक भाव से कहा — सम्भव हैं, आपने स्वप्न में मुझसे ये बातें सुनी हो।

कैलास एक क्षण के लिए दंग रह गया। फिर उसने विस्मय से नईम की ओर नजर डालकर पूछा — क्या आपने यह नहीं

फरमाया कि मैंने दो-चार अवसरों पर मुसलमानों के साथ पक्षपात किया हैं और इसीलिए मुझे हिन्दू-विरोधी समझकर इस अनुसंधान का भार सौंपा गया हैं।

नईम जरा भी न झिझका, अविचल, स्थिर और शान्त भाव से बोला — आपकी कल्पना-शक्ति वास्तव में आश्चर्यजनक हैं। बरसों तक आपके साथ रहने पर भी मुझे यह विदित नहीं हुआ कि आप में घटनाओं का आविष्कार करने की ऐसी चमत्कारपूर्ण शक्ति हैं।

कैलास ने और कोई प्रश्न नहीं किया। उसे अपने पराभव का दुख न था, दुख था नईम की आत्मा के पतन का। वह कल्पना भी न कर सकता था कि कोई मनुष्य अपने मुँह से निकली हुई बात को इतनी ढिठाई से अस्वीकार कर सकता हैं। और वह भी उस आदमी के मुँह पर, जिससे वह बात कही गई हो, वह मानवी दुर्बलता की पराकाष्ठा हैं। वह नईम, जिसका अन्दर और बाहर एक था। जिसके विचार और व्यवहार में भेद न था। जिसकी वाणी आन्तरिक भावों का दर्पण थी। वह नईम, वह सरल, आत्माभिमानी, सत्यभक्त नईम, इतना धूर्त, ऐसा मक्कार हो सकता हैं! क्या दासता के साँचे में ढलकर मनुष्य अपना मनुष्यत्व खो बैठता हैं? क्या यह दिव्य गुणों का रूपान्तर करने का यंत्र हैं?

अदालत ने नईम को 20 हजार रुपयों की डिक्री दे दी, कैलास पर वज्रपात हो गया।

6

इस निश्चय पर राजनीतिक संसार में फिर कुहराम मचा। सरकारी पक्ष के पत्रों ने कैलास को धूर्त कहा। जन–पक्ष वालों ने नईम को शैतान बताया। नईम के दुस्साहस ने न्याय की दृष्टि में चाहे उसे निरपराध सिद्ध कर दिया हो पर जनता की दृष्टि में और भी गिरा दिया। कैलास के पास सहानुभूति के पत्र और तार आने लगे। पत्रों में उसकी निर्भीकता और सत्यनिष्ठा की प्रशंसा होने लगी। जगह–जगह सभाएँ और जलसे हुए और न्यायालय के निश्चय पर असंतोष प्रकट किया गया। किन्तु सूखे बादलों से पृथ्वी की तृप्ति तो नहीं होती? रुपए कहाँ से आवें और वह भी एकदम से 20 हजार! आदर्शपालन का यही मूल्य हैं, राष्ट्र–सेवा महँगा सौदा हैं।

20 हजार रुपए! इतने रुपये तो कैलास ने शायद स्वप्न में भी न देखे हो और जब देने पड़ेंगे! कहाँ से देगा? इतने रुपयों के सूद से ही वह जीविका की चिन्ता से मुक्त हो सकता था। उसे अपने

पत्र में अपनी विपत्ति को रोना रोकर चन्दा एकत्र करने से घृणा था। मैंने अपने ग्राहकों की अनुमति लेकर इस शेर से मोरचा नहीं लिया था। मैनेजर की वकालत करने के लिए किसी ने मेरी गरदन नहीं दबाई थी। मैंने अपना कर्तव्य समझकर ही शासकों को चुनौती दी। जिस काम के लिए मैं अकेला जिम्मेदार हूँ, उसका भार अपने ग्राहकों पर क्यों डालूँ। यह अन्याय हैं, सम्भव है, जनता में आन्दोलन करने से दो-चार हजार रुपए हाथ आ जाएँ, लेकिन यह सम्पादकीय आदर्श के विरुद्ध हैं। इससे मेरी शान में बट्टा लगता हैं। दूसरों को यह कहने का अवसर दूँ कि और के मत्थे फुलौड़ियाँ खाई तो क्या बड़ा जग जीत लिया! सब जानते कि अपने बल-बूते पर गरजते! निर्भीक आलोचना का सेहरा तो मेरे सिर बँधा। उसका मूल्य दूसरों से क्यों वसूल करूँ? मेरा पत्र बन्द हो जाए, मैं पकड़कर कैद किया जाऊँ, मेरा मकान कुर्क कर लिया जाए, बरतन-भांडे नीलाम हो जाए। यह सब मुझे मंजूर हैं, जो कुछ सिर पड़ेगी भुगत लूँगा, पर किसी के सामने हाथ न फैलाऊँगा।

सूर्योदय का समय था। पूर्व दिशा में प्रकाश की छटा ऐसे दौड़ी चली आती थी, जैसे आँखों से आँसुओं की धारा। ठंड हवा कलेजे पर यो लगती थी, जैसे किसी के करुण-क्रंदन की ध्वनि। सामने का मैदान दुखी हृदय की भाँति ज्योति के बाणों से बिंध रहा था।

घर में वह निस्तब्धता छाई थी, जो गृह–स्वामी के गुप्त रोदन की सूचना देती हैं। न बालकों का शोरगुल और न माता की शान्ति प्रसारिणि शब्द–ताड़ना। जब दीपक बुझ रहा हो तो घर में प्रकाश कहाँ से आए? यह आशा का प्रभाव नहीं, शोक का प्रभाव था, क्योंकि आज ही कुर्क–अमीन, कैलास की सम्पत्ति को नीलाम करने के लिए आने वाला था।

उसने अन्तर्वेदना से विकल होकर कहा — आह! आज मेरे सार्वजनिक जीवन का अन्त हो जाएगा। जिस भवन का निर्माण करने में जीवन के 25 वर्ष लगा दिए वह आज नष्ट–भ्रष्ट हो जाएगा। पत्र की गरदन पर छुरी फिर जाएगी। मेरे पैरो में उपहास और अपमान की बेड़ियाँ पड़ जाएगी। मुख पर कालिख लग जाएगी। यह शान्ति–कुटीर उजड़ जाएगा। यह शोकाकुल परिवार किसी मुरझाए हुए फूल की पंखड़ियों की भाँति बिखर जाएगा। संसार में उसके लिए कहीं आश्रय नहीं हैं। जनता की स्मृति चिरस्थायी नहीं होती। अल्पकाल में मेरी सेवाएँ विस्मृति के अन्धकार में लीन हो जाएगी। किसी को मेरी सुध भी न रहेगी। कोई मेरी विपत्ति पर आँसू बहाने वाला भी न होगा।

सहसा उसे याद आया कि आज के लिए अभी अग्रलेख लिखना हैं। आज अपने सुहृद पाठकों को सूचना दूँ कि यह इस पत्र के जीवन का अंतिम दिवस हैं। उसे फिर आपकी सेवा में पहुँचाने

का सौभाग्य प्राप्त न होगा। हमसे अनेक भूलें हुई होगी, आज हम उनके लिए आपसे क्षमा माँगते हैं। आपने हमारे प्रति जो सहवेदना और सहृदयता प्रकट की हैं, उसके लिए हम सदैव आपके कृतज्ञ रहेंगे। हमें किसी से कोई शिकायत नहीं हैं। हमें इस अकाल मृत्यु का दुख नहीं हैं, क्योंकि वह सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त होता हैं, जो अपने कर्तव्यपथ पर अविचल रहते है। दुख यह हैं कि हम जाति के लिए इससे अधिक बलिदान करने में समर्थ न हुए। इस लेख को आदि से अन्त तक सोचकर वह कुर्सी से उठा ही था कि किसी के पैरों का आहट मालूम हुई। गरदन उठाकर देखा तो मिरजा नईम था। वहीं हँसमुख चेहरा, वही मृदु मुस्कान, वही क्रीड़ामय नेत्र, आते ही कैलास के गले से लिपट गया।

कैलास ने गरदन छुड़ाते हुए कहा — क्या मेरे घाव पर नमक छिड़कने, मेरी लाश को ठुकराने आए हो?

नईम ने उसकी गरदन को और जोर से दबाकर कहा — और क्या, मुहब्बत के यही तो मजे हैं!

कैलास — मुझसे दिल्लगी न करो, भरा बैठा हूँ, मार बैठूँगा।

नईम आँखों में आँसू बहाकर बोला — आह जालिम, मैं तेरी जबान से यह कटु वाक्य सुनने के लिए विकल हो रहा था।

जितना चाहे कोसो, खूब गालियाँ दो। मुझे इसमें मधुर संगीत का आनन्द आ रहा हैं।

कैलास — और, अभी जब अदालत का कुर्क-अमीन मेरा घर-बार नीलाम करने आएगा तो क्या होगा? बोलो, अपनी जान बचाकर तो अलग हो गए!

नईम — हम दोनों मिलकर खूब तालियाँ बजाएँगे, और उसे बन्दर की तरह नचाएँगें?

कैलास — तुम अब पिटोगे मेरे हाथों से जालिम, तुझे मेरे बच्चो पर भी दया न आई?

नईम — तुम भी चले मुझी से जोर आजमाने। कोई समय था, जब बाजी तुम्हारे हाथ रहती थी। अब मेरी बारी हैं। तुमने मौका-महल तो देखा नहीं, मुझ पर पिल पड़े।

कैलास — सरासर सत्य की उपेक्षा करना मेरे सिद्धान्तों के विरुद्ध था।

नईम — और सत्य का गला घोंटना मेरे सिद्धान्तों के अनुकूल हैं।

कैलास — अभी एक पूरा परिवार तुम्हारे गले मढ़ दूँगा तो अपनी किस्मत को रोओगो। देखने में तुम्हारा आधा भी नहीं हूँस लेकिन

संतानोत्पति में तुम जैसे तीन पर भारी हूँ। पूरे सात हैं, कम न वेश!

नईम — अच्छा लाओ, कुछ खिलाते-पिलाते हो या तकदीर की मरसिया ही गाए जाओगे? तुम्हारे सिर की कसम, बहुत भूखा हूँ। घर से बिना खाए ही चल पड़ा।

कैलास — यहाँ आज सोलहों दंड एकादशी, सब-के-सब शोक में बैठे उसी अदालत के जल्लाद की राह देख रहे हैं। खाने-पीने का क्या जिक्र? तुम्हारे बैग में कुछ हो तो निकालो, आज साथ बैठकर खा ले, फिर तो जिन्दगी-भर का रोना हैं।

नईम — फिर तो ऐसी शरारत न करोगें?

कैलास — वाह, यह तो अपने रोम-रोम में व्याप्त हो गई हैं। जब तक सरकार पशुबल से हमारे ऊपर शासन करती रहेगी, हम उसका विरोध करते रहेंगे। खेद यहीं हैं कि अब मुझे इसका अवसर ही न मिलेगा। किन्तु तुम्हें 20000 रुपए भी न मिलेंगे। यहाँ रद्दियों के ढेर के सिवा और कुछ नहीं हैं।

नईम — अजी, मैं तुमसे 20 हजार रुपए की जगह उसका पंचगुना वसूल कर लूँगा। तुम हो किस फेर में?

कैलास — मुँह धो रखिए!

नईम — मुझे रुपयों की जरुरत हैं, आओ कोई समझौता कर लो।

कैलास — कुँवर साहब के 20 हजार डकार गए, फिर भी अभी सन्तोष नहीं हुआ! सरकारी कर्मचारियों द्वारा मामला करने में और भी जेरबारी होगी।

कैलास — अरे तो क्या मामला कर लूँ? यहाँ कागजों के सिवा और कुछ हो भी तो!

नईम — मेरा ऋण चुकाने–भर को बहुत हैं। अच्छा, इसी बात पर समझौता कर लो कि मैं जो चीज चाहूँ, ले लूँ, फिर रोना मत।

कैलास — अजी, तुम सारा दफ्तर सिर पर उठा ले जाओ। घर उठा ले जाओ। मुझे पकड़ ले जाओ और मीठे टुकड़े खिलाओ। कसम ले लो जरा भी चूँ करूँ।

नईम — नहीं, मैं सिर्फ एक चीज चाहता हूँ, सिर्फ एक चीज!'

कैलास के कौतूहल की कोई सीमा न रही। सोचने लगा, मेरे पास ऐसी कौन–सी बहुमूल्य वस्तु हैं? कहीं मुसलमान होने को तो न कहेगा। यही धर्म एक चीज हैं, जिसका मूल्य एक लेकर असंख्य तक रखा जा सकता हैं। जरा देखूँ तो हजरत क्या कहते हैं?

उसने पूछा — क्या चीज?

नईम — मिसेज कैलास से एक मिनट एकान्त में बातचीत करने की आज्ञा।

कैलास ने नईम के सिर पर एक चपत जमाकर कहा — फिर वही शरारत! सैंकड़ों बार तो देख चुके हो, ऐसी कौन-सी इन्द्र की अप्सरा हैं!

नईम — वह कुछ भी हैं, मामला करते हो तो करो। मगर याद रखना एकान्त की शर्त।

कैलास — मंजूर हैं। फिर डिक्री के रुपए माँगे तो नोंच ही खाऊँगा।

नईम — हाँ, मंजूर हैं।

कैलास — (धीरे से) मगर यार, नाजुक-मिजाज स्त्री हैं, कोई बेहूदा मजाक न कर बैठना।

नईम — जी, इन बातों में मुझे आपके उपदेश की जरूरत नहीं। मुझे उनके कमरे में ले तो चलिए!

कैलास — सिर नीचे किए रखना।

नईम — अजी, आँखों पर पट्टी बाँध दो।

कैलास के घर में परदा न था। उमा चिन्ता में मग्न बैठी हुई थी। सहसा नईम और कैलास को देखकर चौंक पड़ी और बोली — आइए मिरजाजी, अब की तो बहुत दिनों में याद किया।

कैलास नईम को वहीं छोड़कर कमरे से बाहर निकल आया लेकिन परदे की आड़ से छिपकर देखने लगा कि इनमें क्या बातें होती हैं। कुछ बुरा ख्याल न था, केवल कौतूहल था।

नईम — हम सरकारी आदमियों को इतनी फुरसत कहाँ? डिक्री के रुपए वसूल करने थे, इसीलिए चला आया हूँ।

उमा कहाँ तो मुस्करा रही थी, कहाँ रुपए का नाम सुनते ही उसका चेहरा फक़ हो गया। गम्भीर स्वर में बोली — हम लोग स्वयं इसी चिन्ता में पड़े हुए हैं। कहीं रुपए मिलने की आशा नहीं हैं, और उन्हें जनता से अपील करते संकोच होती हैं।

नईम — अजी, आप कहती क्या हैं? मैंने सब रुपए पाई–पाई वसूल कर लिए।

उमा ने चकित होकर कहा — सच'! उनके पास रुपए कहाँ थे?'

नईम — उनकी हमेशा से यही आदत हैं। आपसे कह रखा होगा, मेरे पास एक कौड़ी नहीं हैं। लेकिन मैंने चुटकियों में वसूल कर लिया! आप उठिए, खाने का इन्तजाम कीजिए।

उमा — रुपए भला क्या दिए होंगे, मुझे एतबार नहीं आता।

नईम — आप सरल हैं और वह एक नम्बर का काइयाँ। उसे तो मैं ही खूब जानता हूँ। अपनी दरिद्रता के दुखड़े गा-गाकर आपको चकमा दिया करता होगा।

कैलास मुस्कराते हुए कमरे में आए और बोले — अच्छा, अब निकलिए बाहर! यहाँ भी अपनी शैतानी से बाज न आए?

नईम — रुपए की रसीद तो लिख दूँ?

उमा — तुमने रुपए दे दिए? कहाँ मिले?

कैलास — फिर बतला दूँगा, उठिए हजरत!

उमा — बताते क्यों नहीं, कहाँ मिले? मिरजा जी से कौन परदा हैं?

कैलास — नईम, तुम उमा के सामने मेरी तौहीन करना चाहते हो?

नईम — तुमने सारी दुनिया के सामने मेरी तौहीन नहीं की?

कैलास — तुम्हारी तौहीन की तो उसके लिए 20 हजार रुपए नहीं देने पड़े।

नईम — मैं भी उसी टकसाल के रुपए दे दूँगा। उमा, मैं रुपए पा गया, इन बेचारे का परदा ढका रहने दो।'

शतरंज के खिलाड़ी

वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे–बड़े, अमीर–गरीब, सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था , तो कोई अफीम की पीनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद–प्रमोद को प्राधान्य था। शासन विभाग में, साहित्य क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला कौशल में, उद्योग–धन्धों में, आहार–विहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही था। कर्मचारी विषय–वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में , व्यवसायी सुरमे, इत्र मिस्सी और उबटन का रोजगार करने में लिप्त था। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को खबर न थी। बटेर लड़ रहे है। तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है। कही चौरस बिछी हुई है। पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कही शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फकीरों को पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न लेकर

अफीम खाते या मदक पीते। शतरंज ताश, गंजीफा खेलने में बुद्धि तीव्र होती है, विचार शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है, ये दलील जोर के साथ पेश की जाती थी। (इस सम्प्रदाय के लोगो से दुनिया अब भी खाली नही है।) इसलिए अगर मिर्जा सज्जाद अली और मीर रौशन अली अपना अधिकांश समय बुद्धि–तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थी, जीविका की कोई चिन्ता न थी। घर बैठे चखोतियाँ करते। आखिर और करते ही क्या? प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछा कर बैठ जाते, मुहरे सज जाते और लड़ाई के दाँवपेंच होने लगते थे। फिर खबर न होती थी कि कब दोपहर हुई कब तीसरा पहल, कब शाम। घर के भीतर से बार–बार बुलावा आता था — 'खाना तैयार है।' यहाँ से जवाब मिलता — 'चलो आते है, दस्तरख्वान बिछाओ।' यहाँ तक कि बावरची विवश होकर कमरे में ही खाना रख जाता था, और दोनों मित्र दोनो काम साथ–साथ करते थे। मिर्जा सज्जाद अली के घर में कोई बड़ा–बूढा न था, इसलिए उन्हीं के दीवानखाने में बाजियाँ होती थी; मगर यह बात न थी कि मिर्जा के घर के और लोग उसके व्यवहार से खुश हो। घरवाली का तो कहना ही क्या, मुहल्ले वाले, घर के नौकर–चाकर तक नित्य द्वेषपूर्ण टिप्पणियाँ

किया करते थे — 'बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। खुदा न करे किसी को इसकी चाट पड़े। आदमी दीन दुनिया किसी के काम का नही रहता, न घर का न घाट का। बुरा रोग है।' यहाँ तक कि मिर्जा की बेगम इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोज कर पति को लताड़ती थी। पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोचती रहती थी, तब तक उधर बाजी बिछ जाती था। और रात को जब सो जाती थी, तब कही मिर्जा जी भीतर आते थे। हाँ नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थी — 'क्या पान माँगे है? कह दो आकर ले जायँ। खाने की भी फुर्सत नही हैं? ले जाकर खाना सिर पटक दो, खायँ चाहे कुत्ते को खिलावें।' पर रूबरू वह कुछ न कह सकती थी। उनको अपने पति से उतना मलाल न था जितना मीर साहब से। उन्होंने उसका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद मिर्जा जी अपनी सफाई देने के लिए सारा इल्जाम मीर साहब ही के सिर थोप देते थे।

एक दिन बेगम साहिबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्होंने लौड़ी से कहा — 'जाकर मिर्जा साहब को बुला लो। किसी हकीम के यहाँ से दवा लाये। दौड़, जल्दी कर।' लौड़ी गयी तो मिर्जा ने कहा — 'चल, अभी आते है।' बेगम का मिजाज गरम था। इतनी ताब कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो, और पति शतरंज खेलता

रहे। चेहरा सुर्ख हो गया। लौड़ी से कहा — 'जाकर कह, अभी चलिए नही तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायँगी।' मिर्जा जी बड़ी दिलचस्प बाजी खेल रहे थे, दो ही किश्तों में मीर साहब की मात हुई जाती थी, झुँझलाकर बोले — 'क्या ऐसा दम लबों पर है? जरा सब्र नही होता?'

मीर — अरे, तो जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाजुक–मिजाज होती है।

मिर्जा — जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ। दो किश्तों में आपको मात होती है।

मीर — जनाब, इस भरोसे में न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें, और मात हो जाए। पर जाइए, सुन आइए, क्यों ख्वामख्वाह उनका दिल दुखाइएगा?

मिर्जा — इसी बात पर मात ही कर के जाऊँगा।

मीर — मै खेलूँगा ही नही। आप जाकर सुन आइए।

मिर्जा — अरे यार जाना, ही पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर–दर्द खाक नही है, मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर — कुछ भी हो, उनकी खातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिर्जा — अच्छा, एक चाल और चल लूँ।

मीर — हरगिज नही, जब तक आप सुन न आवेंगे, मै मुहरे में हाथ न लगाऊँगा।

मिर्जा साहब मजबूर होकर अन्दर गये तो बेगम साहबा ने त्योरियाँ बदल कर लेकिन कराहते हुए कहा — तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है! चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नही लेते! नौज कोई तुम जैसा आदमी हो!

मिर्जा — क्या कहूँ, मीर साहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाकर आया हूँ।

बेगम — क्या जैसे वह खुद निखट्टू ही, वैसे ह सबको समझते है? उनके भी बाल बच्चे है, या सबका सफाया कर डाला है!

मिर्जा — बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है तब मजबूर होकर खेलना पड़ता है।

बेगम — दुत्कार क्यो नही देते?

मिर्जा — बराबर का आदमी है, उम्र में, दर्जे मे, मुझसे दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिजा करना ही पड़ता है।

बेगम — तो मै ही दुत्कार देती हूँ। नाराज हो जायेंगे, हो जाएँ। कौन किसी की रोटियों चला देता है। रानी रूठेगी, अपना सुहाग

लेंगी। — हिरिया, बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ ले जाइए।

मिर्जा — हाँ-हाँ, कहीं ऐसा गजब भी न कर ना! जलील करना चाहती हो क्या? ठहर हिरिया, कहाँ जाती है!

बेगम — जाने क्यों नही देते? मेरे ही खून पिए, जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको तो जानूँ।

यह कहकर बेगम साहिबा झल्लायी हुई दीवानखाने की तरफ चली। मिर्जा बेचारे का रंग उड़ गया। बीवी की मिन्नतें करने लगे — 'खुदा के लिए, तुम्हें हजरत हुसेन की कसम। मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जाए।' लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानखाने के द्वार तक चली गयी। पर एकाएक पर पुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध गए। भीतर झाँका, संयोग से कमरा खाली था; मीर साहब ने दो मुहरे इधर-उधर कर दिये थे और अपनी सफाई बताने के लिए बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अन्दर पहुँच कर बाजी उलट दी; मुहरे कुछ तख्त के नीचे फेंक दिये, कुछ बाहर और किवाड़ अन्दर से बन्द करके कुंडी लगा दी। मीर साहब दरवाजे पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर

दरवाजा बन्द हुआ, तो समझ गये बेगम बिगड़ गयी। घर की राह ली।

मिर्जा ने कहा — तुमने गजब किया।

बेगम — अब, मीर साहब इधर आये तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ खुदा से लगाते तो क्या गरीब हो जाते? आप तो शतरंज खेले और मैं यहाँ चूल्हे चक्की की फिक्र में सिर खपाऊँ। बोलो, जाते हो हकीम के यहाँ कि अब भी ताम्मुल है।

मिर्जा घर से निकले तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुँचे, और सारा वृतान्त कहा। मीर साहब बोले — मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे तभी ताड गया। फौरन भागा। बड़ी गुस्सेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हे यो सिर पर चढ़ा रखा है यह मुनासिब नही। उन्हें इससे क्या मतलब की आप बाहर क्या करते है। घर का इन्तजाम करना उनका काम है, दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार?

मिर्जा — खैर, यह तो बताइए, अब कहाँ जमाव होगा?

मीर — इसका क्या गम? इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है? बस यही जमे।

मिर्जा — लेकिन बेगम साहब को कैसे मनाऊँगा? जब घर पर बैठा रहता था तब तो वह इतना बिगड़ती थी, यहाँ बैठक होगी तो शायद जिन्दा न छोड़ेगी।

मीर — अजी बकने भी दीजिए, दो–चार रोज में आप ही ठीक हो जायँगी। हाँ, आप इतना कीजिए कि आज से जरा तन जाइए!

2

मीर साहब की बेग किसी अज्ञात कारण से उनका घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थी। इसलिए वह उनके शतरंज प्रेम की कभी आलोचना न करती बल्कि कभी–कभी मीर साहब को देर हो जाती तो याद दिला देती थी। इन कारणों से मीर साहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यन्त विनयशील और गम्भीर है। लेकिन जब दीवानखाने में बिसात बिछने लगी, और मीर साहब दिन भर घर में रहने लगे तो उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गयी। दिन भर दरवाजे पर झाँकने को तरस जाती।

उधर नौकरों में काना–फूसी होने लगी। अब तक दिन भर पड़े–पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में चाहे कोई आवे, चाहे

कोई जाय, इनसे कुछ मतलब न था। आठों पहर की धौंस हो गयी। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई लाने का। और हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। वे बेगम साहब से जा–जाकर कहते — हुजूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई! दिन भर दौड़ते–दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम ही कर दी। घड़ी आध घड़ी दिल–बहलाव के लिए खेल लेना बहुत है। खैर, हमें तो कोई शिकायत नही, हुजूर के गुलाम हो, जो हुक्म होगा बजा ही लावेंगे, मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलने वाला कभी पनपता नही, घर पर कोई न कोई आफत जरूर आता है। यहाँ तक कि एक के पीछे मुहल्ले के मुहल्ले तबाह हो जाते देखे गये है। सारे मुहल्ले मे यही चर्चा होती रहती है। हुजूर का नमक खाते है। अपने आका की बुराई सुन–सुनकर रंज होता है। मगर क्या करे? इसपर बेगम साहिबा कहती — मै तो खुद इसको पसन्द नही करती, पर वह किसी की सुनते ही नही, क्या किया जाय?

मुहल्ले में भी दो–चार पुराने जमाने के लोग थे। वे आपस में भाँति–भाँति के अमंगल की कल्पनाएँ करने लगे — अब खैरियत नही है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही

हाफिज। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे है।

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन–दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फरियाद सुनने वाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची चली आती थी, और वह वेश्याओं में, भाँड़ो में और विलासितों के अन्य अंगों की पूर्ति मे उड़ जाती थी। अंगरेजी कम्पनी का ऋण दिन–दिन बढ़ता जाता थी। कमली दिन–दिन भीग कर भारी होती जाती थी। देख में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेजिडेन्ट बार–बार चेतावनी देता था, पर यहाँ लोग विलासिता के नशे में चूर थे। किसी के कान में जूँ न रेंगती थी।

खैर, मीर साहब के दीवानखाने में शतरंज होते महीने गुजर गये। नये–नये नक्शे हल किये जाते, नये–नये बनाये जाते, नित नयी व्यूह रचना होती; कभी–कभी खेलते–खेलते भिड़ हो जाती। तू–तू मै–मै तक की नौबत आ जाती। पर शीध्र ही दोनो में मेल हो जाता। कभी–कभी ऐसा भी होता कि बाजी उठा दी जाती. मिर्जा जी रूठ कर अपने घर में जा बैठते। पर रातभर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शान्त हो जाता था। प्रातःकाल दोनो मित्र दीवानखाने में आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनो मित्र बैठे शतरंज की दलदल में गोते लगा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फौज का अफसर मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गये। यह क्या बला सिर पर आयी? यह तलबी किस लिये हुई? अब खैरियत नही नजर आती! घर के दरवाजे बन्द कर लिये। नौकर से बोले — कह दो घर में नही है।

सवार — घर में नही, तो कहाँ है?

नौकर — यह मैं नही जानता। क्या काम है?

सवार — काम तुझे क्या बतालाऊँ? हुजूर से तलबी है — शायद फौज के लिए कुछ सिपाही माँगे गये है। जागीरदार है कि दिल्लगी? मोरचे पर जाना पड़ेगा तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा।

नौकर — अच्छा तो जाइए, कह दिया जायेगा।

सवार — कहने की बात नही। कल मै खुद आऊँगा। साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा काँप उठी। मिर्जा जी से बोले — कहिए, जनाब, अब क्या होगा?

मिर्जा — बड़ी मुसीबत है। कहीं मेरी भी तलबी न हो।

मीर — कमबख़्त कल आने को कह गया है।

मिर्जा — आफत है, और क्या! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा तो बेमौत मरे।

मीर — बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलें ही नही। कल से गोमती पर कहीं वीराने नें नक्शा जमें। वहाँ किसे खबर होगी? हजरत आकर लौट जायेंगे।

मिर्जा — वल्लाह, आपको खूब सूझी! इसके सिवा और कोई तदबीर नही है।

इधर मीर साहब की बेगम उस सवार से कह रही थी — तुमने खूब धता बतायी।

उसने जवाब दिया — ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अकल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूलकर भी घर न रहेंगे।

3

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह अँधेरे घर से निकल खड़े होते। बगल में एक छोटी–सी दरी दबाये, डिब्बे में गिलौरियाँ भरे, गोमती

पार कर एक पुरानी वीरान मस्जिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसफउद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तम्बाकू, चिलम और मदरिया ले लेते और मस्जिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भर शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन-दुनिया की फिक्र न रहती थी। 'किस्त', 'शह' आदि दो-एक शब्दों के सिवा मुँह से और कोई वाक्य नही निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता। दो पहर को जब भूख मालूम होती तो दोनो मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते और एक चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम क्षेत्र में डट जाते। कभी कभी तो उन्हें भोजन का भी ख्याल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चो को ले-ले कर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनो खिलाड़ियों को इसकी जरा भी फिक्र न थी। वे घर से आते तो गलियों में होकर। डर था कि कही किसी बादशाही मुलाजिम की निगाह न पड़ जाय, नही तो बेगार में पकड़े जायँ। हजारों रुपये सालाना की जागीर मुफ्त में ही हजम करना चाहते थे।

एक दिन दोनो मित्र मस्जिद के खंडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मिर्जा की बाजी कुछ कमजोर थी। मीर साहब को किश्त पर किश्त दे रहे थे। इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए

दिखाई दिये। यह गोरों की फौज थी जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिए आ रही थी।

मीर साहब — अंगरेजी फौज आ रही है खुदा खैर करे!

मिर्जा — आने दीजिए, किश्त बचाइए। लो यह किश्त!

मीर — तोपखाना भी है। कोई पाँच हजार आदमी होगे, कैसे जवान है। लाल बन्दरों से मुँह है। सूरत देखकर खौफ मालूम होता है।

मिर्जा — जनाब, हीले न कीजिए। ये चकमे किसी और को दीजिएगा — यह किश्त!

मीर — आप भी अजीब आदमी है। यहाँ तो शहर पर आफत आयी हुई है, और आपको किश्त की सूझी है। कुछ खबर है कि शहर घिर गया तो घर कैसे चलेंगे?

मिर्जा — जब घर चलने का वक्त आयेगा तो देखी जाएगी — यह किश्त, बस अब की शह में मात है।

फौज निकल गयी। दस बजे का समय था। फिर बाजी बिछ गयी। मिर्जा बोले — आज खाने की कैसी ठहरेगा?

मीर — अजी, आज तो रोजा है। क्या आपको भूख ज्यादा मालूम होती है?

मिर्जा — जी नही। शहर में जाने क्या हो रहा है?

मीर — शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-खाकर आराम से सो रहे होगे। हुजूर नवाब साहब भी ऐशगाह में होगे।

दोनो सज्जन फिर जो खेलने बैठे तो तीन बज गए। अब की मिर्जा की बाजी कमजोर थी। चार का गजर बज रहा था कि फौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली शाह पकड़ लिए गये थे, और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिए जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी खून नही गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शान्ति से इस तरह खून बहे बिना न हुई होगी। यह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते है। यह कायरपन था, जिस पर बड़े से बड़े कायर आँसू बहाते है। अवध के विशाल देश का नवाब बन्दी बना चला जाता था और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

मिर्जा ने कहा — हुजूर नवाब को जालिमों नें कैद कर लिया है।

मीर — होगा, यह लीजिए शह!

मिर्जा — जनाब, जरा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत ठीक नही लगती। बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे।

मीर — रोया ही चाहे, यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा? यह किश्त।

मिर्जा — किसी के दिन बराबर नही जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।

मीर — हाँ, सो तो है ही, यह लो फिर किश्त! बस अब की किश्त में मात है। बच नहीं सकते।

मिर्जा — खुदा की कसम, आप बड़े बे दर्द है। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुःख नही होता। हाय, गरीब वाजिदअली शाह!

मीर — पहले अपने बादशाह को तो बचाइए, फिर नवाब का मातम कीजिएगा। यह किश्त और मात! लाना हाथ!

बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल गयी। उनके जाते ही मिर्जा ने फिर बाजी बिछा ली। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा — आइए नवाब के मातम में मरसिया कह डाले। लेकिन मिर्जा की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो गए थे।

4

शाम हो गयी। खंडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने घोंसलों में चिपटी। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे। मानो दोनों खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हो। मिर्जा जी तीन बाजियाँ लगातार हार चुके थे; इस चौथी बाजी का भी रंग अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़निश्चय कर सँभलकर खेलते थे लेकिन एक न एक चाल ऐसी बेढ़ब आ पड़ती थी जिससे बाजी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और उग्र होती जाती थी। उधर मीर साहब मारे उमंग के गजलें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गये हो। मिर्जा सुन-सुनकर झुँझलाते और हार की झेंप मिटाने कि लिए उनकी दाद देते थे। ज्यों-ज्यों बाजी कमजोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकलता जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे। 'जनाब' आप चाल न बदला कीजिए। यह क्या कि चाल चले और फिर उसे बदल दिया जाय। जो कुछ चलना है एक बार चल दीजिए। यह आप मुहरे पर ही क्यों हाथ रखे रहते है। मुहरे छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छुइए ही नही। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे में चलते है। इसकी सनद नही। जिसे एक चाल

चलने में पाँच मिनट से ज्यादा लगे उसकी मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली? चुपके से मुहर वही रख दीजिए।

मीर साहब की फरजी पिटता था। बोले — मैंने चाल चली ही कब थी?

मिर्जा — आप चाल चल चुके है। मुहरा वही रख दीजिए — उसी घर में।

मीर — उसमें क्यो रखूँ? हाथ से मुहरा छोड़ा कब था?

मिर्जा — मुहरा आप कयामत तक न छोड़े, तो क्या चाल ही न होगी? फरजी पिटते देखा तो धाँधली करने लगे।

मीर — धाँधली आप करते है। हार-जीत तकदीर से होती है। धाँधली करने से कोई नही जीतता।

मिर्जा — तो इस बाजी में आपकी मात हो गयी।

मीर — मुझे क्यो मात होने लगी?

मिर्जा — तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रखा था।

मीर — वहाँ क्यो रखूँ? नही रखता।

मिर्जा — क्यों न रखिएगा? आपको रखना होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी–अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था, न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगी। मिर्जा बोले — किसी ने खानदान में शतरंज खेली होती तब तो इसके कायदे जानते। वो तो हमेशा घास छीला किए, आप शतरंज क्या खेलिएगा? रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने ही से कोई रईस नही हो जाता।

मीर — क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आते है?

मिर्जा — अजी जाइए भी, गाजीउद्दीन हैदर के यहाँ बावर्ची का काम करते–करते उम्र गुजर गयी। आज रईस बनने चले है। रईस बनना कुछ दिल्लगी नही।

मीर — क्यों अपने बुजुर्गों के मुँह पर कालिख लगाते हो — वे बावर्ची का काम करते होंगे। यहाँ तो बादशाह के दस्तरख़्वान पर खाना खाते चले आये है।

मिर्जा — अरे चल चरकटे, बहुत बढ़कर बातें न कर!

मीर — जबान सँभालिए, वर्ना बुरा होगा। मै ऐसी बातें सुनने का आदी नही। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखायी कि उसकी आँखें निकाली। है हौसला?

मिर्जा — आप मेरा हौसला देखना चाहते है, तो फिर आइए, आज दो–दो हाथ हो जायँ, इधर या उधर।

मीर — तो यहाँ तुमसे दबने वाला कौन है?

दोनो दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल ली। नवाबी जमाना था। सभी तलवार, पेशकब्ज कटार वगैरह बाँधते थे। दोनो विलासी थे, पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था। बादशाह के लिए क्यों मरे? पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनो ने पैतरे बदले, तलवारें चमकी, छपाछप की आवाजें आयी। दोनो जख्मी होकर गिरे, दोनो न वहीं तड़प–तड़प कर जाने दी। अपने बादशाह के लिए उनकी आँखों से एक बूँद आँसू न निकला, उन्होने शतरंज के वजीर की रक्षा नें प्राण दे दिए।

अँधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनो बादशाह अपने–अपने सिंहासन पर बैठे मानो इन वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खँडहर की टूटी हुई, मेहराबें गिरी हुई दीवारें और धूल–धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थी।

वज्रपात

दिल्ली का गलियाँ दिल्ली के निवासियों के रुधिर से प्लावित हो रही हैं। नादिरशाह की सेना ने सारे नगर में आतंक मचा रखा हैं। जो कोई सामने आता हैं, उसे उनकी तलवार से मौत के घाट उतरना पड़ता हैं। नादिरशाह का प्रचंड क्रोध किसी तरह शान्त ही नहीं होता। रक्त की वर्षा भी उसके कोप की आग को बुझा नहीं सकती।

नादिरशाह दरबारे–आम में तख्त पर बैठा हुआ हैं। उसकी आँखों से जैसे ज्वालाएँ निकल रहीं हैं। दिल्लीवालों की इतनी हिम्मत कि उसके सिपाहियों का अपमान करें! उन कापुरुषों की यह मजाल! वह काफिर तो उसकी सेना की एक ललकार पर रणक्षेत्र से निकल भागे थे! नगर–निवासियों का आर्तनाद सुन–सुनकर स्वयं सेना के दिल काँप जाते हैं। मगर नादिरशाह की क्रोधाग्नि शान्त नहीं होती। यहाँ तक कि उसका सेनापति भी उसके सम्मुख जाने का साहस नहीं कर सकता। वीर पुरुष दयालु होते हैं, असहायों पर, दुर्बलों पर, स्त्रियों पर उन्हें क्रोध नहीं आता। इन पर क्रोध

करना वे अपनी शान के खिलाफ समझते हैं, किन्तु निष्ठुर नादिरशाह की वीरता दयाशून्य थी।

दिल्ली का बादशाह सिर झुकाए नादिरशाह के पास बैठा हुआ था। हरमसरा में विलास करने वाला बादशाह नादिरशाह की अविनयपूर्ण बातें सुन रहा था। पर मजाल न थी कि जबान खोल सके। उसे अपनी जान के लाले पड़े हुए थे। पीड़ित प्रजा की रक्षा कौन करे? वह सोचता था, मेरे मुँह से कुछ निकले और वह मुझी को डाँट बैठते हैं।

अन्त में सेना की पैशाचिक क्रूरता पराकाष्ठा को पहुँच गई तो मुहम्मदशाह के वजीर से न रहा गया। वह कविता का मर्मज्ञ था। खुद भी कवि था। जान पर खेल कर नादिरशाह का सामने पहुँचा और यह शेर पढ़ा —

कसे न माँद कि दीगर न तेदो नाज कुशी,
मगर कि जिन्दा कुनी खल्करा व बाज कुशी।

अर्थात् तेरी निगाह की तलवार से कोई बचा नहीं। अब यहीं उपाय हैं कि मुर्दों को फिर जिलाकर कत्ल कर।

शेर ने दिल पर चोट की। पत्थर में भी सूराख होते हैं। पहाड़ो में भी हरियाली होती हैं। पाषाण हृदयों में भी रस होता हैं। इस शेर ने पत्थर को पिघला दिया। नादिरशाह ने सेनापति को

बुलाकर कत्लेआम बन्द करने का हुक्म दिया। एकदम तलवारे म्यान में चली गई। कातिलों के उठे हुए हाथ उठे ही रहे। जो सिपाही जहाँ था, वहाँ बुत बन गया।

शाम हो गई थी। नादिरशाह शाही बाग में सैर कर रहा था। बार–बार वही शेर पढ़ता और झूमता —

कसे न माँद कि दीगर न तेदो नाज कुशी,
मगर कि जिन्दा कुनी खल्करा व बाज कुशी।

2

दिल्ली का खजाना लुट रहा था। शाही महल पर पहरा हैं। कोई अन्दर से बाहर या बाहर से अन्दर आ–जा नहीं सकता। बेगमें भी अपने महलों से बाहर बाग में निकलने की हिम्मत नहीं कर सकती। महज खजाने पर आफत नहीं आई हुई है। सोने–चाँदी के बरतनों, बेशकीमती तस्वीरों और आराइश (सजावट) की अन्य सामग्रियों पर भी हाथ साफ किया जा रहा हैं। नादिरशाह तख्त पर बैठा हुआ हीरे और जवाहरात के ढेरों को गौर से देख रहा हैं। पर वह चीज नजर नहीं आती, जिसके लिए मुद्दत से उनका चित्त लालायित हो रहा था। उसने मुगल–आजम नाम के हीरे का

प्रशंसा, उसकी करामतों की चर्चा सुनी थी — उसको धारण करने वाला मनुष्य दीर्घजीवी होता हैं। कोई रोग उसके निकट नहीं आता। उस रत्न में पुत्रदायिनी शक्ति हैं, इत्यादि। दिल्ली पर आक्रमण करने के जहाँ और अनेक कारण थे। वहाँ इस रत्न को प्राप्त करना भी एक कारण था। सोने-चाँदी के ढेरों और बहुमूल्य रत्नों की चमक-दमक से उनकी आँखें भले ही चौंधिया जाएँ, पर हृदय उल्लसित न होता था। उसे तो मुगल-आजम की धुन थी और मुगल-आजम का पता न था। वह क्रोध से उन्मत होकर शाही मंत्रियों की ओर देखता और अपने अफसरों को झिड़कियाँ देता था। पर अपना अभिप्राय खोलकर न कह सकता था। किसी की समझ में न आता था कि वह इतना आतुर क्यों हो रहा हैं। यह तो खुशी से फूले न समाने का अवसर हैं, अतुल सम्पत्ति सामने पड़ी हुई हैं। संख्या में इतनी सामर्थ्य नहीं कि उसकी गणना कर सके! संसार का कोई भी महीपति इस विपुल धन का एक अंश भी पाकर अपने को भाग्यशाली समझता। परन्तु यह पुरुष जिसने इस धनराशि का शतांश भी पहले कभी आँखों से न देखा होगा, जिसकी उम्र भेड़ चराने में ही गुजरी, क्यों इतना उदासीन हैं? आखिर जब रात हुई, बादशाह का खजाना खाली हो गया और उस रत्न के दर्शन न हुए तो नादिरशाह की क्रोधाग्नि फिर भड़क उठी। उसने बादशाह के मंत्री को — उसी

मंत्री को, जिसकी काव्य–मर्मज्ञता ने प्रजा के प्राण बचाए थे– एकान्त में बुलाया और कहा — मेरा गुस्सा तुम देख चुके हो! अगर फिर उसे नहीं देखना चाहते तो लाजिम हैं कि मेरे साथ कामिल सफाई का बरताव करो, वरना दोबारा यह शोला भड़का तो दिल्ली की खैरियत नहीं।

वजीर — जहाँपनाह, गुलामों से तो कोई खता सरज़द नहीं हुई। खजाने की सब कुंजियाँ जनाबेअली के सिपहसालार के हवाले कर दी गई हैं।

नादिर — तुमने मेरे साथ दगा की है।

वजीर — (त्योरी चढ़ाकर) आपके हाथ में तलवार हैं और हम कमजोर हैं, जो चाहे फरमावें, पर इल्जाम के तसलीम करने में मुझे उज्र हैं।

नादिर — क्या उसके लिए सबूत की जरूरत हैं?

वजीर — जी हाँ, क्योंकि दगा का सजा कत्ल हैं और कोई बिला सबब अपने कत्ल पर रजामन्द न होगा।

नादिर — इसका सबूत मेरे पास हैं, हालाँकि नादिर नें कभी किसी को सबूत नहीं दिया। वह अपनी मरजी का बादशाह हैं और किसी को सबूत देना अपनी शान के खिलाफ समझता हैं। पर

यहाँ ज़ाति मुआमिला हैं। तुमने मुगल–आजम हीरा क्यों छिपा दिया?

वजीर के चेहरे का रंग उड़ गया। वह सोचने लगा। यह हीरा तो बादशाह को जान से भी ज्यादा अज़ीज़ हैं, वह उसे एक क्षण भी अपने पास से जुदा नहीं करते, उसने क्योंकर कहूँ? उन्हें कितना सदमा होगा! मुल्क गया, खजाना गया, इज्जत गई। बादशाही की यही एक निशानी उनके पास रह गई हैं। उनसे कैसे कहूँ? मुमकिन हैं वह गुस्से में आकर इसे कहीं फैंक दे, या तुड़वा डाले। इंसान की आदत हैं कि वह अपनी चीज दुश्मन को देने की अपेक्षा उसे नष्ट कर देना अच्छा समझता हैं। बादशाह, बादशाह हैं, मुल्क न सही, अधिकार न सही, सेना न सही, पर जिन्दगी–भर की स्वेच्छाचारिता एक दिन में नहीं मिट सकती। यदि नादिर को हीरा न मिला तो वह न जाने दिल्ली पर क्या सितम ढाए। आह! उसकी कल्पना ही से रोमाँच हो जाता हैं। खुदा न करे, दिल्ली को फिर यह दिन देखना पड़े।

सहसा नादिर ने पूछा — मैं तुम्हारे जवाब का मुन्तजिर हूँ। क्या यह तुम्हारी दगा का काफी सबूत नहीं हैं?

वजीर — जहाँपनाह, वह हीरा बादशाह सलामत को जान से ज्यादा अज़ीज़ हैं। वह उसे हमेशा अपने पास रखते हैं।

नादिर — झूठ मत बोलो। हीरा बादशाह के लिए हैं, बादशाह हीरे के लिए नहीं। बादशाह को हीरा जान से ज्यादा अज़ीज़ हैं — का मतलब सिर्फ इतना हैं कि वह बादशाह का बहुत अज़ीज़ हैं, और यह कोई वजह नहीं कि मैं उस हीरे को उनसे न लूँ। अगर बादशाह यों न देंगे तो मैं जानता हूँ कि मुझे क्या करना हैं। तुम जाकर इस मुआमिले में नाजुकफहमी से काम लो, जो तुमने कल दिखाई थी। आह कितना लाजवाब शेर था —

कसे न माँद कि दीगर न तेदो नाज कुशी,
मगर कि जिन्दा कुनी खल्करा व बाज कुशी।'

3

मंत्री सोचता हुआ चला कि यह समस्या क्यों कर हल करूँ? बादशाह के दीवानखाने में पहुँचा तो देखा, बादशाह उसी हीरे को हाथ में लिए चिन्ता में मग्न बैठे हुए हैं।

बादशाह को इस वक्त इसी हीरे की फिक्र थी। लुटे हुए पथिक की भाँति वह अपनी वह लकड़ी हाथ से न जाने देना चाहता था। वह जानता था कि नादिर को इस हीरे की खबर हैं। वह यह भी जानता था कि खजाने में इसे न पाकर उसके क्रोध की सीमा न

रहेगी लेकिन सब कुछ जानते हुए भी वह हीरे को हाथ से न जाने देना चाहता था। अन्त में उसने निश्चय किया, मैं इसे न दूँगा, चाहे मेरी जान ही पर क्यों न बन जाए। रोगी की इस अन्तिम साँस को न निकलने दूँगा। हाय कहाँ छिपाऊँ? इतना बड़ा मकान हैं कि उसमें एक नगर समा सकता हैं, पर इस नन्हीं–सी चीज के लिए कहीं जगह नहीं, जैसे किसी अभागे को इतनी बड़ी दुनिया में भी कहीं पनाह नहीं मिलती। किसी सुरक्षित स्थान में न रखकर क्यों न इसे किसी ऐसी जगह रख दूँ, जहाँ किसी का ख्याल ही न पहुँचे। कौन अनुमान कर सकता हैं कि मैंने हीरे को सुराही में रखा होगा? अच्छा, हुक्के की फर्शी में क्यों ने डाल दूँ? फरिश्तों को भी खबर न होगी।

यह निश्चय करके उसने हीरे को फर्शी में डाल दिया। पर तुरन्त ही शंका हुई कि ऐसे बहुमूल्य रत्न को इस जगह रखना उचित नहीं। कौन जाने, जालिम को मेरी यह गुड़गुड़ी ही पसन्द आ जाए। उसने तुरन्त गुड़गुड़ी का पानी तश्तरी में उड़ेल दिया और हीरे को निकाल लिया। पानी की दुर्गन्ध उड़ी पर इतनी हिम्मत न पड़ती थी कि खिदमतगार को बुलाकर पानी फिंकवा दे। भय होता था, कहीं वह ताड़ न जाए।

वह इसी दुविधा में पड़ा हुआ था कि मंत्री ने आकर बन्दगी की। बादशाह को उस पर पूरा विश्वास था। किन्तु उसे अपनी क्षुद्रता

पर इतनी लज्जा आई कि वह इस रहस्य को उस पर भी प्रकट न कर सका। गुमसुम होकर उसकी ओर ताकने लगा।

मंत्री ने बात छेड़ी — आज खजाने में हीरा न मिला तो नादिर बहुत झल्लाया। कहने लगा, तुमने मेरे साथ दगा की हैं। मैं शहर लुटवा दूँगा, कत्लेआम कर दूँगा। सारे शहर को खाकसियाह कर डालूँगा। मैंने कहा — जनाबेआली को अख्तियार हैं, जो चाहे करें पर हमने खजाने की सह कुंजियाँ आपके सिपहसालार को दे दी हैं। वह कुछ साफ-साफ तो कहता न था, बस कनायों में बातें कर रहा था और भूखे गीदड़ की तरह इधर-उधर बौखलाया फिरता था कि किसे पाए, और नोंच खाए।

मुहम्मदशाह — मुझे तो उसके सामने बैठते हुए ऐसा खौफ मालूम होता हैं, गोया किसी शेर का सामना हो। जालिम की आँखें कितनी तुन्द्र और गजबनाक हैं। आदमी क्या हैं, शैतान हैं। खैर मैं भी इसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ हूँ फिर इसे क्योंकर छिपाऊँ। सल्तनत जाए गम नहीं, पर इस हीरे को मैं उस वक्त तक न दूँगा, जब तक गरदन पर सवार होकर इसे छीन न ले।'

वजीर — खुदा न करें कि हुजूर के दुश्मनों को यह जिल्लत उठानी पड़े। मैं एक तरकीब बतलाऊँ हुजूर, अपने अमामे (पगड़ी) में रख लें। वहाँ तक उसके फरिश्तों का भी ख्याल न पहुँचेगा।'

मुहम्मदशाह — (उछलकर) वल्लाह, तुमने खूब सोचा, वाकई तुम्हें खूब सूझी। हजरत इधर–उधर टटोलने के बाद अपना–सा मुँह लेकर रह जाएँगें। मेरे अमामे को कौन देखेगा? इसी से तो मैंने तुम्हें लकुमान का खिताब दिया! बस, यही तय रहा, कहीं तुम जरा देर पहले आ जाते तो मुझे इतना दर्दे–सर न उठाना पड़ता।'

4

दूसरे ही दिन दोनों बादशाह में सुलह हो गई। वजीर नादिरशाह के कदमों में गिर पड़ा और अर्ज की — अब इस डूबती हुई कश्ती को आप ही पार लगा सकते हैं वरना अल्लाह ही वली हैं! हिन्दुओं ने सिर उठाना शुरू कर दिया, मरहठे, राजपूत, सिख सभी अपनी–अपनी ताकतों को मुकम्मिल कर रहे हैं। जिस दिन उनसे मेल–मिलाप हुआ, उसी दिन से नाव भँवर में पड़ जाएगी और दो–चार चक्कर खाकर हमेशा के लिए नीचे बैठ जाएगी।

नादिरशाह को ईरान से चले अरसा हो गया था। वहाँ से रोजाना बागियों का बगावत की खबरें आ रही थीं। नादिरशाह जल्द वहाँ लौट जाना चाहता था। इस समय उसे दिल्ली में अपनी सल्तनत

कायम करने का अवकाश न था। सुलह पर राजी हो गया। संधि–पत्र पर दोनो बादशाहों ने हस्ताक्षर कर दिए।

दोनों बादशाहों ने एक ही साथ नमाज पड़ी। एक ही दस्तरख्वान पर खाना खाया, एक ही हुक्का पिया और एक–दूसरे के गले मिलकर अपने–अपने स्थान को चले।

मुहम्मदशाह खुश था। राज्य बच जाने की उतनी खुशी न थी, जितनी हीरे के बच जाने की।

मगर नादिरशाह हीरा न पाकर भी दुखी न था। सबसे हँस–हँसकर बातें करता था मानो शील और विनय को साक्षात अवतार हो।

5

प्रातःकाल दिल्ली में नौबतें बज रही थी। खुशी की महफिलें सजाई जा रही थी। तीन दिन पहले यहाँ रक्त की नदी बही थी, आज आनन्द की लहरें उठ रही थी। आज नादिरशाह दिल्ली से रुख़सत हो रहा था।

अशर्फियों के लदे हुए ऊँटों की कतार शाही महल के सामने रवाना होने को तैयार खड़ी थी। बहुमूल्य वस्तुएँ गाड़ियों में लदी हुई थी। दोनो तरफ की फौजें गले मिल रही थी। अभी कल दोनो पक्ष एक–दूसरे के खून के प्यासे थे, आज भाई–भाई हो रहे हैं।

नादिरशाह तख्त पर बैठा हुआ था। मुहम्मदशाह भी उसी तख्त पर उसकी बगल में बैठे हुए थे। यहाँ भी परस्पर प्रेम का व्यवहार था। नादिरशाह ने मुस्कराकर कहा — खुदा करे, यह सुलह हमेशा कायम रहे और लोगों के दिलों से इन खूनी दिनों की याद मिट जाए।'

मुहम्मदशाह — मेरी तरफ से ऐसी कोई बात न होगी जो सुलह को खतरे में डालें। खुदा से यह दोस्ती कायम रखने के लिए हमेशा दुआ करता रहूँगा।'

नादिरशाह — सुलह की जितनी शर्तें थी, सब पूरी हो चुकी हैं। सिर्फ एक बात बाकी हैं! मेरे यहाँ दस्तूर हैं कि सुलह के वक्त अमामे बदले जाते हैं। इसके बगैर सुलह की कार्रवाई पूरी नहीं आती। आइए, हम लोग भी अपने–अपने अमामे बदल लें। लीजिए यह मेरा अमामा हाजिर हैं।

यह कहकर नादिर ने अपना अमामा उतारकर मुहम्मदशाह की तरफ बढ़ाया। बादशाह के हाथों के तोते उड़ गए। समझ गया, मुझसे दगा की गई। दोनों तरफ के शूर–सामंत सामने खड़े थे। न कुछ कहते बनता था न सुनते। बचने का कोई उपाय न था और न कोई उपाय सोच निकालने का अवसर ही। कोई जवाब न सूझा, इनकार की गुंजाइश न थी। मन मसोसकर रह गया। चुपके से अमामा उतारा, और नादिरशाह की तरफ बढ़ा दिया। हाथ काँप रहे थे, आँखों में क्रोध और विषाद के आँसू भरे हुए थे। मुख पर हल्की–सी मुस्कराहट झलक रही थी — वह मुस्कराहट, जो अश्रुपात से भी कहीं अधिक करुण और व्यर्थपूर्ण होती हैं। कदाचित अपने प्राण निकालकर देने में भी उसे इससे अधिक पीड़ा न होती।

नादिरशाह पहाडों और नदियों को लाँघता हुआ ईरान को चला जा रहा था। 77 ऊँटों और इतनी ही बैलगाड़ियों की कतार देख–देखकर उसका हृदय बाँसों उछल रहा था। वह बार–बार खुदा को धन्यवाद देता था, जिसकी असीम कृपा ने आज उसकी कीर्ति को उज्जवल बनाया था। अब वह केवल ईरान का बादशाह नहीं, हिन्दुस्तान जैसे विस्तृत प्रदेश का भी स्वामी था। पर सबसे ज्यादा खुशी उसे मुगलआजम हीरा पाने की थी, जिसे बार–बार देखकर भी उसकी आँखें तृप्त न होती। सोचता था, जिस

समय मैं दरबार में यह रत्न धारण करके आऊँगा सबकी आँखें झपक जाएँगी। लोग आश्चर्य से चकित रह जाएँगे।

उसकी सेना अन्न-जल के कठिन कष्ट भोग रही थी। सरहदों की विद्रोही सेनाएँ पीछे से उसको दिक कर रही थी। नित्य दस-बीस आदमी मर जाते या मारे जाते थे। पर नादिरशाह को ठहरने की फुरसत न थी, वह भागा-भागा चला जा रहा था।

ईरान की स्थिति बड़ी भयंकर थी। शाहजादा खुद विद्रोह शान्त करने के लिए गया हुआ था। पर विद्रोह दिन-दिन उग्र रूप धारण करता जाता था। शाही सेना कई युद्धों में परास्त हो चुकी थी। हर घड़ी यही भय होता था कि कहीं वह स्वयं शत्रुओं के बीच घिर न जाए।

पर वाह रे प्रताप! शत्रुओं ने ज्योंही सुना कि नादिरशाह ईरान आ पहुँचा, त्योंही उनके हौसले पस्त हो गए। उसका सिंहनाद सुनते ही उसके हाथ-पाँव फूल गए। इधर नादिरशाह ने तेहरान में प्रवेश किया, उधर विद्रोहियों ने शाहजादे से सुलह की प्रार्थना की। शरण में आ गए। नादिरशाह ने यह शुभ समाचार सुना तो उस निश्चय हो गया कि सब उसी हीरे की करामात हैं। यह उसी का चमत्कार हैं, जिसने शत्रुओं का सिर झुका दिया। हारी हुई बाजी जिता दी।

शाहजादा विजयी होकर घर लौटा तो प्रजा ने बड़े समारोह से उसका स्वागत और अभिवादन किया। सारा तेहरान दीपावली की ज्योति से जगमगा उठा। मंगलगान की ध्वनि से सब गली और कूचे गूँज उठे।

दरबार सजाया गया। शायरों ने कसीदे सुनाए। नादिरशाह ने गर्व से उठकर शाहजादे के ताज को मुगलआजम हीरे से अलंकृत कर दिया। चारों ओर महरबा! महरबा! की आवाजें बुलंद हुई। शहजादे के मुख की कांति हीरे के प्रकाश से दूनी चमक उठी। पितृस्नेह से हृदय पुलकित हो उठा। नादिर — वह नादिर, जिसने दिल्ली में खून की नदी बहाई थी — पुत्र प्रेम से फूला न समाता था, उसकी आँखों से गर्व और हार्दिक उल्लास के आँसू बह रहे थे।

7

सहसा बन्दूक की आवाज आई– धाँय! धाँय! दरबार हिल उठा। लोगों के कलेजे धड़क उठे। हाय! वज्रपात हो गया! हाये रे दुर्भाग्य! बन्दूक की आवाजें कानों में गूँज ही रही थी कि

शाहजादा कटे हुए पेड़ की तरह गिर पड़ा। साथ ही वह रत्नजटित मुकुट भी नादिरशाह के पैरों के पास आ गिरा।

नादिरशाह ने उन्मत्त की भाँति हाथ उठाकर कहा — कातिलों को पकड़ो!' साथ ही शोक से विह्वल होकर वह शाहजादे के प्राणहीन शरीर पर गिर पड़ा। जीवन की सारी अभिलाषाओं का अन्त हो गया।

लोग कातिल की तरफ दौड़। फिर धाँय–धाँय की आवाज आई और दोनो कातिल गिर पड़े। उन्होंने आत्महत्या कर ली। दोनों विद्रोही–पक्ष के नेता थे।

हाय रे मनुष्य के मनोरथ, तेरी भित्ति कितनी अस्थिर हैं! बालू पर की दीवार तो वर्षो में गिरती हैं पर तेरी दीवार बिना पानी–बूँद के ढह जाती हैं। आँधी में दीपक का कुछ भरोसा किया जा सकता हैं पर तेरा नहीं। तेरी अस्थिरता के आगे बालकों का घरौंदा अचल पर्वत हैं। वेश्या का प्रेम सती की प्रतिज्ञा की भाँति अटल!

नादिरशाह को लोगो ने लाश पर से उठाया। उसका करुण क्रंदन हृदयों को हिलाए देता था। सभी की आँखों से आँसू बह रहे थे। होनहार कितना प्रबल, कितना निष्ठुर, कितना निर्दय और कितना निर्मम हैं!

नादिरशाह ने हीरे की जमीन से उठा लिया! एक बार उसे विषादपूर्ण नेत्रों से देखा। फिर मुकुट को शाहजादे के सिर पर रख दिया और वजीर से कहा — यह हीरा इसी लाश के साथ दफन होगा।'

रात का समय था। तेहरान में मातम छाया हूआ था। कहीं दीपक या अग्नि का प्रकाश न था। न किसी ने दिया जलाया और न भोजन बनाया। अफीमचियों की चिलमें आज ठंड़ी हो रही थी, मगर कब्रिस्तान में मशाले रोशन थी– शाहजादे की अन्तिम क्रिया हो रही थी।

जब फातिया खतम हुआ, नादिरशाह ने अपने हाथों से मुकुट को लाश को साथ कब्र में रख दिया। राज और संगतराश हाजिर थे, उसी वक्त कब्र पर ईट–पत्थर और चूने का मजार बनने लगा।

नादिरशाह एक महीने तक एक क्षण के लिए भी वहाँ से न हटा। वहीं सोता, वहीं राज्य करता। उसके दिल में यह बात बैठ गई थी मेरा अहित इसी हीरे के कारण हुआ, यहीं मेरे सर्वनाश और अचानक वज्रपात का कारण हैं।

सत्याग्रह

हिज एक्सेलेंसी वाइसराय बनारस आ रहे थे, सरकारी कर्मचारी, छोटे से बड़े तक उनके स्वागत की तैयारियाँ कर रहे थे। इधर कांग्रेस ने शहर में हड़ताल मनाने की सूचना दे दी थी, इससे कर्मचारियों में बड़ी हलचल थी, एक ओर सड़कों पर झंड़ियाँ लगाई जा रही थी, सफाई हो रही थी, पंडाल बन रहा था, दूसरी ओर फौज और पुलिस के सिपाही संगीनें चढाये शहर की गलियों में और सड़कों पर कवायद करते फिरते थे। कर्मचारियों की सिर–तोड़ कोशिश थी कि हड़ताल न होने पाए, मगर कांग्रेसियों की धुन थी कि हड़ताल हो और जरूर हो, अगर कर्मचारियों को पशुबल का जोर हैं तो हमें नैतिक बल का भरोसा, इस बार दोनों की परीक्षा हो जाए कि मैदान किसके हाथ रहता हैं।

घोड़े पर सवार मजिस्ट्रेट साहब सुबह से शाम तक दुकानदारों को धमकियाँ देता फिरता हैं कि एक–एक को जेल भिजवा दूँगा, बाजार लुटवा दूँगा, यह करूँगा और वह करूँगा! दुकानदार हाथ बाँधकर कहते – हुजूर बादशाह हैं, विधाता हैं, जो चाहे कर सकते हैं, पर हम क्या करें? कांग्रेस वाले हमें जिंदा न छोड़ेंगे, हमारी

दुकानों पर धरने देंगे, हमारे ऊपर बाल बढ़ाएँगे, कुएँ में गिरेंगे, उपवास करेंगे, कौन जाने, दो–चार प्राण ही दे दें तो हमारे मुँह पर सदैव के लिए कालिख पुत जाएगी। हुजूर उन्हीं कांग्रेस वालो को समझाएँ तो हमारे ऊपर बड़ा अहसान करें, हड़ताल न करने से हमारी कुछ हानि थोड़े ही होगी, देश के बड़े–बड़े आदमी आवेंगे, हमारी दुकानें खुली रहेंगी तो एक के दो लेंगे, महँगे सौदे बेचेंगे, पर क्या करें, इन शैतानों से कोई बस नहीं चलता।

राय हरनन्दन साहब, राजा लालचन्द और खाँबहादुर मौलवी महमूदअली तो कर्मचारियों से भी ज्यादा बेचैन थे, मजिस्ट्रेट के साथ–साथ और अकेले भी बड़ी कोशिश करते थे, अपने मकान पर बुलाकर दुकानदारों को समझाते, अनुनय–विनय करते, आँखें दिखाते, इक्के–बग्गी वालों को धमकाते, मजदूरों की खुशामद करते, पर कांग्रेस के मुट्ठी–भर आदमियों का कुछ ऐसा आतंक छाया हुआ था कि कोई इनकी सुनता ही न था, यहाँ तक की पड़ोस की कुंजड़िन ने भी निर्भय होकर कह दिया — 'हुजूर, चाहे मार डालो पर दुकान न खुलेंगी, नाक न कटवाऊँगी।' सबसे बड़ी चिन्ता यह थी कि कहीं पंडाल बनाने वाले मजदूर, बढ़ई, लोहार वगैरह काम न छोड़ दे, नहीं तो अनर्थ ही हो जाएगा। रायसाहब ने कहा — हुजूर, दूसरे शहरों से दुकानदार बुलवाएँ और एक बाजार अलग खोले।

खाँ साहब ने फरमाया — वक्त इतना कम रह गया हैं कि दूसरा बाजार तैयार नहीं हो सकता, हुजूर कांग्रेसवालों को गिरफ्तार कर लें, या उनकी जायदाद जब्त कर लें, फिर देखिए कैसे काबू में नहीं आते!

राजा साहब बोले — पकड़-धकड़ से तो लोग और झल्लाएँगे, कांग्रेस से हुजूर कहें कि तुम हड़ताल बन्द कर दो तो सबको सरकारी नौकरी दे दी जाएगी। उसमें अधिकांश बेकार लोग पड़े हैं, यह प्रलोभन पाते ही फूल उठेंगे।

मगर मजिस्ट्रेट साहब को कोई राय न जँची, यहाँ तक की वायसराय के आने में तीन दिन और रह गए।

2

आखिर राजा साहब को एक युक्ति सूझी, क्यों न हम लोग भी नैतिक बल का प्रयोग करें? आखिर कांग्रेसवाले धर्म और नीति के नाम पर ही तो यह तूमार बाँधते हैं। हम लोग भी उन्हीं का अनुकरण करें, शेर को उसकी माँद में पछाड़ें, कोई ऐसा आदमी पैदा करना चाहिए, जो व्रत करे कि दुकानें न खुली तो मैं प्राण दे दूँगा, यह जरूरी हैं कि वह ब्राह्मण हो और ऐसा जिसको शहर के

लोग मानते हो, आदर करते हो। अन्य सहयोगियों के मन में भी यह बात पैठ गई। उछल पड़े, रायसाहब ने कहा — बस, अब पड़ाव मार लिया, अच्छा, ऐसा कौन पंडित हैं, पंडित गदाधर शर्मा?

राजा — जी नहीं, उसे कौन मानता हैं? खाली समाचार-पत्रों में लिखा करता हैं, शहर के लोग उसे क्या जाने?

रायसाहब — 'दमड़ी ओझा तो हैं इस ढंग का।

राजा — जी नहीं, कॉलेज के विद्यार्थियों के सिवा उसे और कौन जानता हैं?

रायसाहब — पंडित मोटेराम शास्त्री?

राजा — बस, बस। आपने खूब सोचा, बेशक वह हैं इस ढंग का, उसी को बुलाना चाहिए। विद्वान हैं, धर्म-कर्म से रहता हैं। चतुर भी हैं, वह अगर हाथ में आ जाए तो फिर बाजी हमारी हैं।

रायसाहब ने तुरन्त पंडित मोटेराम के घर संदेश भेजा। उस समय शास्त्रीजी पूजा पर थे, यह पैगाम सुनते ही जल्दी से पूजा समाप्त की और चले। राजा साहब ने बुलाया हैं, धन्य भाग! धर्मपत्नी से बोले — आज चंद्रमा कुछ बली मालूम होते हैं, कपड़े लाओ। देखूँ, क्यों बुलाया हैं?

स्त्री ने कहा — भोजन तैयार हैं, करते जाओ। न जाने कब लौटने का अवसर मिले।

किन्तु शास्त्रीजी ने आदमी को इतनी देर खड़ा रखना उचित न समझा। जाड़े के दिन थे, हरी बनात की अचकन पहनी, जिस पर लाल शंजाफ लगी हुई थी। गले में एक जरी की दुपट्टा डाला। फिर सिर पर बनारसी साफा बाँधा। लाल चौड़े किनारे की रेशमी धोती पहनी और खड़ाऊँ पर चले। उनके मुख से ब्रह्मतेज टपकता था। दूर से ही मालूम होता था कि कोई महात्मा आ रहे हैं। रास्ते में जो मिलता, सिर झुकता। कितने ही दुकानदारों ने खड़े होकर पैलगी की। आज काशी की नाम इन्हीं की बदौलत चल रहा हैं नहीं तो और कौन रह गया हैं। कितना नम्र स्वभाव हैं। बालकों से हँस कर बातें करते हैं। इस ठाट से पंडितजी राजा साहब के मकान पर पहुँचे। तीनों मित्रों ने खड़े होकर उनका सम्मान किया। खाँ बहादुर बोले — कहिए पंडितजी, मिजाज तो अच्छे हैं। वल्लाह, आप नुमाइश में रखने के काबिल आदमी हैं। आपका वजन तो दस मन से कम न होगा।

रायसाहब — एक मन इल्म के लिए दस मन अक्ल चाहिए, उसी कायदे से एक मन अक्ल के लिए दस मन का जिस्म जरूरी हैं। नहीं तो उसका बोझ कौन उठाए?

राजासाहब — आप लोग इसका मतलब नहीं समझ सकते, बुद्धि एक प्रकार नजला हैं, दिमाग में नहीं समाती, जिस्म में आ जाती हैं।

खाँ साहब — मैंने तो बुजुर्गों की जबानी सुना हैं कि मोटे आदमी अक्ल के दुश्मन होते हैं।

रायसाहब — आपका हिसाब कमजोर था, वरना आपकी समझ में इतनी बात जरूर आ जाती कि जब अक्ल और जिस्म में 1 और 10 की निस्बत हैं तो जितना मोटा आदमी होगा, उतना ही उसकी अक्ल का वजन भी ज्यादा होगा।

राजासाहब — इससे यह साबित हुआ कि जितना मोटा आदमी, उतनी मोटी उसकी अक्ल।

मोटेराम — जब मोटी अक्ल की बदौलत राज–दरबार में पूछ होती हैं तो मुझे पतली अक्ल लेकर क्या करना हैं!

हास–परिहास के बाद राजा साहब ने वर्तमान समस्या पंडितजी के सामने उपस्थित की और उसके निवारण का जो उपाय सोचा था, वह भी प्रकट कर बोले — बस, यह समझ लीजिए कि इस साल आपका भविष्य पूर्णतया अपने हाथों में हैं। शायद किसी आदमी को अपने भाग्य–निर्णय को ऐसा महत्त्वपूर्ण अवसर न मिला होगा, हड़ताल न हुई तो और को कुछ नहीं कह सकते, आपको

जीवन–भर किसी के दरवाजे जाने की जरूरत न होगी। बस, कोई व्रत ठानिए कि शहरवाले थर्रा उठें। कांग्रेस वालों ने धर्म की आड़ लेकर इतनी शक्ति बढ़ाई हैं। बस, ऐसी कोई युक्ति निकालिए कि जनता के धार्मिक भावों को चोट पहुँचे।

मोटेराम ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया — यह तो कोई ऐसा कठिन काम नहीं हैं। मैं तो ऐसे–ऐसे अनुष्ठान कर सकता हूँ कि आकाश से जल की वर्षा कर दूँ। मरी के प्रकोप को शान्त कर दूँ, अन्न का भाव घटा–बढ़ा दूँ। कांग्रेस वालो को परास्त कर देना तो कोई बड़ी बात नहीं। अंग्रेजी पढ़े–लिखे महानुभाव समझते हैं कि जो काम हम कर सकते हैं, वह कोई नहीं कर सकता पर गुप्त विद्याओं का उन्हें ज्ञान ही नहीं।

खाँ साहब — तब तो जनाब, यह कहना चाहिए कि आप दूसरे खुदा हैं। हमें क्या मालूम था कि आप में कुदरत हैं, नहीं तो इतने दिनों तक क्यों परेशान होते?

मोटेराम — साहब, मैं गुप्त–धन का पता लगा सकता हूँ। पितरों को बुला सकता हूँ। केवल गुण–ग्राहक चाहिए। संसार में गुणियों का अभाव नहीं, गुणज्ञों का ही अभाव हैं– गुन ना हिरानो गुन–गाहक हिरानो हैं।

राजा — भला इस अनुष्ठान के लिए आपको क्या भेंट करना होगा?

मोटेराम — जो कुछ आपकी श्रद्धा हो।

राजा — कुछ बतला सकते हैं कि यह कौन–सा अनुष्ठान होगा?

मोटेराम — अनशन व्रत के साथ मंत्रों का जप होगा। सारे शहर में हलचल न मचा दूँ तो मोटेराम नाम नहीं!

राजा — तो फिर कब से?

मोटेराम — आज ही हो सकता हैं। हाँ, पहले देवताओं के आवाहन के निमित्त थोड़े से रुपए दिला दीजिए।

रुपए की कमी ही क्या थी। पंडितजी को रुपए मिल गए और वह खुश–खुश घर आए। धर्मपत्नी से सारा समाचार कहा। उसने चिंतित होकर कहा — तुमने नाहक यह रोग अपने सिर लिया! भूख न बरदाश्त हुई तो? सारे शहर में भद्द हो जाएगी। लोग हँसी उड़ाएँगे, रुपए लौटा दो।

मोटेराम ने आश्वासन देते हुए कहा — भूख कैसे न बरदाश्त होगी? मैं ऐसा मूर्ख थोड़े ही हूँ कि यों ही जा बैठूँगा। पहले मेरे भोजन का प्रबन्ध करो — अमृतियाँ, लड्डू, रसगुल्ले मँगाओ। पेट–भर भोजन कर लूँ, फिर आध सेर मलाई खाऊँगा, फिर

देखूँगा, भूख क्योंकर पास फटकती हैं। तीन दिन तक तो साँस ही न ली जाएगी, भूख की कौन चलावे। इतने में तो सारे शहर में खलबली मच जाएगी। भाग्य-सूर्य उदय हुआ हैं, इस समय आगा-पीछा करने से पछताना पड़ेगा। बाजार न बन्द हुआ तो समझ लो मालामाल हो जाऊँगा। नहीं तो यहाँ गाँठ से क्या जाता हैं! सौ रुपए तो हाथ लग ही गए।

इधर भोजन का प्रबन्ध हुआ उधर पंडित मोटेराम ने डौंडी पिटवा दी कि सन्ध्या-समय टाउन-हॉल मैदान में पंडित मोटेराम देश की राजनीतिक समस्या पर व्याख्यान देंगे। लोग अवश्य आएँ। पंडितजी सदैव राजनीतिक विषयों से अलग रहते थे, आज इस विषय में बोलेंगे, सुनना चाहिए। लोगों की उत्सुकता हुई। पंडितजी का शहर में बड़ा मान था, नियत समय पर कई हजार आदमियों की भीड़ लग गई।

पंडितजी घर से अच्छी तरह तैयार होकर पहुँचे। पेट इतना भरा हुआ था कि चलना कठिन था। ज्यों ही यह वहाँ पहुँचे, दर्शकों ने खड़े होकर इन्हें साष्टांग दंडवत-प्रमाण दिया।

मोटेराम बोले — नगरवासियों, व्यापारियों, सेठों और महाजनों! मैंने सुना हैं तुम लोगों ने कांग्रेस के कहने में आकर बड़े लाट साहब के शुभागमन के अवसर पर हड़ताल करने का निश्चय किया हैं।

यह कितनी बड़ी कृतघ्नता हैं? वह चाहे तो आज तुम लोगों को तोप के मुँह पर उड़वा दे, सारे शहर को खुदवा डाले। राजा हैं, हँसी-ठट्ठा नहीं। वह जिस तरह देते जाते हैं, तुम्हारी दीनता पर दया करते हैं और तुम गउओं की तरह हत्या के बल खेत चरने को तैयार हो! लाट साहब चाहें तो आज रेल बन्द कर दें, डाक बन्द कर दें। माल का आना-जाना बन्द कर दें, तब बताओं, क्या करोंगे? तुम उनसे भागकर कहाँ जा सकते हो? हैं कोई ठिकाना! इसलिए जब इस देश में और उन्हीं के अधीन रहना हैं तो इतना उपद्रव क्यों मचाते हो? याद रखो, तुम्हारी जान उनकी मुट्ठी में हैं! ताऊन के कीड़े फैला दें तो सारे शहर में हाहाकार मच जाए। तुम झाड़ू से आँधी को रोकने चले हो? खबरदार जो किसी ने बाजार बन्द किया, नहीं तो कहे देता हूँ, यहीं अन्न-जल बिना प्राण दे दूँगा।

एक आदमी ने शंका की — महाराज, आपके प्राण निकलते-निकलते महीने-भर से कम न लगेगा, तीन दिनों में क्या होगा?

मोटेराम ने गरजकर कहा — प्राण शरीर में नहीं रहता, ब्रह्मांड में रहता हैं। मैं चाहूँ तो योगबल से अभी त्याग कर सकता हूँ। मैंने चेतावनी दे दी। अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मेरा कहना मानोगे तो तुम्हारा होगा, न मानोगे तो हत्या लगेगी।

संसार में कहीं मुँह दिखला न सकोगे। बस, यह लो, मैं यहीं आसन जमाता हूँ।

3

शहर में यह समाचार फैला तो लोगों के होश उड़ गए। अधिकारियों की इस नई चाल ने उन्हें हतबुद्धि-सा कर दिया। कांग्रेस के कर्मचारी तो अब भी कहते थे कि यह सब पाखंड हैं। राजभक्तों ने पंडित को कुछ दे-दिलाकर यह स्वाँग खड़ा किया हैं। जब और कोई बस न चला, फौज, पुलिस, कानून सभी युक्तियों से हार गए तो यह नई माया रची हैं। यह और कुछ नहीं, राजनीति का दिवाला हैं, नहीं तो पंडितजी कहाँ ऐसे देश-सेवक थे जो देश की दशा से दुखी होकर व्रत ठानते! इन्हें भूखा मरने दो, दो दिन में बोल लाएँगे। इस नई चाल की जड़ अभी से काट देनी चाहिए! कहीं यह चाल सफल हो गई तो समझ लो, अधिकारियों के हाथ एक नया अस्त्र आ जाएगा और सदैव इसका प्रयोग करेंगे। जनता इतनी समझदार तो हैं नहीं कि इन रहस्यों को समझे, गीदड़-भभकी में आ जाएगी।

लेकिन नगर के बनिये-महाजन, जो प्रायः धर्मभीरु हैं, ऐसे घबरा गए कि उन पर इन बातों का कुछ असर ही न होता था। वे कहते थे — साहब, आप लोगों के कहने से सरकार से बुरे बने, नुकसान उठाने के लिए तैयार हुए, रोजगार छोड़ा, कितनों के दिवाले हो गए। अफसरों को मुँह दिखाने लायक नहीं रहे। पहले जाते थे, अधिकारी लोग 'आइए-आइए सेठजी' कहकर सम्मान करते थे। अब रेलगाड़ियों में धक्के खाते हैं, पर सुनता नहीं। आमदनी चाहे कुछ हो न हो, बहियों की तौल देखकर कर (टैक्स) बढ़ा दिया जाता हैं। यह सब सहा, और सहेंगे, लेकिन धर्म के मामले में हम आप लोगों का नेतृत्व नहीं स्वीकार कर सकते। जब एक विद्वान, कुलीन, धर्मनिष्ठ ब्राह्मण हमारे ऊपर अन्न-जल का त्याग कर रहा हैं, तब हम क्योंकर भोजन करके टाँगे फैलाकर सोवें? कहीं मर गया तो भगवान के सामने क्या जवाब देंगे?

सारांश यह हैं कि कांग्रेस वालों की एक न चली। व्यापारियों का एक डेपुटेशन 9 बजे रात पंडितजी की सेवा में उपस्थित हुआ। पंडितजी ने आज भोजन तो खूब डटकर किया था, लेकिन डटकर भोजन करना उनके लिए कोई असाधारण बात न थी। महीने में प्रायः 20 दिन वह अवश्य ही न्योता पाते थे और निमंत्रण में डटकर भोजन करना एक स्वाभाविक बात हैं। अपने सहभोजियों

की देखा–देखी, लाल–डाँट की धुन में यह गृह–स्वामी के सविनय आग्रह से और सबसे अधिक बढ़कर पदार्थों की उत्कृष्टता के कारण, भोजन मात्रा से अधिक हो ही जाता हैं। पंडितजी की जठराग्नि ऐसी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होती रहती थी। अतएव भोजन का समय आ जाने से उनकी नीयत कुछ डावाँडोल हो रही थी। यह बात नहीं कि वह भूख से व्याकुल थे, लेकिन एक प्रकार की भोजन की चाह होने लगती हैं। शास्त्रीजी की इस समय यही दशा हो रही थी। जी चाहता था, किसी खोंचेवाले को पुकारकर कुछ ले लेते। किन्तु अधिकारियों ने उनकी शरीर–रक्षा के लिए वहाँ कई सिपाहियों को तैनात कर दिया था। वे सब हटने का नाम न लेते थे। पंडितजी की विशाल बुद्धि इस समय यहीं समस्या हल कर रही थी कि इन यमदूतों को कैसे टालूँ? खामख्वाह इन पाजियों को यहाँ खड़ा कर दिया! मैं कोई कैदी तो हूँ नहीं कि भाग जाऊँगा।

अधिकारियों ने शायद यह व्यवस्था इसलिए कर रखी थी कांग्रेस वाले जबरदस्ती पंडितजी को वहाँ से भगाने की चेष्टा न कर सके। कौन जाने, वे क्या चाल चले। ऐसे अनुचित और अपमानजनक व्यवहारों से पंडितजी की रक्षा करना अधिकारियों का कर्तत्व था।

वह अभी इस चिन्ता में थे कि व्यापारियों का डेपुटेशन आ पहुँचा। पंडितजी कुहनियों कर बल लेटे हुए थे। सम्भल कर बैठे। नेताओं ने उनके चरण छूकर कहा — महाराज, हमारे ऊपर आपने क्यों यह कोप किया हैं? आपकी जो आज्ञा हो, वह हम शिरोधार्य करें। आप उठिए, अन्न-जल ग्रहण कीजिए। हमें नहीं मालूम था कि आप सचमुच यह व्रत ठानने वाले हैं। नहीं तो पहले ही आपसे विनती करते। आप कृपा कीजिए, दस बजने का समय हैं। हम आपका वचन कभी न टालेंगा।

मोटेराम — ये कांग्रेस वाले तुम्हें मटियामेट करके छोड़ेंगे! आप तो डूबते ही हैं, तुम्हें भी अपने साथ ले डूबेंगे! बाजार बन्द रहेगा तो इससे तुम्हारा ही टोटा होगा, सरकार को क्या? तुम नौकरी छोड़ दोगे, आप भूखों मरोगे, सरकार को क्या? तुम जेल जाओगे, आप चक्की पीसोगे, सरकार को क्या? न जाने इन सबको क्या सनक सवार हो गई हैं कि अपनी नाक काटकर दूसरों की असगुन मानते हैं। तुम इन कुपंथियों के कहने में न आओ। क्यों, दुकानें खुली रखोंगे?

सेठ — महाराज, जब तक शहर-भर के आदमियों में पंचायत न हो जाए, तब तक हम इसका जीमा कैसे ले सकते हैं। कांग्रेस वालों ने कही लूट मचवा दी तो कौन हमारी मदद करेगा?

मोटेराम — तो फिर पंचायत करके आना।

डेपुटेशन जब निराश होकर लौटने लगा तो पंडितजी ने कहा — किसी के पास सुंघनी तो नहीं हैं?

एक महाशय ने डिबिया निकालकर दे दी।

4

लोगों के जाने के बाद मोटेराम ने पुलिस वालों से पूछा — तुम यहाँ क्यों खड़े हो?

सिपाहियों ने कहा — साहब का हुक्म हैं, क्या करें?

मोटेराम — यहाँ से चले जाओ?

सिपाही — आपके कहने से चले जाएँ? कल नौकरी छूट जाएगी को आप खाने को देंगे?

मोटेराम — हम कहते हैं, चल जाओ, नहीं तो हम ही यहाँ से चले जाएँगे। हम कोई कैदी हैं, जो तुम घेरे खड़े हो?'

सिपाही — चले क्या जाइएगा, मजाल हैं।

मोटेराम — मजाल क्यों हैं बे! कोई जुर्म किया हैं?

सिपाही — अच्छा, जाओ तो देखें?

पंडितजी ब्रह्म–तेज में आकर उठे और एक सिपाही को इतनी जोर से धक्का दिया कि वह कई कदम पर गिरा। दूसरे सिपाहियों की हिम्मत छूट गई। पंडितजी को उन सब ने थुल–थुल समझ लिया था। पराक्रम देखा तो चुपके से सटक गए।

मोटेराम अब लगे इधर–उधर नजरें दौड़ाने कि कोई खोंचे वाला नजर आ जाए। उससे कुछ लें, किन्तु ध्यान आ गया, कहीं उसने किसी से कह दिया तो लोग तालियाँ बजाने लगेंगे। नहीं, ऐसी चतुराई से काम करना चाहिए कि किसी को कानों कान खबर न हो। ऐसे ही संकटों में तो बुद्धिबल का परिचय मिलता हैं, एक क्षण में उन्होंने इस कठिन प्रश्न को हल कर लिया।

दैवयोग से उसी समय एक खोंचेवाला जाता दिखाई दिया। 11 बज चुके थे, चारों तरफ सन्नाटा छा गया था। पंडितजी ने बुलाया — खोंचेवाले, ओ खोचेवाले!

खोंचेवाला — कहिए क्या दूँ? भूख लग आई न? अन्न–जल छोड़ना साधुओं का काम हैं, हमारा–आपका नहीं।

मोटेराम — अबे क्या कहता हैं? यहाँ क्या किसी साधु से कम हैं? चाहें तो महीनों पड़े रहे और भूख–प्यास न लगे। तुझे तो केवल

इसलिए बुलाया हैं कि जरा अपनी कुप्पी मुझे दें, देखूँ तो वहाँ क्या रेंग रहा हैं। मुझे भय होता हैं कि साँप न हो।

खोंचेवाले ने कुप्पी उतार दे दी। पंडितजी उसे लेकर इधर-उधर जमीन पर कुछ खोजने लगे। इतने में कुप्पी उनके हाथ से छूटकर गिर पड़ी और बुझ गई। सारा तेल बह गया। पंडितजी ने उसमें एक ठोकर और लगाई कि बचा-खुचा तेल भी बह जाए।

खोंचेवाला — (कुप्पी को हिलाकर) महाराज, इसमें तो जरा भी तेल नहीं बचा। अब तक चार पैसे का सौदा बचता हैं, आपने यह खटराग बढा दिया।

मोटेराम — भैया, हाथ ही तो हैं। छूट गिरी तो अब क्या हाथ काट डालूँ? यह लो पैसे, जाकर कहीं से तेल भरा लो।'

खोंचेवाला — (पैसे लेकर) तो अब तेल भरवाकर मैं यहाँ थोड़े ही आऊँगा।

मोटेराम — खोंचा रखे जाओ, लपककर थोड़ा तेल ले लो, नहीं मुझे कोई साँप काट लेगा तो तुम्हीं पर हत्या पड़ेगी। कोई जानवर जरूर हैं। देखो, वह रेंगता हैं, गायब हो गया। दौड़ जाओ पट्ठे, तेल लेते आओ। मैं तुम्हारा खोंचा देखता रहूँगा। डरते हो तो रुपए-पैसे लेते जाओ।

खोंचेवाला बड़े धर्म–संकट में पड़ा। खोंचे से पैसे निकालता हैं तो भय हैं कि पंडितजी अपने दिल में बुरा न मानें। सोचे मुझे बेईमान समझ रहा हैं। छोड़कर जाता हैं तो कौन जाने, इनकी नीयत क्या हो। किसी की नीयत सदा ठीक नहीं रहती। अन्त को उसने यही निश्चय किया कि खोंचा छोड़ दूँ, जो कुछ तकदीर में होगा, वह होगा। वह उधर बाजार की तरफ चला, इधर पंडितजी ने खोंचे पर निगाह दौड़ाई तो बहुत निराश हुए। मिठाई बहुत कम बच रही थी। पाँच–छः चीजें थी, मगर किसी में से दो अदद से ज्यादा निकालने की गुंजाइश न थी। भंडा फूट जाने का खटका था। पंडितजी ने सोचा — इतने से क्या होगा? केवल क्षुधा और प्रबल हो जाएगी। शेर के मुँह खून लग जाएगा? गुनाह–बेलज्जत हैं, अपनी जगह पर जा बैठे। लेकिन दम–भर के बाद फिर प्यास ने जोर किया, सोचे–कुछ तो ढारस हो ही जाएगा। आहार कितना ही सूक्ष्म हो, फिर भी आहार ही हैं। उठे, मिठाई निकाली, पर पहला ही लड्डू मुँह में रखा था कि देखा, खोंचेवाला तेल की कुप्पी जलाए कदम बढ़ाता चला आ रहा हैं। उसके पहुँचने के पहले मिठाई का समाप्त हो जाना अनिवार्य था। एक साथ दो चीजें मुँह में रखी। अभी चुबला ही रहे थे कि वह निशाचर दस कदम और आगे बढ़ आया। एक साथ चार चींजें मुँह में डाली और अधकुचली ही निगल गए। अभी 6 अदद और

थी और खोंचे वाला फाटक तक आ चुका था। सारी मिठाई मुँह में डाल ली, अब न चबाते बनता हैं, न उगलते। वह शैतान मोटरकार की तरह कुप्पी चमकाता हुआ चला ही आता था, जब बिल्कुल सामने आ गया तो पंडित ने जल्दी से सारी मिठाई निगल ली। आखिर आदमी ही थे, कोई मगर तो थे नहीं। आँखों में पानी भर आया, गला फँस गया। शरीर में रोमाँच हो आया। जोर–जोर से खाँसने लगे। खोंचेवाले ने तेल की कुप्पी बढ़ाते हुए कहा यह लीजिए दे लीजिए। चले तो हैं आप उपवास करने पर प्राणों का इतना डर हैं. आपको क्या चिन्ता, प्राण भी निकल जाएँगे तो सरकार बाल–बच्चों की परवस्ती करेगी।

पंडितजी को क्रोध तो ऐसा आया कि इस पाजी को खोटी–खरी सुनाऊँ लेकिन गले से आवाज न निकली। कुप्पी चुपके से ली और झूठ–मूठ इधर–उधर देखकर लौटा दी।

खोंचेवाला — आपको क्या पड़ी जो चले सरकार की पच्छ करने? कहीं कल दिन–भर पंचायत होगी तो रात कुछ तय होगा, तब तक तो आपकी आँखों में तितलियाँ उड़ने लगेंगी।

यह कह कर वह चला गया और पंडितजी भी थोड़ी देर तक खाँसने के बाद सो रहे।

5

दूसरे दिन सवेरे ही से व्यापारियों ने मिसकौट करनी शुरू की। उधर कांग्रेस वालों में भी हलचल मची। अमन–सभा के अधिकारियों ने भी कान खड़े किए। यह तो इन भोले–भाले बनियों को धमकाने का अच्छी तरकीब हाथ आई। पंडित–समाज ने अलग एक सभा की और उसमे यह निश्चय किया कि पंडित मोटेराम को राजनीतिक मामलों में पड़ने का कोई अधिकार नहीं। हमारा राजनीति से क्या सम्बन्ध? गरज सारा दिन इसी वाद–विवाद में कट गया और किसी ने पंडितजी की खबर न ली। लोग खुल्लमखुल्ला कहते थे कि पंडितजी ने एक हजार रुपए सरकार से लेकर यह अनुष्ठान किया हैं। बेचारे पंडितजी ने रात तो लोट–पोटकर कर काटी, पर उठे तो शरीर मुरदा–सा जान पड़ता था। खड़े होते थे, आँखें तिलमिलाने लगती थी, सिर में चक्कर आ जाता था। पेट में जैसे कोई बैठा हुआ कुरेद रहा हो। सड़क की तरफ आँखें लगी हुई थी कि लोग मनाते तो नहीं आ रहे हैं। सन्ध्योपासना का समय इसी प्रतीक्षा में गया। इस समय पूजन के पश्चात नित्य नाश्ता किया करते थे। आज अभी मुँह में पानी भी न गया। न जाने वह शुभ घड़ी कब आएगी? फिर पंडिताइन पर बड़ा क्रोध आने लगा। आप तो रात को भर–पेट

खाकर सोई होगी। इस वक्त भी जलपान कर ही चुकी होगी। पर इधर भूलकर भी न झाँका कि मरे या जीते हैं। कुछ बात करने के बहाने से क्या थोड़ा-सा मोहनभोग बनाकर न ला सकती थी? पर किसे इतनी चिन्ता हैं? रुपए लेकर रख लिए, फिर जो कुछ मिलेगा, वह भी रख लेंगी, मुझे उल्लू बनाया।

किस्सा-कोताह पंडितजी ने दिन-भर इंतजार किया, पर कोई मनाने वाला नजर न आया। लोगों के दिल में जो यह सन्देह पैदा हुआ था कि पंडितजी ने कुछ ले-देकर वह स्वांग रचा हैं, स्वार्थ के वशीभूत होकर पाखंड खड़ा किया हैं। वही उनको मनाने में बाधक होता था।

6

रात के नौ बज गए। सेठ भोंदूमल ने जो व्यापारी-समाज के नेता थे, निश्चयात्मक भाव से कहा — मान लिया, पंडितजी ने स्वार्थवश ही यह अनुष्ठान किया हैं, पर इससे वह कष्ट तो कम नहीं हो सकता, जो अन्न-जल के बिना प्राणी-मात्र को होता हैं। यह धर्म-विरुद्ध हैं कि एक ब्राह्मण हमारे ऊपर दाना-पानी त्याग दे और हम पेट भर-भर कर चैन की नींद सोवें। अगर उन्होंने धर्म

के विरुद्ध आचरण किया हैं तो उसका दंड उन्हें भोगना पड़ेगा। हम क्यों अपने कर्त्तव्य से मुँह फेरें?

कांग्रेस के मंत्री ने दबी हुई आवाज से कहा — मुझे तो जो कहना था, वह मैं कह चुका। आप लोग समाज के अगुआ हैं, जो फैसला कीजिए, हमें मंजूर हैं। चलिए मैं अभी आपके साथ चलूँगा। धर्म का कुछ अंश मुझे भी मिल जाएगा। पर एक विनती सुन लीजिए। आप पहले मुझे वहाँ जाने दीजिए। मैं एकान्त में दस मिनट बातें करना चाहता हूँ। आप लोग फाटक पर खड़े रहिएगा। जब मैं वहाँ से लौट आऊँ तो फिर जाइएगा।

इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती थी? प्रार्थना स्वीकृत हो गई।

मंत्रीजी पुलिस–विभाग में बहुत दिनों तक रह चुके थे। मानव–चरित्र की कमजोरियों को जानते थे। वह सीधे बाजार गए और 5 रुपए की मिठाई ली। उसमें मात्रा से अधिक सुगंध डालने का प्रयत्न किया। चाँदी का वरक लगवाये और एक दोने में लिए रूठे हुए ब्रह्मदेव की पूजा करने लगे। एक झंझर में ठंडा पानी लिया और उसमें केवड़े का जल मिलाया। दोनों ही चीजों से खुशबू की लपटें उड़ रही थी। सुगन्ध में इतनी उत्तेजक

शक्ति हैं, कौन नहीं जानता। इससे तो बिना भूख के भूख लग जाती हैं, भूखे आदमी की तो बात ही क्या?

पंडितजी इस समय भूमि पर अचेत पड़े हुए थे। रात को कुछ नहीं मिला। दस-पाँच छोटी-छोटी मिठाइयों का क्या जिक्र! दोपहर को कुछ नहीं मिला और इस वक्त भी भोजन की बेला टल गई थी। भूख में अब आशा की व्याकुलता नहीं, निराशा की शिथिलता थी। सारे अंग ढीले पड़ गए थे। यहाँ तक कि आँखें भी न खुलती थी। उन्हें खोलने की बार-बार चेष्टा करते, पर वे आप-ही-आप बन्द हो जाती। ओठ सूख गए थे जिन्दगी का कोई चिह्न था तो बस, उनका धीरे-धीरे कराहना। ऐसा संकट उनके ऊपर कभी न पड़ा थी। अजीर्ण की शिकायत तो उन्हें महीने में दो-चार बार हो जाती थी, जिसे वह हड़ आदि की फंकियों से शान्त कर लिया करते थे। पर अजीर्णावस्था में ऐसा कभी न हुआ था कि उन्होंने भोजन छोड़ दिया हो।

नगर-निवासियों को, अमन-सभा को, सरकार को, ईश्वर को, कांग्रेस को और धर्म-पत्नी को जी-भरकर कोस चुके थे। किसी से कोई आशा न थी। अब इतनी शक्ति भी न रही कि स्वयं खड़े होकर बाजार जा सकें। निश्चय हो गया था कि आज रात को अवश्य प्राण-पखेरू उड़ जायँगें। जीवन-सूत्र कोई रस्सी तो हैं ही नहीं कि चाहे जितने झटके दो, टूटने का नाम न ले!

मंत्रीजी ने पुकारा — शास्त्रीजी!

मोटेराम ने पड़े-पड़े आँखें दी। उनमें ऐसी करुण वेदना भरी हुई थी, जैसे किसी बालक के हाथ में कौआ मिठाई छीन ले गया हो।

मंत्रीजी ने दोने की मिठाई सामने रख दी और झंझर पर कुल्हड़ औंधा कर दिया। इस काम से सुचित्त होकर बोले — यहाँ कब तक पड़े रहिएगा?

सुगंध ने पंडितजी की इंद्रियों पर संजीवनी का काम किया। पंडितजी उठ बैठे और बोले — देखो, कब तक निश्चय होता हैं।

मंत्री — यहाँ कुछ निश्चय-विश्चय न होगा। आज दिन-भर पंचायत हुई थी। कुछ तय न हुआ, कल कहीं शाम को लाट साहब आएँगे, तब तक तो आपकी न जाने क्या दशा होगी? आपका चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया हैं!

मोटेराम — यहीं मरना बदा होगा तो कौन टाल सकता हैं? इस दोने में कलाकन्द हैं क्या?

मंत्री — हाँ, तरह-तरह की मिठाइयाँ हैं। एक नातेदार के यहाँ बैना भेजने के लिए विशेष रीति से बनवाई हैं।

मोटेराम — जभी इनमें इतनी सुगंध हैं, जरा दोना खोलिए तो?

मंत्रीजी ने मुस्कराकर दोना खोल दिया और पंडितजी नेत्रों से मिठाइयाँ खाने लगे। अंधा आँखें पाकर भी संसार को ऐसे तृष्णापूर्ण नेत्रों से न देखेगा। मुँह में पानी भर आया। मंत्रीजी ने कहा — आपका व्रत न होता तो दो–चार मिठाइयाँ आपको चखाता। 5 रुपए सेर के दाम दिए हैं।

मोटेराम — तब तो बहुत ही श्रेष्ठ होंगी। मैं बहुत दिन हुए कलाकंद नहीं खाया।

मंत्री — आपने भी तो बैठे–बैठाए झंझट मोल ले लिया। प्राण ही न रहेंगे तो धन किस काम आएगा?

मोटेराम — क्या करूँ, फँस गया। मैं इतनी मिठाइयों का जलपान कर जाता था। (हाथ से मिठाइयों को टटोलकर) भोला की दुकान की होंगी?

मंत्री — चखिए दो–चार?

मोटेराम — क्या चखूँ? धर्म–संकट में पड़ा हूँ।

मंत्री — अजी चखिए भी! इस समय जो आनन्द प्राप्त होगा, वह लाख रुपए से भी नहीं मिल सकता। कोई किसी से कहने जाता हैं क्या?'

मोटेराम — मुझे भय किसका हैं, मैं यहाँ दाना–पानी बिना मर रहा हूँ और किसी को परवा ही नहीं तो फिर मुझे क्या डर? लाओ, इधर दोना बढ़ाओ। जाओ, सबसे कह देना शास्त्रीजी ने व्रत तोड़ दिया। भाड़ मे जाए बाजार और व्यापार! यहाँ किसी की चिन्ता नही, जब धर्म नहीं रहा तो मैंने ही धर्म का बीड़ा थोड़े ही उठाया हैं!

यह कहकर पंडितजी ने दोना अपनी तरफ खींच और लगे बढ़–बढ़कर हाथ मारने। यहाँ तक कि एक पल–भर में आधा दोना समाप्त हो गया। सेठ लोग आकर फाटक पर खड़े थे। मंत्री जी ने जाकर कहा — जरा चलकर तमाशा देखिए। आप लोगों को न बाजार खोलना पड़ेगा, न खुशामद करनी पड़ेगी। मैंने सारी समस्याएँ हल कर दीं। यह कांग्रेस का प्रताप हैं।

चाँदनी छिटकी हुई थी। लोगों ने आकर देखा। पंडितजी मिठाई ठिकाने लगाने में वैसे ही तन्मय हो रहे हैं, जैसे कोई महात्मा समाधि में मग्न हो।

भोंदूमल ने कहा — पंडितजी के चरण छूता हूँ। हम लोग तो आ ही रहे थे। आपने क्यों जल्दी की? ऐसी जुगत बताते कि आपकी प्रतिज्ञा भी न टूटती और कार्य भी सिद्ध हो जाता!

मोटेराम — मेरा काम सिद्ध हो गया। यह अलौकिक आनन्द हैं, जो धन के ढेरों से नहीं प्राप्त हो सकता। अगर कुछ श्रद्धा हो तो इसी दुकान की इतनी ही मिठाई और मँगवा दो। [*]

[*] हम यह कहना भूल गये कि मन्त्रीजी को मिठाई लेकर मैदान में आते समय पुलिस के सिपाही के 1) पैसे देने पड़े थे। यह नियम-विरुद्ध था; लेकिन मन्त्रीजी ने इस बात पर अड़ना उचित न समझा।

भाड़े का टट्टू

आगरा कॉलेज के मैदान में संध्या–समय दो युवक हाथ–से–हाथ मिलाए टहल रहे थे। एक का नाम यशवंत था, दूसरे का रमेश। यशवंत डीलडौल का ऊँचा और बलिष्ठ था, उसके मुख पर संयम और स्वास्थ्य की कान्ति झलकती थी। रमेश छोटे कद और इकहरे बदन का, तेजहीन और दुर्बल आदमी था। दोनों में किसी विषय पर बहस हो रही थी।

यशवंत ने कहा — मैं आत्मा के आगे धन का कुछ मूल्य नहीं समझता।

रमेश बोला — 'बड़ी खुशी की बात हैं।

यशवंत — हाँ देख लेना, तुम ताना मार रहे हो, लेकिन मैं दिखला दूँगा कि धन को कितना तुच्छ समझता हूँ।

रमेश — खैर, दिखला देना, मैं तो धन को तुच्छ नहीं समझता, धन के लिए 15 वर्षो से किताब चाट रहा हूँ। धन के लिए माँ–बाप, भाई–बन्द सबसे अलग यहाँ पड़ा हूँ, न जाने अभी कितनी सलामियाँ देनी पड़ेगी, कितनी खुशामद करनी पड़ेगी, क्या इसमें

आत्मा का पतन न होगा? मैं तो इतने ऊँचे आदर्श का पालन नहीं कर सकता, यहाँ तो अगर किसी मुकदमें में अच्छी रिश्वत पा जाएँ तो शायद छोड़ न सकें, क्या तुम छोड़ दोगे?

यशवंत — मैं उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखूँगा और मुझे विश्वास हैं कि तुम जितने नीच बनते हो, उतने नहीं हो।

रमेश — मैं उससे कहीं नीच हूँ, जितना कहता हूँ।

यशवंत — मुझे तो यकीन नहीं आता कि स्वार्थ के लिए तुम किसी को नुकसान पहुँचा सकोगे?

रमेश — भाई, संसार में आदर्श तक निर्वाह केवल सन्यासी ही कर सकता हैं, मैं तो नहीं कर सकता, मैं तो समझता हूँ कि अगर तुम्हें धक्का देकर तुमसे बाजी जीत सकूँ तो तुम्हें जरूर गिरा दूँगा, और बुरा न मानो तो कह दूँ, तुम भी मुझे जरूर गिरा दोंगे, स्वार्थ का त्याग करना कठिन हैं।

यशवंत — तो मैं कहूँगा कि तुम भाड़े के टट्टू हो।

रमेश — और मैं कहूँगा कि तुम काठ के उल्लू हो।

यशवंत और रमेश साथ-साथ स्कूल में दाखिल हुए और साथ-साथ उपाधियाँ लेकर कॉलेज से निकले। यशवंत कुछ मंदबुद्धि, पर बला का मेहनती था, जिस काम को हाथ में लेता, उससे चिपट जाता और उसे पूरा करके ही छोड़ता। रमेश तेज था, पर आलसी, घंटे-भर भी जमकर बैठना मुश्किल था, एम. ए. तक तो वह आगे रहा और यशवंत पीछे, मेहनत बुद्धि-बल से परास्त होती रही, लेकिन सिविल-सर्विस में पाँसा पलट गया। यशवंत सब धंधे छोड़कर किताबों पर पिल पड़ा, घूमना-फिरना, सैर-सपाटा, सरकस-थियटर, यार दोस्त, सबसे मुँह मोड़कर अपनी एकांत कुटीर में जा बैठा। रमेश दोस्तों के साथ गप-शप उड़ाता, क्रिकेट खेलता रहा, कभी-कभी मनोरंजन के तौर पर किताब देख लेता, कदाचित उसे विश्वास था कि अब की भी मेरी बाजी ले जाएगी। अक्सर जाकर यशवंत को दिक करता, किताब बन्द कर देता, कहता, क्यों प्राण दे रहे हो? सिविल-सर्विस कोई मुक्ति तो नहीं हैं, जिसके लिए दुनिया से नाता तोड़ लिया जाए! यहाँ तक की यशवंत उसे आते देखता, तो किवाड़ें बन्द कर लेता।

आखिर परीक्षा का दिन आ पहुँचा, यशवंत ने सब-कुछ याद किया था, पर किसी प्रश्न का उत्तर सोचने लगता तो उसे मालूम होता मैंने जितना पढ़ा था, वह सब भूल गया। वह बहुत घबराया हुआ

था। रमेश पहले से कुछ सोचने का आदी न था, सोचता, जब परचा सामने आएगा, उस वक्त देखा जाएगा, वह आत्मविश्वास से फूला–फूला फिरता था।

परीक्षा का फल निकला तो सुस्त कछुआ तेज खरगोश से बाजी मार ले गया था।

अब रमेश की आँखें खुली पर वह हताश न हुआ, योग्य आदमी के लिए यश और धन की कमी नहीं, यह उसका विश्वास था, उसने कानून की परीक्षा की तैयारी शुरू की और यद्यपि उसने बहुत ज्यादा मेहनत न की, लेकिन अव्वल दरजे में पास हुआ, यशवंत ने उसको बधाई का तार भेजा। वह अब एक जिले का अफसर हो गया था।

3

दस साल गुजर गए। यशवंत दिलोजान से काम करता था और उसके अफसर उससे बहुत प्रसन्न थे, पर अफसर जितने प्रसन्न थे, मातहत उतने ही अप्रसन्न रहते थे। वह खुद बहुत जितनी मेहनत करता था, मातहतों से भी उतनी मेहनत लेना चाहता था। ऐसे आदमी बड़े कारगुजार समझे जाते हैं, यशवंत का कारगुजारी का

अफसरों पर सिक्का जमता जाता था। पाँच वर्षों में ही वह जिले का जज बना दिया गया।

रमेश इतना भाग्यशाली न था, वह जिस इजलास में वकालत करने जाता, वहीं असफल रहता, हाकिम को नियत समय पर आने में देर हो जाती तो खुद भी चल देता, और फिर बुलाने से भी न आता, कहता — अगर हाकिम वक्त की पाबंदी नही करता तो मैं क्या करूँ? मुझे क्या गरज पड़ी हैं कि घंटों उनके इजलास पर खड़ा राह देखा करूँ? बहस इतनी निर्भीकता से करता कि खुशामद के आदी हुक्काम की निगाहों में उसकी निर्भीकता गुस्ताखी मालूम होती, सहनशीलता उसे छू नहीं गई थी, हाकिम हो या दूसरे पक्ष का वकील, जो उसके मुँह लगता, उसकी खबर लेता था। यहाँ तक की वह जिला–जज ही से लड़ बैठा, फल यह हुआ कि उसकी सनद छीन ली गई, किन्तु मुवक्किलों के हृदय में उसका सम्मान ज्यों–का–त्यों रहा।

तब उसने आगरा–कॉलेज में शिक्षक का पद प्राप्त कर लिया, किन्तु यहाँ भी दुर्भाग्य ने साथ न छोड़ा, प्रिंसिपल से पहले ही दिन खटपट हो गई, प्रिंसिपल का सिद्धांत था कि विद्यार्थियों को राजनीति से अलग रहना चाहिए। वह अपने कॉलेज के किसी छात्र को राजनीतिक जलसे में शरीक न होने देते, रमेश पहले ही दिन से इस आज्ञा का खुल्लमखुल्ला विरोध करने लगा। उसका

कथन था कि अगर किसी को राजनीतिक जलसों में शामिल होना चाहिए तो विद्यार्थी को, यह भी उसकी शिक्षा का एक अंग हैं। अन्य देशों में छात्रों ने युगान्तर उपस्थित कर दिया हैं तो इस देश में क्यों उनकी जबान बन्द की जाती हैं? इसका फल यह हुआ कि साल खत्म होने के पहले ही रमेश को इस्तीफा देना पड़ा, किन्तु विद्यार्थियों पर दबाव तिल भर भी कम न हुआ।

इस भाँति कुछ तो अपने स्वभाव और कुछ परिस्थितियों ने रमेश को मार–मारकर हाकिम बना दिया। पहले मुवक्किलों का पक्ष लेकर अदालत से लड़ा, फिर छात्रों का पक्ष लेकर प्रिंसिपल से रार मोल ली, और अब प्रजा का पक्ष लेकर सरकार को चुनौती दी। वह स्वभाव से ही निर्भीक, आदर्शवादी, सत्यभक्त तथा आत्माभिमानी था। ऐसे प्राणी के लिए प्रजा सेवक बनने के सिवा और उपाय ही क्या था? समाचार–पत्रों में वर्तमान परिस्थिति पर उसके लेख निकलने लगे, उसकी आलोचनाएँ इतनी स्पष्ट, इतनी व्यापक और इतनी मार्मिक होती थी कि शीध्र ही उसकी कीर्ति फैल गई, लोग मान गए कि इस क्षेत्र में एक नई शक्ति का उदय हुआ हैं। अधिकारी लोग उसके लेख पढ़कर तिलमिला उठते थे, उसका निशाना ठीक बैठता था कि उससे बच कर निकलना असंभव था। अतिशयोक्तियाँ तो उनके सिरों पर से ही सनसमाती हुई निकल जाती थी, उसना वे दूर से तमाशा देख

सकते थे, अभिज्ञताओं की वे उपेक्षा कर सकते थे, ये सब शस्त्र उनके पास पहुँचते ही न थ, रास्ते में ही गिर पड़ते थे, पर रमेश के निशाने सिरों पर बैठते और अधिकारियों में हलचल और हाहाकर मचा देते थे।

देश की राजनीतिक स्थिति चिन्ताजनक हो रही थी, यशवंत अपने पुराने मित्र के लेखों कर पढ़–पढ़कर काँप उठते थे, भय होता, कहीं वह कानून के पंजे में न आ जाए, बार–बार उसे संयत रहने की ताकीद करते, बार–बार मिन्नतें करते कि जरा अपनी कलम को और नरम कर दो, जान–बूझकर क्यों विषधर कानून के मुँह में उंगली डालते हो? लेकिन रमेश को नेतृत्व का नशा चढा हुआ था, वह इन पत्रों का जवाब तक न देता था।

पाँचवें साल यशवंत बदलकर आगरे दी जिला–जज हो गया।

4

देश की राजनीतिक दशा चिन्ताजनक हो रही थी। खुफिया पुलिस ने एक तूफान खड़ा कर दिया था, उसकी कपोल–कल्पित कथाएँ सुन–सुनकर हुक्कामों की रूह फना हो रही थी, कहीं अखबारों का मुँह बन्द किया जाता था, कहीं प्रजा के नेताओं की, खुफिया पुलिस

ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए हुक्कामों के कुछ तरह कान भरे कि उन्हें हर एक स्वतंत्र विचार रखने वाला आदमी खूनी और कातिल नजर आता था।

रमेश यह अन्धेर देखकर चुप बैठने वाला मनुष्य न था, ज्यों–ज्यों अधिकारियों की निरंकुशता बढ़ती जाती थी, त्यों–त्यों उसका जोश भी बढ़ता था, रोज कहीं–न–कहीं व्याख्यान देता और उसके प्रायः सभी व्याख्यान विद्रोहात्मक भावों से भरे होते थे, स्पष्ट और खरी बातें कहना ही विद्रोह हैं। अगर किसी का राजनीतिक भाषण विद्रोहात्मक नहीं माना गया तो समझ लो, उसने अपने आंतरिक भावों को गुप्त रखा हैं, उसके दिल में जो कुछ हैं, उसे जबान पर लाने का साहस उसमें नहीं हैं। रमेश ने मनोभावों को गुप्त रखना सीखा ही न था, प्रजा का नेता बनकर जेल जाने और फाँसी से डरना क्या! जो आफत आनी हो, आवे। वह सब कुछ सहने के को तैयार बैठा था, अधिकारियों की आँखों में भी वही सबसे ज्यादा गड़ा हुआ था।

एक दिन यशवंत ने रमेश को अपने यहाँ बुला भेजा, रमेश के जी में तो आया कि कह दें तुम्हें आते क्या शर्म आती हैं? आखिर हो तो गुलाम ही, लेकिन फिर कुछ सोचकर कहला भेजा, कल शाम को आऊँगा, दूसरे दिन वह ठीक 6 बजे यशवंत के बंगले में जा पहुँचा। उसने किसी से इसका जिक्र न किया। कुछ तो ख्याल

था कि लोग कहेंगे, मैं अफसरों की खुशामद करता हूँ और कुछ यह कि शायद इससे यशवंत को कोई हानि पहुँचे।

वह यशवंत के बंगले पर पहुँचा तो चिराग जल चुके थे, यशवंत ने आकर उसे गले से लगा लिया। आधी रात तक दोनों मित्रों में खूब बातें होती रही। यशवंत ने इतने में नौकरी के जो अनुभव प्राप्त किए थे, सब बयान किए। रमेश को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि यशवंत के राजनीतिक विचार कितने विषयों में मेरे विचारों से भी ज्यादा स्वतंत्र हैं। उसका यह ख्याल बिल्कुल गलत निकला कि वह बिल्कुल बदल गया होगा, वफादारी के राग अलापता होगा।

रमेश ने कहा — भले आदमी, जब इतने जले हुए हो तो छोड़ क्यों नही देते नौकरी? और कुछ न सही, अपनी आत्मा की रक्षा तो कर सकोंगे!

यशवंत — मेरी चिंता पीछे करना, इस समय अपनी चिंता करो, मैंने तुम्हें सावधान करने को बुलाया हैं, इस वक्त सरकार की नजर में तुम बेतरह खटक रहे हो। मुझे भय हैं कि तुम कहीं पकड़े न जाओ।

रमेश — इसके लिए तो तैयार बैठा हूँ।

यशवंत — आखिर आग में कूदने से लाभ ही क्या?

रमेश — हानि–लाभ देखना मेरा काम नहीं, मेरा काम तो अपने कर्त्तव्य का पालन करना हैं।

यशवंत — हठी तो तुम सदा के हो, मगर मौका नाजुक हैं। संभले रहना ही अच्छा हैं। अगर मैं देखता कि जनता में वास्तविक जागृति हैं तो तुमसे पहले मैदान में आता। पर जब देखता हूँ कि अपने ही मरे स्वर्ग देखना हैं तो आगे कदम रखने की हिम्मत नहीं पड़ती।

दोनों दोस्तों ने देर तक बातें की। कॉलेज के दिन याद आए। सहपाठियों के लिए कॉलेज की स्मृतियाँ मनोरंजन और हास्य का अविरल स्रोत हुआ करती हैं। अध्यापकों पर आलोचना हुई, कौन–कौन साथी क्या कर रहा हैं, इसकी चर्चा हुई। बिल्कुल यह मालूम होता था कि दोनों अब भी कॉलेज के छात्र हैं। गम्भीरता नाम को भी न थी।

रात ज्यादा हो गई। भोजन करते–करते एक बज गया। यशवंत ने कहा — अब कहाँ जाओगे, यहीं सो रहो और बातें हो। तुम तो कभी आते भी नहीं?

रमेश तो रमते योगी थे ही। खाना खाकर बात करते–करते सो गए। नींद खुली तो 9 बज गए थे। यशवंत सामने खड़ा मुस्करा रहा था।

इसी रात को आगरे में भयंकर डाका पड़ गया।

5

रमेश दस बजे घर पहुँचे तो देखा, पुलिस ने उसका मकान घेर रखा हैं। इन्हें देखते ही एक अफसर ने एक वारंट दिखाया , तुरन्त घर की तलाशी होने लगी। मालूम नहीं, क्योंकर रमेश के मेज की दराज में एक पिस्तौल निकल आया। फिर क्या था, हाथों में हथकड़ी पड़ गई। अब किसे उनके डाके में शरीक होने से इनकार किया हो सकता था? और भी कितने आदमियों पर आफत आई, सभी प्रमुख नेता चुन लिए गए, मुकदमा चलने लगा।

औरों की बात को ईश्वर जाने, पर रमेश निरपराध था। इसका उसके पास ऐसा प्रबल प्रमाण था, जिसकी सत्यता से किसी को इनकार न हो सकता था। पर क्या वह इस प्रमाण का उपयोग कर सकता था?

रमेश ने सोचा, यशवंत स्वयं मेरे वकील द्वारा सफाई के गवाहों में अपना नाम लिखाने का प्रस्ताव करेगा। मुझे निर्दोष जानते हुए वह कभी मुझे जेल न जाने देगा। वह इतना हृदय-शून्य नहीं हैं। लेकिन दिन गुजरते जाते थे और यशवंत की ओर से इस

प्रकार का कोई प्रस्ताव न होता था। और रमेश खुद संकोच–वश उसका नाम लिखाते हुए डरते थे। न–जाने इसमें उसे क्या बाधा हो, अपनी रक्षा के लिए वह उसे संकट में डालना चाहते थे।

यशवंत हृदय–शून्य न थे, लेकिन कर्म–शून्य अवश्य थे। उन्हें अपने परम मित्र को निर्दोष मारे जाते देखकर दुख होता था। कभी–कभी रो पड़ते थे, पर इतना साहस न होता था कि सफाई देकर उसे छुटा लें। न जाने अफसरों को क्या ख्याल हो! कहीं यह न समझने लगे कि मैं भी षड्यंत्रकारियों से सहानुभूति रखता हूँ। मेरा भी उनके साथ कुछ सम्पर्क हैं। यह मेरे हिन्दुस्तानी होने का दंड है! जानकर जहर निगलना पड़ रहा हैं। पुलिस ने अफसरों पर इतना आतंक जमा दिया कि चाहे मेरी शहादत से रमेश छूट भी जाए खुल्लमखुल्ला मुझ पर अविश्वास न किया जाए, पर दिलों से यह संदेह क्योंकर दूर होगा कि मैंने केवल एक स्वदेश–बन्धु को छुड़ाने के लिए झूठी गवाही दी? और बन्धु भी कौन? जिस पर राज–विद्रोह का अभियोग हैं!

इसी सोच–विचार में एक महीना गुजर गया। उधर मजिस्ट्रेट ने यह मुकदमा यशवंत ही के इजलास में भेज दिया। डाके में कई खून हो गए थे। और मजिस्ट्रेट को उतनी कड़ी सजाएँ देने का अधिकार न था जितनी उसके विचार में दी जानी चाहिए थी।

6

यशवंत अब बड़े संकट में पड़ा। उसने छुट्टी लेनी चाही, लेकिन मंजूर न हुई। सिविल सर्जन अंग्रेज था। इस वजह से उसकी सनद लेने की हिम्मत न पड़ी। बला सिर पर आ पड़ी थी और उससे बचने का उपाय न सूझता था।

भाग्य की कुटिल क्रीड़ा देखिए, साथ खेले और साथ पढ़े हुए दो मित्र एक-दूसरे के सम्मुख खड़े थे। केवल एक कठहरे का अन्तर था, पर एक की जान दूसरे की मुट्ठी में थी। दोनों की आँखें कभी चार न होती। दोनों सिर नीचा किए रहते थे। यद्यपि यशवंत न्याय के पद पर था और रमेश मुलजिम, लेकिन यथार्थ में दशा इसके प्रतिकूल थी। यशवंत की आत्मा लज्जा, ग्लानि और मानसिक पीड़ा से तड़पती थी और रमेश का मुख निर्दोषिता के प्रकाश से चमकता रहता था।

दोनों मित्रों में कितना अन्तर था। एक उदार था, दूसरा कितना स्वार्थी! रमेश चाहता तो भरी अदालत में उस रात का बात कह देता, लेकिन यशवंत जानता था, रमेश फाँसी से बचने के लिए भी उस प्रमाण का आश्रय न लेगा, जिसे मैं गुप्त रखना चाहता हूँ।

जब तक मुकदमे की पेशियाँ होती रहीं, तब तक यशवंत को असह्य मर्म–वेदना होती रही, उसकी आत्मा और स्वार्थ में नित्य संग्राम होता रहता था। पर फैसले के दिन तो उसकी वही दशा हो रही थी, जो किसी खून के अपराधी की हो। इजलास पर जाने की हिम्मत न पड़ती थी। वह तीन बजे कचहरी पहुँचा, मुलजिम अपना भाग्य–निर्णय सुनने को तैयार खड़े थे। रमेश भी आज रोज से ज्यादा उदास था। उसके जीवन–संग्राम में वह अवसर आ गया था, जब उसका सिर तलवार की धार के नीचे होगा। अब तक भय सूक्ष्म रूप में था, आज उसने स्थूल रूप धारण कर लिया था।

यशवंत ने दृढ स्वर में फैसला सुनाया। जब उसके मुख से ये शब्द निकले कि रमेशचन्द्र को 7 वर्ष का कठिन कारावास तो उसका गला रुँध गया। उसने तजवीज मेज पर रख दी, कुर्सी पर बैठकर पसीना पोंछने के बहाने आँखों में उमड़े हुए आँसुओं के पोंछा। इसके आगे तजवीज उससे न पढ़ी गई।

रमेश जेल से निकलकर पक्का क्रांतिकारी बन गया। जेल की अंधेरी कोठरी में दिन-भर के कठिन परिश्रम के बाद वह दोनों के उपकार और सुधार के मनसूबे बाँधा करता था। सोचता, मनुष्य क्यों पाप करता हैं? इसलिए न कि संसार में इतनी विषमता हैं? कोई तो विशाल भवनों में रहता हैं और किसी को पेड़ की छाँह भी मयस्सर नहीं। कोई रेशम और रत्नों से मढ़ा हुआ हैं, किसी को फटा वस्त्र भी नहीं। ऐसे न्याय-विहीन संसार में यदि चोरी, हत्या और अधर्म हैं तो किसका दोष हैं? वह एक ऐसी समिति खोलने का स्वप्न देखा करता, जिसका काम संसार से इस विषमता को मिटा देना हो। संसार सबके लिए है और उसमें सबको सुख भोगने का समान अधिकार हैं। न डाका, डाका हैं न चोरी, चोरी। धनी अगर अपना धन खुशी से नहीं बाँट देता तो उसकी इच्छा के विरुद्ध बाँट लेने में क्या पाप! धनी उसे पाप कहता हैं तो कहे, उसका बनाया हुआ कानून दंड देना चाहता हैं तो दे। हमारी अदालत अलग होगी, उसके सामने वे सभी मनुष्य अपराधी होगें जिसके पास जरूरत से ज्यादा सुख-भोग की सामग्रियाँ हैं। हम भी उन्हें दंड देंगे। हम भी उनसे कड़ी मेहनत लेंगे। जेल से निकलते ही उसने इस सामाजिक क्रांति की घोषणा कर दी। गुप्त सभाएँ बनने लगी। शस्त्र जमा किए जाने लगे और थोड़े ही दिनों में डाकों का बाजार गरम हो गया। पुलिस ने

उसका पता लगाना शुरू किया। उधर क्रांतिकारियों ने पुलिस पर भी हाथ साफ करना शुरू किया। उनकी शक्ति दिन–दिन बढ़ने लगी। काम इतनी चतुराई से होता था कि किसी को अपराधी का कुछ सुराग न मिलता। रमेश कहीं गरीबों के लिए दवाखाने खोलता, कहीं बैंक। डाके के रुपयों से उसने इलाके खरीदना शुरू किया जहाँ कोई इलाका नीलाम होता वह खरीद लेता। थोड़े ही दिनों में उसके अधीन एक बड़ी जायदाद हो गई। इसका नफा गरीबों के उपकार में खर्च होता था। तुर्रा यह कि सभी जानते थे, यह रमेश की करामात हैं, पर किसी की मुँह खोलने की हिम्मत न होती थी। सभ्य–समाज की दृष्टि में रमेश से ज्यादा घृणित और कोई प्राणी संसार में न था। लोग उसका नाम सुनकर कानों पर हाथ रख लेते थे। शायद उसे प्यासों मरता देखकर कोई एक बूंद पानी भी उसके मुँह में न डालता लेकिन किसी की मजाल न थी कि उस पर आक्षेप न कर सके।

इस तरह कई साल गुजर गए। सरकार ने डाकुओं का पता लगाने के लिए बड़े–बड़े इनाम रखे। यूरोप से गुप्त पुलिस के सिद्धहस्त आदमियों को बुलाकर इस काम पर नियुक्त किया। लेकिन गजब के डकैत थे, जिनकी हिकमत के आगे किसी की कुछ न चलती थी।

पर रमेश खुद अपने सिद्धांतों का पालन न सका। ज्यों–ज्यों दिन गुजरते थे, उसे अनुभव होता था कि मेरे अनुयायियों में असंतोष बढ़ता जाता हैं। उनमें भी जो ज्यादा चतुर और साहसी थे, वे दूसरों पर रौब जमाते और लूट के माल में बराबर हिस्सा न देते थे। यहाँ तक कि रमेश से कुछ लोग जलने लगे। वह राजसी ठाट से रहता था। लोग कहते उसे हमारी कमाई को यों उड़ाने का क्या अधिकार हैं? नतीजा यह हुआ कि आपस में फूट पड़ गई।

रात का वक्त था। काली घटा छाई हुई थी। रमेश ने एक युवक को अभियान पर जाने के लिए कहा तो वह युवक मुकर गया। युवक — आप बार–बार मुझी को क्यों चुनते हैं? हिस्सा लेने वाले तो सभी हैं, मैं ही क्यों बार–बार अपनी जान जोखिम में डालूँ?

रमेश ने दृढता से कहा — इसका निश्चय करना मेरा काम हैं कि कौन कहाँ भेजा जाए। तुम्हारा काम केवल मेरी आज्ञा का पालन हैं।

युवक — अगर मुझसे काम ज्यादा लिया जाता हैं तो हिस्सा क्यों नही ज्यादा दिया जाता?

रमेश ने उसकी त्योरियाँ देखी और चुपके से पिस्तौल हाथ में लेकर बोले — इसका फैसला वहाँ से आने के बाद होगा।

युवक — मैं जाने से पहले इसका फैसला करना चाहता हूँ।

रमेश ने इसका जवाब न दिया। वह पिस्तौल से उसका काम तमाम कर देना ही चाहते थे कि युवक खिड़की से नीचे कूद पड़ा और भागा। कूदने–फाँदने में उसका जोड़ न था, चलती रेलगाड़ी से फाँद पड़ना उसके बाएँ हाथ का खेल था।

वह वहाँ से सीधा गुप्त पुलिस के प्रधान के पास पहुँचा।

8

यशवंत ने भी पेंशन लेकर वकालत शुरू कर दी। न्याय–विभाग के सभी लोगों से उसकी मित्रता था। उनकी वकालत बहुत जल्द चमक उठी। यशवंत के पास लाखों रुपए थे। उन्हें पेंशन भी बहुत मिलती थी। वह चाहते तो घर बैठे आनन्द से अपनी उम्र के बाकी दिन काट देते। देश और जाति की कुछ सेवा करना भी उनके लिए मुश्किल न था। ऐसे ही पुरुषों से निस्वार्थ सेवा की आशा की जा सकती हैं पर यशवंत ने अपनी सारी उम्र रुपए

कमाने में गुजारी थी और वह अब कोई ऐसा काम न कर सकते थे, जिसका फल रुपयों की सूरत में न मिले।

यों तो सारा सभ्य-समाज रमेश से घृणा करता था, लेकिन यशवंत सबसे बढ़ा हुआ था। कहता, अगर कभी रमेश पर मुकदमा चलेगा तो मैं बिना फीस लिए सरकार की तरफ से पैरवी करूँगा। खुल्लमखुल्ला रमेश पर छींटे उड़ाया करता — यह आदमी नहीं शैतान हैं, राक्षस हैं। ऐसे आदमी का तो मुँह न देखना चाहिए! उफ! इसके हाथों कितने भले घरों का सर्वनाश हो गया। कितने भले आदमियों के प्राण गए, कितनी स्त्रियाँ विधवा हो गई, कितने बालक अनाथ हो गए। आदमी नहीं, पिशाच हैं। मेरा बस चले तो इस गोली मार दूँ, जीता चुनवा दूँ।

9

सारे शहर में शोर मचा हुआ था। रमेश बाबू पकड़े गए! बात सच्ची थी, रमेश चुपचाप पकड़ा गया था। उसी युवक ने, जो रमेश के सामने कूदकर भागा था, पुलिस के प्रधान से सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दिया था। अपहरण और हत्या का कैसा रोमांचकारी, कैसा पैशाचिक, कैसा पापपूर्ण वृत्तांत था।

भद्र समुदाय बगले बजाता था। सेठों के घरों में घी के चिराग जलते थे। उनके सिर पर एक नंगी तलवार लटकती रहती थी, आज वह हट गई। अब वे मीठी नींद सो सकते थे।

अखबारों में रमेश के हथकंड़े छपने लगे। वे बातें जो अब तक मारे भय के किसी की जबान पर न आती थी, अब अखबारों में निकलने लगी। उन्हें पढ़कर पता चलता था कि रमेश ने कितना अंधेर मचा रखा था। कितने ही राजे और रईस उसे माहवार टैक्स दिया करते थे। उसका पुरजा पहुँचता , फलाँ तारीख को इतने रुपए भेज दो फिर किसकी मजाल थी कि उसका हुक्म टाल सके। वह जनता के हित के लिए जो काम करता, उसके लिए भी अमीरों से चन्दे लिए थे। रकम लिखना रमेश का काम था, अमीर को बिना कान–पूँछ हिलाए वह रकम दे देनी पड़ती थी।

लेकिन भद्र समुदाय जितना ही प्रसन्न था, जनता उतनी ही दुखी थी। अब कौन पुलिस वालों के अत्याचार से उनकी रक्षा करेगा। कौन सेठों के जुल्म से उन्हें बचाएगा, कौन उनके लड़कों के लिए कला–कौशल के मदरसे खोलेगा? वे किसके बल पर कूदेंगे? वे अब अनाथ थे, वही उनका अवलम्ब था। अब वे किसका मुँह ताकेंगे, किसको अपनी फरियाद सुनाएँगे?

पुलिस शहादतें जमा कर रही थी। सरकारी वकील जोरों से मुकदमा चलाने की तैयारियाँ कर रहा था लेकिन रमेश की ओर से कोई वकील न खड़ा होता था। जिले-भर में एक ही आदमी था, जो उसे कानून के पंजे से छुड़ा सकता था, वह था यशवंत! लेकिन यशवंत जिसके नाम से कानों पर उंगली रखता था, क्या उसकी वकालत करने को खड़ा होगा? असम्भव।

रात के 9 बजे थे। यशवंत के कमरे में एक स्त्री ने प्रवेश किया। यशवंत अखबार पढ़ रहा था। बोला — क्या चाहती हो?

स्त्री — अपने पति के लिए वकील।

यशवंत — तुम्हारा पति कौन हैं?

स्त्री — वह जो आपके साथ पढ़ता था, और जिस पर डाके का झूठा अभियोग चलाया जाने वाला हैं।

यशवंत ने चौककर पूछा — तुम रमेश की पत्नी हो?

स्त्री — हाँ।

यशवंत — मैं उसकी वकालत नहीं कर सकता।

स्त्री — आपको अख्तियार हैं, आप अपने जिले के आदमी हैं, और मेरे पति के मित्र रह चुके हैं, इसलिए सोचा था, क्यों बाहर वालों

को बुलाऊँ। मगर इलाहाबाद या कलकत्ते से ही किसी को बुलाऊँगी।

यशवंत — मेहनताना दे सकोगी?

स्त्री ने अभिमान के साथ कहा — बड़े-से-बड़े वकील का मेहनताना क्या होता हैं?

यशवंत — तीन हजार रुपए रोज।

स्त्री — बस! आप इस मुकदमें को ले लें, मैं आपको तीन हजार रुपए रोज दूँगी।

यशवंत — तीन हजार रुपए रोज!

स्त्री — हाँ, और यदि आपने उन्हें छुड़ा लिया तो पचास हजार रुपए आपको इनाम के तौर पर और दूँगी।

यशवंत के मुँह में पानी भर आया। अगर मुकदमा दो महीने भी चला तो कम-से-कम एक लाख सीधे हो जाएँगे, पुरस्कार ऊपर से, पूरे दो लाख की गोटी हैं। इतना धन तो जिन्दगी-भर में भी जमा न कर पाए थे। मगर दुनिया क्या कहेगी. अपनी आत्मा भी तो नहीं गवाही देती। ऐसे आदमी को कानून के पंजे से बचाना असंख्य प्राणियों की हत्या करना हैं लेकिन गोटी दो लाख की हैं। कुछ रमेश के फँस जाने से इस जत्थे का अन्त हुआ नहीं जाता।

उसके चेले-चापड़ तो रहेंगे ही। शायद वे अब और भी उपद्रव मचावें। फिर मैं दो लाख की गोटी क्यों जाने दूँ! लेकिन मुझे कहीं मुँह दिखाने को जगह न रहेगी, न सही, जिसका जी चाहे खुश हो जिसका जी चाहे नाराज, ये दो लाख तो नहीं छोड़े जाते। कुछ मैं किसी का गला तो दबाता नहीं, चोरी तो करता नहीं? अपराधियों की रक्षा करना मेरा काम ही हैं।

सहसा स्त्री ने पूछा — आप जवाब देते हैं।

यशवंत — मैं कल जवाब दूँगा, जरा सोच लूँ?'

स्त्री — नहीं, मुझे इतनी फुरसत नहीं हैं। अगर आपको कुछ उलझन हो तो साफ-साफ कह दीजिएगा, मैं और प्रबन्ध करूँ।'

यशवंत को और विचार करने का अवसर न मिला। जल्दी का फैसला स्वार्थ ही की ओर झुकता हैं, यहाँ हानि की सम्भावना नहीं रहती।

यशवंत — आप कुछ रुपए पेशगी के दे सकती हैं?

स्त्री — रुपयों की मुझसे बार-बार चर्चा न कीजिए। उनकी जान के सामने रुपयों की हस्ती क्या हैं? आप जितनी रकम चाहें, मुझसे ले लें। आप चाहे उन्हें छुड़ा न सके, लेकिन सरकार के दाँत खट्टे जरूर कर दें।

यशवंत — खैर, मैं ही वकील हो जाऊँगा। कुछ पुरानी दोस्ती का निर्वाह भी तो करना चाहिए।

पुलिस ने एड़ी–चोटी को जोर लगाया। सैंकड़ों शहादतें पेश कीं, मुखबिर ने तो पूरी गाथा ही सुना दी। लेकिन यशवंत ने कुछ ऐसी दलीलें की, शहादतों को कुछ इस तरह झूठा सिद्ध किया और मुखबिर की कुछ ऐसी खबर ली कि रमेश बेदाग छूट गए। उनपर कोई अपराध न सिद्ध हो सका। यशवंत जैस संयत और विचारशील वकील का उनके पक्ष में खड़े हो जाना ही इसका प्रणाम था कि सरकार ने गलती की।

सन्ध्या का समय था। रमेश के द्वार पर शामियाना तना हुआ था। गरीबों को भोजन कराया जा रहा था, मित्रों की दावत हो रही थी। यह रमेश के छूटने का उत्सव था, यशवंत को चारों ओर से धन्यवाद मिल रहे थे। रमेश को बधाइयाँ दी जा रही थी। यशवंत बार–बार रमेश से बोलना चाहता था लेकिन रमेश उनकी ओर से मुँह फेर लेते थे। अब तक उन दोनों में एक बात भी न हुई थी।

आखिर यशवंत ने एक बार झुँझलाकर कहा — तुम तो मुझसे इस तरह ऐंठे हुए हो, मानो मैंने तुम्हारे साथ कोई बुराई की हैं।

रमेश — और आप क्या समझते हैं कि मेरे साथ भलाई की हैं? पहले आपने मेरे इस लोक का सर्वनाश किया था। अबकी परलोक का किया। पहले न्याय किया होता तो मेरी जिन्दगी सुधर जाती और अब जेल जाने देते तो आकबत बन जाती।

यशवंत — यह तो न कहोगे कि इस मामले में कितने साहस से काम लेना पड़ा।

रमेश — आपने साहस से काम नहीं लिया, स्वार्थ से काम लिया। आप अपने स्वार्थ के भक्त हैं, मैं तो आपको 'भाड़े का टट्टू' समझता हूँ। मैंने अपने जीवन का बहुत दुरुपयोग किया, लेकिन उसे आपके जीवन से बदलने को किसी दशा में तैयार नहीं हूँ। आप मुझसे धन्यवाद की आशा न रखें।

बाबाजी का भोग

रामधन अहीर के द्वार पर एक साधु आकर बोला — बच्चा, तेरा कल्याण हो, कुछ साधु पर श्रद्धा कर।

रामधन ने जाकर स्त्री से कहा — साधु द्वार पर आए हैं, उन्हें कुछ दे दे।

स्त्री बरतन माँज रही थी, और इस घोर चिन्ता में में मग्न थी कि आज भोजन में क्या बनेगा, घर में अनाज का एक दाना भी न था। चैत का महीना था, किन्तु यहाँ दोपहर ही को अन्धकार छा गया था, उपज सारी–की–सारी खलिहान से उठ गई, आधी महाजन ने ले ली, आधी जमींदार के प्यादों ने वसूल की, भूसा बेचा तो बैल के व्यापारी से गला छूटा, बस थोड़ी–सी गाँठ अपने हिस्से में आई, उसी को पीट–पीटकर एक मन–भर दाना निकाला था, किसी तरह चैत का महीना पार हुआ, अब आगे क्या होगा, क्या बैल खाएँगे, क्या घर के प्राणी खाएँगे, यह तो ईश्वर ही जाने! पर द्वार पर साधु आ गया हैं, उसे निराश कैसे लौटाएँ, अपने दिल में क्या कहेगा।

स्त्री ने कहा — क्या दे दूँ कुछ तो रहा नहीं?

रामधन — जा, देख तो मटके में, कुछ आटा–वाटा मिल जाए तो ले आ।

स्त्री ने कहा — मटके झाड़–पोंछकर तो कल ही चूल्हा जला था, क्या उसमें बरकत होगी?

रामधन — तो मुझसे तो यह न कहा जाएगा कि बाबा घर में कुछ नहीं हैं, किसी के घर से माँग ला।

स्त्री — जिससे लिया उसे देने की नौबत नहीं आई, अब और किस मुँह से माँगूँ?

रामधन — देवताओं के लिए कुछ अँगोवा निकाला हैं न वही ला, दे आऊँ!

स्त्री — देवताओं की पूजा कहाँ से होगी?

रामधन — देवता माँगने तो नहीं आते? समाई होगी करना, न समाई हो न करना।

स्त्री — अरे, तो कुछ अंगौवा भी पंसेरी–दो–पंसेरी हैं? बहुत होगा तो आध सेर, इसके बाद क्या फिर कोई साधु न आएगा, उसे तो जवाब देना ही पड़ेगा।

रामधन — यह बला तो टलेगी, फिर देखी जाएगी।

स्त्री झुँझला उठी और एक छोटी-सी हाँड़ी उठा लाई, जिसमें मुश्किल से आध सेर आटा था, वह गेहूँ का आटा बड़े यत्न से देवताओं के लिए रखा हुआ था, रामधन कुछ देर खड़ा सोचता रहा, तब आटा एक कटोरे में रखकर बाहर आया और साधु की झोली में डाल दिया।

2

महात्मा ने कहा — बच्चा अब तो साधु आज यहीं रमेंगे, कुछ थोड़ी-सी दाल दे तो साधु का भोग लग जाए।

रामधन ने फिर आकर स्त्री से कहा। संयोग से दाल घर में थी, रामधन ने दाल, नमक, उपले जुटा दिए, फिर कुएँ से पानी खींच लाया, साधु ने बड़ी विधि से रोटियाँ बनाई, दाल पकाई और आलू झोली में से निकालकर भुरता बनाया, जब सब सामग्री तैयार हो गई तो रामधन से बोले — बच्चा, भगवान के भोग के लिए कौड़ी-भर घी चाहिए, रसोई पवित्र न होगी तो भोग कैसे लगेगा?

रामधन — बाबाजी, घी तो घर में न होगा।

साधु — बच्चा, भगवान का दिया तेरे पास बहुत हैं, ऐसी बात न कह।

रामधन — महाराज, मेरे गाय-भैंस कुछ नहीं हैं, घी कहाँ से होगा?'

साधु — बच्चा, भगवान के भंडार में सब कुछ हैं जाकर मालकिन से कहो तो?

रामधन ने जाकर स्त्री से कहा — घी माँगते हैं, माँगने को भीख, पर घी के बिना कौर नहीं धँसता!

स्त्री — तो इसी दाल में से थोड़ी लेकर बनिये के यहाँ से ला दो, जब सब कुछ किया हैं तो इतने के लिए उन्हें क्यों नाराज करते हो?

घी आ गया, साधुजी ने ठाकुरजी की पिंड़ी निकाली, घंटी बजाई और भोग लगाने बैठे, खूब तनकर खाया, फिर पेट पर हाथ फेरते हुए द्वार पर लेट गए। थाली, बटली और करछी रामधन घर में माँजने के लिए उठा ले गया।

उस रात रामधन के घर चूल्हा नहीं जला, खाली दाल पकाकर ही पी ली!

रामधन लेटा तो सोच रहा था — मुझसे तो यही अच्छे!

विनोद

विद्यालयों में विनोद की जितनी लीलाएँ होती रहती हैं, वे यदि एकत्र की जा सकें तो मनोरंजन की बड़ी उत्तम सामग्री हाथ आए, यहाँ अधिकांश छात्र जीवन की चिन्ताओं से मुक्त रहते हैं, कितने ही तो परीक्षाओं की चिन्ता से भी बरी रहते हैं। वहाँ मटरगश्ती करने, गप्पें उड़ाने और हँसी–मजाक करने के सिवा उन्हें कोई और काम नहीं रहता! उनका क्रियाशील उत्साह कभी विद्यालय के नाट्य–मंच पर प्रकट होता हैं, कभी विशेष उत्सवों के अवसर पर, उनका शेष समय अपने मित्रों के मनोरंजन में व्यतीत होता हैं। वहाँ, जहाँ किसी महाशय ने किसी विभाग में विशेष उत्सव दिखाया (क्रिकेट, हाकी, फुटबाल को छोड़कर) और वह विनोद का लक्ष्य बना, अगर महाशय बड़े धर्मनिष्ठ हैं, सन्ध्या और हवन में तत्पर रहते हैं तो, बिना नागा नमाजें अदा करते हैं तो उन्हें हास्य का लक्ष्य बनने में देर नहीं लगती। अगर किसी को पुस्तकों से प्रेम हैं, कोई परीक्षा के लिए बड़े उत्साह से तैयारियाँ करता हैं तो समझ लीजिए कि उसकी मिट्टी खराब करने के लिए कहीं–न–कहीं अवश्य षडयन्त्र रचा जा रहा हैं, सारांश यह हैं कि

निर्द्वन्द्व, निरीह, खुले–दिल आदमियों के लिए कोई बाधा नहीं, उनसे किसी को शिकायत नहीं होती, लेकिन मुल्लाओं और पंडितों की बड़ी दुर्गति होती हैं।

महाशय चक्रधर इलाहाबाद के एक सुविख्यात विद्यालय के छात्र हैं। एम. ए. क्लास में दर्शन का अध्ययन करते हैं, किन्तु जैसा विद्वज्जनों का स्वभाव होता हैं, हँसी–दिल्लगी से कोसों दूर भागते थे, जातीयता के गर्व में चूर रहते थे। हिन्दू आचार–विचार की सरलता और पवित्रता पर मुग्ध थे, उन्हें नेकटाई, कॉलर, वास्कट आदि वस्त्रों से घृणा थी, सीधा–सादा कुरता और चमरौंधे जूते पहनते, प्रातःकाल नियमित रूप से सन्ध्या–हवन करके मस्तक पर चन्दन का तिलक भी लगाया करते थे, ब्रह्मचर्य के सिद्धान्तों के अनुसार सिर घुटाते थे, किन्तु लम्बी चोटी रख छोड़ी थी, उनका कथन था कि चोटी रखने में प्राचीन आर्य–ऋषियों ने अपनी सर्वज्ञता का प्रचंड परिचय दिया हैं, चोटी के द्वारा शरीर की अनावश्यक उष्णता बाहर निकल जाती हैं और विद्युत–प्रवाह शरीर में प्रविष्ट होता हैं इतना ही नहीं, शिखा को ऋषियों ने हिन्दू–जातीयता का मुख्य लक्षण घोषित किया हैं, भोजन सदैव अपने हाथ से बनाते थे और वह भी बहुत सुपाच्य और सूक्ष्म, उनकी धारणा थी कि आहार का मनुष्य के नैतिक विकास पर विशेष प्रभाव पड़ता हैं, विजातीय वस्तुओं को हेय समझते थे, कभी

क्रिकेट या हॉकी के पास न फटकते थे, पाश्चात्य सभ्यता के शत्रु ही थे, यहाँ तक की अंग्रेजी लिखने-बोलने में भी संकोच होता था, जिसका परिणाम यह था कि उनकी अंग्रेजी कमजोर थी और उसमें सीधा-सा पत्र भी मुश्किल से लिख सकते थे अगर उनको कोई व्यसन था तो पान खाने का। इसके गुणों का समर्थन और वैद्यक ग्रंथों से उसकी परिपुष्टि करते थे।

विद्यालय के खिलाड़ियों को इतना धैर्य कहाँ कि ऐसा शिकार देखें और उस पर निशाना न मारें। आपस में कानाफूसी होने लगी कि इस जंगली को सीधे रास्ते पर लाना चाहिए, कैसा पंडित बना फिरता है! किसी को कुछ समझता ही नहीं, अपने सिवा सभी को जातीय-भाव से हीन समझता है। इसकी ऐसी मिट्टी पलीद करो कि सारा पाखंड भूल जाए।

संयोग से अवसर भी अच्छा मिल गया। कॉलेज खुलने के थोड़े ही दिनों बाद एक ऐंग्लो इंडियन रमणी दर्शन की क्लास में सम्मिलित हुई। वह कवि-कल्पित सभी उपमाओं की आगार थी, सेब का-सा खिला हुआ रंग, सुकोमल शरीर, सहास्य छवि और उस पर मनोहर वेष-भूषा! छात्रों को विनोद का मसाला हाथ लगा। लोग इतिहास और भाषा को छोड़कर दर्शन की कक्षा में प्रविष्ट होने लगे।

सभी आँखें उसी चन्द्रमुखी की ओर चकोर की नाईं लगी रहती थीं। सब उसकी कृपा–कटाक्ष के अभिलाषी थे। सभी उसकी मधुर वाणी सुनने के लिए लालायित थे, किन्तु प्रकृति को जैसा नियम है, आचारशील हृदयों पर प्रेम का जादू जब चल जाता है, तब वारा–न्यारा करके ही छोड़ता हैं, और लोग तो आँखें ही सेंकने में मग्न रहा करते, किन्तु पंडित चक्रधर प्रेम–वेदना से विकल और सत्य अनुराग से उन्मत्त हो उठे, रमणी के मुख की ओर ताकते भी झेंपते थे कि कहीं किसी की निगाह पड़ जाए तो इस तिलक और शिखा पर फबतियाँ उड़ने लगें, जब अवसर पाते तो अत्यन्त विनम्र, सचेष्ट, आतुर और अनुरक्त नेत्रों से देख लेते। किन्तु आँखें चुराए हुए और सिर झुकाए हुए कि कहीं अपना परदा न खुल जाए। दीवार से कानों को खबर न हो जाए।

मगर दाई से पेट कहाँ छिप सकता है, ताड़ने वाले ताड गए। यारों ने पंडितजी की मोहब्बत की निगाह पहचान ही ली, मुँहमाँगी मुराद पाई, बाँछें खिल गई। दो महाशयों ने उनसे घनिष्ठता बढ़ानी शुरु कर दी। मैत्री को संघटित करने लगे, जब समझ कि इन पर हमारा विश्वास जम गया, शिकार पर वार करने का अवसर आ गया तो एक रोज दोनों ने बैठकर लेडियों की शैली में पंडितजी के नाम एक पत्र लिखा –

'माई डियर चक्रधर, बहुत दिनों से विचार कर रही हूँ कि आपको पत्र लिखूँ, मगर इस भय से कि बिना परिचय से ऐसा साहस अनुचित होगा। अब तक जब्त करती रही, पर अब नहीं रहा जाता। आपने मुझ पर न-जाने क्या जादू कर दिया है कि एक क्षण के लिए भी आपकी सूरत आँखों से नहीं उतरती। आपकी सौम्य मूर्ति, प्रतिभाशाली मस्तक और साधारण पहनावा सदैव आँखों के सामने फिरा करता है। मुझे स्वभावतः आडम्बर से घृणा है, पर यहाँ सभी को कृत्रिमता के रंग में डूबा पाती हूँ। जिसे देखिए, मेरे प्रेम में अनुरक्त है, पर मैं उन प्रेमियों के मनोभावों से परिचित हूँ। वे सब-के-सब लम्पट और शोहदे है। केवल आप एक ऐसे सज्जन है जिनके हृदय में मुझे सद्भाव और सदनुराग की झलक दीख पड़ती है। बार-बार उत्कंठा होती है कि आपसे कुछ बातें करती, मगर आप मुझसे इतनी दूर बैठते है कि वार्तालाप का सुअवसर नहीं प्राप्त होता। ईश्वर के लिए कल से आप मेरे समीप ही बैठा कीजिए, और कुछ न सही तो आपके समीप्य ही से मेरी आत्मा तृप्त होती रहेगी। इस पत्र को पढ़कर फाड़ डालिएगा और इसका उत्तर पुस्तकालय की तीसरी अलमारी के नीचे रख दीजिएगा।'

आपकी

लूसी।'

यह पत्र डाक में डाल दिया गया और लोग उत्सुक नेत्रों से देखने लगे कि इसका क्या असर होता है। उन्हें बहुत लम्बा इन्तजार न करना पड़ा। दूसरे दिन कॉलेज में आकर पंडितजी को लूसी के सन्निकट बैठने की फ्रिक हुई। वे दोनो महाशय जिन्होंने उनसे आत्मीयता बढ़ा रखी थी, लूसी के निकट बैठा करते थे। एक का नाम था नईम और दूसरे का गिरिधरसहाय। चक्रधर ने आकर गिरिधर से कहा — यार, तुम मेरी जगह जा बैठो, मुझे यहाँ बैठने दो।

नईम — 'क्यों? आपको हसद होता है क्या?

चक्रधर — हसद-वसद की बात नहीं, वहाँ प्रोफेसर साहब का लेक्चर सुनाई नहीं देता, मैं कानों का जरा भारी हूँ?'

गिरिधर — पहले तो आपको यह बीमारी न थी, यह रोग कब से उत्पन्न हो गया?'

नईम — और फिर प्रोफेसर साहब तो यहाँ और भी दूर हो जाएँगे जी?'

चक्रधर — दूर हो जाएँगे तो क्या, यहाँ अच्छा रहेगा, मुझे कभी-कभी झपकियाँ आ जाती है, सामने डर लगा रहता है कि कहीं उनकी निगाह न पड़ जाए।'

गिरिधर — आपको तो झपकियाँ ही आती है न, यहाँ तो वही घंटा सोने का है पूरी एक नींद लेता हूँ, फिर?

नईम — तुम भी अजीब आदमी हो, जब दोस्त होकर एक बात कहते है तो उसके मानने में तुम्हें क्या एतराज? चुपके से दूसरी जगह जा बैठो।

गिरिधर — अच्छी बात है, छोड़े देता हूँ, किन्तु समझ लीजिएगा कि यह कोई साधारण त्याग नहीं है। मैं अपने ऊपर बहुत जब्र कर रहा हूँ, कोई दूसरा लाख रुपए भी देता तो जगह न छोड़ता।'

नईम — अरे भाई, यह जन्नत है जन्नत! लेकिन दोस्त की खातिर भी तो कोई चीज है?

चक्रधर ने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा और वहाँ जाकर बैठ गए। थोड़ी देर के बाद लूसी भी अपनी जगह पर बैठी। अब पंडितजी बार-बार उसकी ओर सापेक्ष भाव से ताकते रहे कि वह कुछ बातचीत करे और वह प्रोफेसर का भाषण सुनने में तन्मय हो रही है। आपने समझा शायद लज्जावश नहीं बोलती, लज्जाशीलता रमणियों का सबसे चतुर भूषण भी तो है। उसके डेस्क की ओर मुँह फेर-फेरकर ताकने लगे। उसे इनके पान चबाने से शायद घृणा होती थी। बार-बार मुँह दूसरी ओर फेर लेती, किन्तु

पंडितजी इतने सूक्ष्मदर्शी, इतने कुशाग्रबुद्धि न थे। इतने प्रसन्न थे, मानो सातवें आसमान पर है, सबको उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, मानो प्रत्यक्ष रूप से कह रहे थे कि तुम्हें यह सौभाग्य कहाँ नसीब? मुझ–सा प्रतापी और कौन होगा?

दिन तो गुजरा, सन्ध्या समय पंडितजी नईम के कमरे में आकर बोले — यार, एक लेटर–राइटर (पत्र–व्यवहार–शिक्षक) की आवश्यकता है, किसका लेटर–राइटर सबसे अच्छा है?

नईम ने गिरिधर की ओर कनखियों से देखकर पूछा — लेटर–राईटर लेकर क्या कीजिएगा?

गिरिधर — फजूल है, नईम खुद किस लेटर–राइटर से कम है।'

चक्रधर ने कुछ सकुचाते हुए कहा — अच्छा, कोई प्रेम–पत्र लिखना हो तो कैसे आरम्भ किया जाए?

नईम — डार्लिंग लिखते है, और जो बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध हो तो डियर डार्लिंग लिख सकते है।

चक्रधर — और समाप्त कैसे करना चाहिए?

नईम — 'पूरा हाल बताइए तो खत ही न लिख दें?'

चक्रधर — 'नहीं, आप इतना बता दीजिए, मैं लिख लूँगा।'

नईम — 'अगर बहुत प्यारा माशूक हो तो लिखिए — Your dying lover, और अगर साधारण प्रेम हो तो लिख सकते है –Yours for ever'

चक्रधर — कुछ शुभकामना के भाव भी तो रहने चाहिए न?'

नईम — बेशक, बिना आदाब के भी कोई खत होता है और वह भी मुहब्बत का। माशूक के लिए आदाब लिखने में फकीरों की तरह दुआएँ देनी चाहिए। आप लिख सकते है — God give you everlasting grace and beautu, या May you remain happy in love and lovely.

चक्रधर — कागज पर लिख दो।

गिरिधर ने एक पत्र के टुकड़े पर कई वाक्य लिख दिए। जब भोजन करके लौटे तो चक्रधर ने अपनी किवाड़ें बन्द कर ली और खूब बना–बनाकर पत्र लिखा। अक्षर बिगड़–बिगड़ जाते थे, इसलिए कई बार लिखना पड़ा। कहीं पिछले पहर जाकर पत्र समाप्त हुआ, तब आपने उसे इत्र में बसाया। दूसरे दिन पुस्तकालय में निर्दिष्ट स्थान पर रख दिया। यार लोग तो ताक में थे ही, पत्र उड़ा लाए और खूब मजे ले–लेकर पढ़ा।

2

तीन दिन के बाद चक्रधर को फिर एक पत्र मिला, लिखा था —

'माई डियर चक्रधर,

तुम्हारी प्रेम–पत्री मिली, बार–बार पढ़ा, आँखों से लगाया, चुम्बन लिया, कितनी मनोहर महक थी। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि हमारा प्रेम भी ऐसा ही सुरभिसिंचित रहे। आपको शिकायत है कि मैं आपसे बातें क्यों नहीं करती। प्रिय, प्रेम बातों से नहीं, हृदय से होता है। जब मैं तुम्हारी ओर से मुँह फेर लेती हूँ तो मेरे दिल पर क्या गुजरती है, यह मैं ही जानती हूँ। एक ज्वाला है जो अन्दर ही अन्दर मुझे भस्म कर रही है। आपको मालूम नहीं, कितनी आँखें हमारी ओर एकटक ताकती रहती है। जरा भी सन्देह हुआ, और चिर–वियोग की विपत्ति हमारे सिर पड़ी। इसीलिए हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। तुमसे एक याचना करती हूँ, क्षमा करना, मैं तुम्हें अंग्रेजी पोशाक में देखने को बहुत उत्कंठित हो रही हूँ। यों तो तुम चाहे जो वस्त्र धारण करो, मेरी आँखों के तारे हो, विशेषकर तुम्हारी सादा कुरता मुझे बहुत ही सुन्दर मालूम होता है। फिर भी बाल्यावस्था से जिन वस्त्रों को देखते चली आई हूँ, उन पर विशेष अनुराग होना स्वाभाविक है,

मुझ आशा है, हम निराश न करोगे। मैंने तुम्हारे लिए एक वास्कट बनाई है! उसे मेरे प्रेम का तुच्छ उपहार समझकर स्वीकार करो।

तुम्हारी,

लूसी।'

पत्र के साथ एक छोटा-सा पैकेट था। वास्कट उसी में बन्द था। यारों ने आपस में चन्दा करके बड़ी उदारता से उसका मूलधन एकत्र किया था। उस पर सेंट-परसेंट से भी अधिक लाभ होने की सम्भावना थी। पंडित चक्रधर उक्त उपहार और पत्र को पाकर इतने प्रसन्न हुए, जिसका ठिकाना नहीं। उसे लेकर सारे छात्रावास में चक्कर लगा आए। मित्रवृन्द देखते थे, उसकी काट-छाँट की सराहना करते थे। तारीफों के पुल बाँधते थे, उसके मूल्य का अतिशयोक्तिपूर्ण अनुमान करते थे। कोई कहता था — यह सीधे पेरिस से सिलकर आया है, इस मुल्क में ऐसे कारीगर कहाँ और कौन। अगर कोई इस टक्कर का वास्कट सिलवा दे तो 100 रुपए की बाजी बदता हूँ? पर वास्तव में उसके कपड़े का रंग इतना गहरा था कि कोई सुरुचि रखने वाला मनुष्य उसे पहनना पसन्द न करता। चक्रधर को लोगों ने पूर्व मुख करके खड़ा किया और फिर शुभ मुहूर्त में वह वास्कट उन्हें

पहनाया। आप फूले न समाते थे, इधर से जाकर कहता — भाई, तुम तो बिल्कुल पहचाने नहीं जाते, चोला ही बदल गया, अपने वक्त के यूसुफ हो, यार क्यों न हो, तभी तो यह ठाट है, मुखड़ा दमकने लगा, मानो तपाया हुआ कुंदन है। अजी, एक वास्कट पर यह जीवन है, कहीं पूरा अंग्रेजी सूट पहन लो तो न जाने क्या गजब हो जाए? सारी मिसें लोट-पोट हो जाएँ, गला छुटाना मुश्किल हो जाएगा।

आखिर सलाह हुई कि उनके लिए एक अंग्रेजी सूट बनवाना चाहिए। इस कला के विशेषज्ञ उनके साथ गुट बाँधकर सूट बनवाने चले। पंडितजी घर के सम्पन्न थे। एक अंग्रेजी दुकान से बहुमूल्य सूट लिया गया, रात को इसी उत्सव में गाना-बजाना भी हुआ। दूसरे दिन, दस बजे, लोगों ने पंडितजी को सूट पहनाया। आप अपनी उदासीनता दिखाने के लिए बोले — मुझे तो बिल्कुल अच्छा नहीं लगता, आप लोगों को न जाने क्यों ये कपड़े अच्छे लगते है।'

नईम — जरा आइने में सूरत देखिए तो मालूम हो, खासे शाहजादे मालूम पड़ते हो, तुम्हारे हुस्न पर मुझे तो रस्क है। खुदा ने तो आपको ऐसी सूरत दी और उसे आप मीठे कपड़ों में छिपाए हुए थे।

चक्रधर को नेकटाई बाँधने का ज्ञान न था, बोले — भाई, इसे तो ठीक कर दो।

गिरिधरसहाय ने नेकटाई इतनी कसकर बाँधी कि पंडितजी को साँस लेना भी मुश्किल हो गया। बोले — यार बहुत तंग है।

नईम — इसका फैशन ही यह है, हम क्या करें, ढ़ीली टाई ऐब में दाखिल है।

चक्रधर — अजी, इसमें तो दम घुट रहा है।

नईम — और टाई का मंशा ही क्या है? इसीलिए तो बाँधी जाती है कि आदमी बहुत जोर-जोर से साँस न ले सके।

चक्रधर के प्राण संकट में थे। आँखें सजल हो रही थी, चेहरा सुर्ख हो गया था, मगर टाई को ढीला करने की हिम्मत न पड़ती थीं। सजधज से आप कॉलेज चले तो मित्रों का एक गुट सम्मान का भाव दिखाता आपके पीछे-पीछे चला, मानो बरातियों का समूह है। एक-दूसरे की तरफ ताकता और रूमाल मुँह में देकर हँसता था मगर पंडितजी को क्या खबर? वह तो अपनी धुन में मस्त थे। अकड़-अकड़कर चलते हुए आकर क्लास में बैठ गए। थोड़ी देर बाद लूसी भी आई। पंडित का यह वेष देखा तो चकित हो गई। उसके अधरों पर मुस्कान की एक अपूर्व रेखा अंकित हो गई। पंडितजी ने समझा, यह उनके उल्लास का चिह्न है। बार-बार

मुस्कराकर उसकी ओर ताकने और रहस्यपूर्ण भाव से देखने लगे। किन्तु वह लेशमात्र भी ध्यान न देती थी।

पंडितजी की जीवनचर्या, धर्मोत्साह और जातीय प्रेम में बडे वेग से परिवर्तन होने लगे। सबसे पहले शिखा पर छुरा फिरा, अंग्रेजी फैशन के बाल कटवाए गए। लोगों ने कहा — यह क्या महाशय? आप तो फरमाते थे कि शिखा विद्युतप्रवाह शरीर में प्रवेश करता है। अब वह किस मार्ग से जाएगा?'

पंडितजी ने दार्शनिक भाव से मुस्कराकर कहा — मैं तुम लोगों को उल्लू बनाता था, क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि यह सब पाखंड है? मुझे अन्तःकरण से इस पर विश्वास ही कब था, आप लोगों को चकमा देना चाहता था।

नईम — वल्लाह, आप एक ही झाँसेबाज निकले, हम लोग आपको बछिया के ताऊ ही समझते थे मगर आप तो आठों गाँठ कुम्मैत निकले।

शिखा के साथ–साथ सन्ध्या और हवन की भी इतिश्री हो गई, हवन–कुंड कमरे में चारपाई के नीचे फेंक दिया गया, कुछ दिनों के बाद सिगरेट के जले हुए टुकड़े रखने का काम देने लगा। जिस आसन पर बैठकर हवन किया करते थे, वह पायदान बना। अब प्रतिदिन साबुन रगड़ते, बालों में कंघी करते और सिगार

पीते। यार उन्हें चंग पर चढ़ाए रहते थे। यह प्रस्ताव हुआ कि इस चंडूल से वास्कट के रुपए वसूल करने चाहिए मय सूद के, फिर क्या था, लूसी का एक पत्र आ गया — आपके रूपान्तर से मुझे जितना आनन्द हुआ उसे शब्दों में नहीं प्रकट कर सकती! आपसे मुझे ऐसी ही आशा थी, अब आप इस योग्य हो गए है कि कोई यूरोपियन लेडी आपके सहवास में अपना अपमान नहीं समझ सकती। अतः आपसे प्रार्थना केवल यही है कि मुझे अपने अनन्त और अविरल प्रेम का कोई चिह्न प्रदान कीजिए, जिसे मैं सदैव अपने पास रखूँ, मैं कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं, केवल प्रेमोपहार चाहती हूँ।

चक्रधर ने मित्रों से पूछा — अपनी पत्नी के लिए कुछ सौगात भेजना चाहता हूँ, क्या भेजना उचित होगा?

नईम — 'जनाब, यह तो उसकी तालीम और मजाक पर मनुहसर है। अगर वह नए फैशन की लेडी है, तो कोई बेशकीमत, सुबुक वजहदार चीज या ऐसी ही कई चीजें भेजिए, मसलन रूमाल, रिस्टवाच, लवेंडर की शीशी, फैंसी कंघी, आईना, लॉकेट, ब्रुस वगैरह, और खुदा न खास्ता अगर गँवारिन है तो किसी दूसरे आदमी से पूछिए। मुझे गँवारिनों के मजाक का इल्म नहीं।

चक्रधर — जनाब, पढ़ी हुई है, बड़े ऊँचे खानदान ही है।

नईम — तो फिर मेरी सलाह पर अमल कीजिए।

संध्या समय मित्रगण चक्रधर के साथ बाजार गए और ढेर चीजें बटोर लाए। सब–की–सब ऊँचे दरजे की, कोई 75 रुपए हुए, मगर पंडितजी ने उफ् तक न की, हँसते हुए रुपए निकाले। लौटते वक्त नईम ने कहा — अफसोस, हमें ऐसी खुशमजाक बीवी न मिली!

गिरिधर — जहर खा लो, जहर!

नईम — भाई दोस्ती के माने तो यही है कि एक बार हमें भी उनकी जियारत हो, क्यों पंडितजी, आप इसमें कोई हरज समझते है?

नईम — 'खैर, खुदा उन्हें जल्द ही दुनिया से नजात दे।

रातोंरात पैकेट बना और प्रातःकाल पंडितजी उसे ले जाकर लाइब्रेरी में रख आए। लाइब्रेरी सबेरे ही खुल जाती थी, कोई अड़चन न हुई। उन्होंने इधर मुँह फेरा, उधर यारों ने माल उड़ाया और चम्पत हुए। नईम के कमरे में चन्दे के हिसाब से हिस्सा–बाँट हुआ। किसी ने घड़ी पाई, किसी ने रूमाल, किसी ने कुछ। एक रुपए के बदले पाँच–पाँच हाथ लगे।

3

प्रेमीजन का धैर्य अपार होता है, निराशा पर निराशा होती है, पर धैर्य हाथ से नहीं छूटता। पंडितजी बेचारे विपुल धन व्यय करने के पश्चात भी प्रेमिका से सम्भाषण का सौभाग्य न प्राप्त कर सके। प्रेमिका भी विचित्र थी, जो पत्रों में मिसरी की डली घोल देती, मगर प्रत्यक्ष दृष्टिपात भी न करती थी। बेचारे बहुत चाहते थे कि स्वयं ही अग्रसर हो, पर हिम्मत न पड़ती थी। विकट समस्या थी, किन्तु इससे भी वह निराश न थे। हवन–संध्या तो छोड़ ही बैठे थे, नए फैशन के बाल कट ही चुके थे, अब बहुधा अंग्रेजी ही बोलते, यद्यपि वह अशुद्ध और भ्रष्ट होती थी। रात को अंग्रेजी मुहावरों का किताब लेकर पाठ की भाँति रटते। नीचे के दरजों में बेचारे ने इतना श्रम से कभी पाठ न याद किया थी, उन्हीं रटे हुए मुहावरों को मौके–बे–मौके काम में लाते, दो–चार बार लूसी के सामने भी अंग्रेजी बघारने लगे, जिससे उनकी योग्यता का परदा और भी खुल गया।

किन्तु दुष्टों को अब भी उनपर दया न आई। एक दिन चक्रधर के पास लूसी का पत्र पहुँचा, जिसमें बहुत अनुनय–विनय के बाद यह इच्छा प्रकट की गई थी कि मैं भी आपको अंग्रेजी खेल

खेलते देखना चाहती हूँ। मैंने आपको कभी फुटबॉल या हॉकी खेलते नहीं देखा। अंग्रेजी जेंटिलमैन के लिए हॉकी, क्रिकेट आदि में सिद्धहस्त होना परमावश्वक है! मुझे आशा है, आप मेरी वह तुच्छ याचना स्वीकार करेंगे। अंग्रेजी वेष–भूषा में, बोलचाल में, आचार–विचार में, कॉलेज में अब आपका कोई प्रतियोगी नहीं रहा। मैं चाहती हूँ कि खेल के मैदान में भी आपको सर्वश्रेष्ठता सिद्ध हो जाए। कदाचित कभी आपको मेरे साथ लेडियों के सम्मुख खेलना पड़े, तो उस समय आपकी और आपसे ज्यादा मेरी हेठी होगी, इसलिए टेनिस अवश्य खेलिए।

दस बजे पंडितजी को वह पत्र मिला, दोपहर को ज्यों ही विश्राम की घंटी बजी कि आपने नईम से जाकर कहा — यार, जरा फुटबॉल निकाल दो।

नईम फुटबॉल के कप्तान भी थे, मुस्कराकर बोले — खैर तो है, इस दोपहर में फुटबॉल लेकर क्या कीजिएगा? आप तो कभी मैदान की तरफ झाँकते भी नहीं, आज इस जलती–बलती धूप में फुटबॉल खेलने की धुन क्यों सवार है?

चक्रधर — आपको इससे क्या मतलब, आप गेंद निकाल दीजिए, मैं गेंद में भी आप लोगों को नीचा दिखाऊँगा।

नईम — जनाब, कहीं चोट-चपेट आ जाएगी, मुफ्त में परेशान होइएगा। हमारे ही सिर मरहम-पट्टी को बोझ पड़ेगा, खुदा के लिए इस वक्त रहने दीजिए।

चक्रधर — आखिर चोट तो मुझे लगेगी आपका इससे क्या नुकसान होता है? जरा-सा गेंद निकाल देने में इतनी आपत्ति क्यों है?

नईम ने गेंद निकाल दी और पंडितजी उसी जलती हुई दोपहरी में अभ्यास करने लगे। बार-बार गिरते थे, बार-बार तालियाँ पड़ती थी, मगर वह अपनी धुन में ऐसे मस्त थे कि उसकी कुछ परवाह ही न थी। इसी बीच लूसी को आते देख लिया और भी फूल गए। बार-बार पैर चलाते थे, मगर निशाना खाली जाता था, पैर पड़ते भी थे तो गेंद पर कुछ असर न होता था और लोग आकर गेंद को एक ठोकर में आसमान तक पहुँचा देते तो आप कहते है, मैं जोर से मारूँ तो इससे भी ऊपर जाए, लेकिन फायदा क्या? लूसी दो-तीन मिनट तक खड़ी उनकी बौखलाहट पर हँसती रही। आखिर नईम से बोली — वेल नईम, इस पंडित को क्या हो गया है? रोज एक-न-एक स्वाँग भरा करता है, इसका दिमाग में खलल तो नहीं पड़ गया?

नईम — मालूम तो कुछ ऐसा ही होता है।

शाम को सब लोग छात्रावास में आए तो मित्रों ने जाकर पंडितजी को बधाई दी — यार, हो बड़े खुशनसीब, हम लोग फुटबाल को कॉलेज की चोटी तक पहुँचाते रहे, मगर किसी ने तारीफ न की। तुम्हारे खेल की सबने तारीफ की, खासकर लूसी ने। वह तो कहती थी, जिस ढंग से यह खेलते है, उस ढंग से मैंने बहुत कम हिन्दुस्तानियों को खेलते देखा है। मालूम होता है, ऑक्सफोर्ड का अभ्यस्त खिलाड़ी है।

चक्रधर — और भी कुछ बोली? क्या कहा, सच बताओ?

नईम — अजी, अब साफ–साफ ने कहलवाइए, मालूम होता है, आपने टट्टी की आड़ से शिकार खेला है। बड़े उस्ताद हो यार! हम लोग मुँह ताकते रहे और तुम मैदान मार ले गए, जभी आप रोज यह कलेवर बदला करते थे? अब भेद खुला, वाकई खुशनसीब हो।

चक्रधर — मैं उसी कायदे से गेंद में ठोकर मारता था, जैसे किताब में लिखा है।

नईम — तभी तो बाजी मार ले गए भाई! और नहीं क्या हम आपसे किसी बात में कम है! हाँ, तुम्हारी–जैसी सूरत कहाँ से लावें।

चक्रधर –'बहुत बनाओ नहीं, मैं ऐसा कहाँ का बड़ा रूपवान हूँ।

नईम — अजी यह नतीजे ही से जाहिर है, यहाँ साबुन और तेल लगाते-लगाते भौंरा हुआ जाता हूँ और कुछ असर नहीं होता। मगर आपका रंग बिना हल्दी-फिटकरी के ही चोखा है।

चक्रधर — कुछ मेरे कपड़े वगैरह की निस्बत तो नहीं कहती थी?

नईम — नहीं और तो कुछ नहीं कहा, हाँ इतना देखा कि जब तक खड़ी रही, आपकी ही तरफ उसकी टकटकी लगी हुई थी।

पंडितजी अकड़े जाते थे, हृदय फूला जाता था, जिन्होंने उनकी वह अनुपम छवि देखी, वे बहुत दिनों तक याद रखेंगे। मगर इस अतुल आनन्द का मूल्य उन्हें बहुत देना पड़ा, क्योंकि अब कॉलेज का सेशन समाप्त होने वाला था और मित्रों की पंडितजी के माथे एक बार दावत खाने की बड़ी अभिलाषा थी, प्रस्ताव होने की देर थी। तीसरे दिन उनके नाम लूसी का पत्र पहुँचा — 'वियोग के दुर्दिन आ रहे है, न-जाने आप कहाँ होंगे और मैं कहाँ हूँगी। मैं चाहती हूँ, इस अटल प्रेम की यादगार में एक दावत हो। अगर उसका व्यय आपके लिए असह्य हो तो मैं सम्पूर्ण भार लेने के लिए तैयार हूँ। इस दावत में मैं और मेरी सखियाँ-सहेलियाँ निमंत्रित होंगी। कॉलेज के छात्र और अध्यापकगण सम्मिलित होंगे। भोजन के उपरान्त हम अपने वियुक्त हृदय के भावों के

प्रकट करेंगे। काश, आपका धर्म, आपकी जीवन–प्रणाली और मेरे माता–पिता की निर्दयता बाधक न होती तो हमें संसार की कोई शक्ति जुदा नहीं करती।'

चक्रधर यह पत्र पाते ही बौखला उठे। मित्रों से कहा — भाई, चलते–चलते एक बार सहभोज तो हो जाए, फिर न जाने कौन कहाँ होगा, मिस लूसी को भी बुलाया जाए।

यद्यपि पंडितजी के पास इस समय रुपए न थे, घर वाले उसकी फिजूलखर्ची की कई बार शिकायत कर चुके थे, मगर पंडितजी का आत्माभिमान यह कब मानता कि प्रीतिभोज का भार लूसी पर रखा जाए। वह तो अपने प्राण तक उस पर वार चुके थे। न–जाने क्या–क्या बहाने बनाकर ससुराल से रुपए मँगवाए और बड़े समारोह से दावत की तैयारियाँ होने लगी। कार्ड छपवाए गए, भोजन परोसने वाले के लिए नई वरदियाँ बनवाई गईं। अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी दोनों ही प्रकार के व्यंजनों की व्यवस्था की गई। अंग्रेजी खाने के लिए रायल होटल से बातचीत की गई, इसमें बहुत सुविधा थी। यद्यपि चीजें बहुत महँगी थीं, लेकिन झंझट से नजात हो गई, अन्यथा सारा भार नईम और उसके दोस्त गिरिधर पर पड़ता। हिन्दुस्तानी भोजन के व्यवस्थापक गिरिधर हुए।

पूरे दो सप्ताह तक तैयारियाँ हुई थी। नईम और गिरिधर तो कॉलेज में केवल मनोरंजन के लिए थे, पढ़ना–पढ़ाना तो उनको था नहीं, आमोद–प्रमोद ही में समय व्यतीत किया करते थे। कवि–सम्मेलन की भी ठहरी, कविजनों के नाम बुलावे भेजे गए। सारांश यह कि बड़े पैमाने पर प्रीतिभोज का प्रबन्ध किया गया और भोज हुआ भी विराट। विद्यालय के नौकरों ने पूरियाँ बेचीं। विद्यालय के इतिहास में वह भोज चिरस्मरणीय रहेगा। मित्रों ने खूब बढ़–बढ़कर हाथ मारे। दो–तीन मिसें भी खींच बुलाई गईं। मिरजा नईम लूसी को घेर–घारकर ले ही आए। इसने भोजन को और भी रसमय बना दिया।

4

किन्तु शोक, महाशोक। इस भोज का परिणाम अभागे चक्रधर के लिए कल्याणकारी न हुआ। चलते–चलते लज्जित और अपमानित होना पड़ा था। मित्रों की तो दिल्लगी थी और उस बेचारे की जान पर बन रही थी। सोचे, अब तो विदा होते ही है, फिर मुलाकात हो या न हो, अब किस दिन के लिए सब्र करें? मन के प्रेमोद्‌गार को निकाल क्यों न लें, कलेजा चीरकर दिखा क्यों न दें,

और लोग तो दावत खाने में जुटे हुए थे, और वह मदनबाण–पीड़ित युवक बैठा सोच रहा था कि यह अभिलाषा क्योंकर पूरी हों? अब यह आत्मादमन क्यों? लज्जा क्यों? विरक्ति क्यों? गुप्त–रोदन क्यों? मौन–मुखापेक्षा क्यों? अन्तर्वेदना क्यों? बैठे–बैठे प्रेम को क्रियाशील बनाने के लिए मन में बल का संचार करते रहे, कभी देवताओं का स्मरण करते, कभी ईश्वर को अपनी भक्ति याद दिलाते, अवसर की ताक में इस भाँति बैठे थे, जैसे बगुला मेढक की ताक में बैठता है। भोज समाप्त हो गया, पान–इलायची बट चुकी थी, वियोग–वार्ता हो चुकी। मिस लूसी अपनी श्रवणमधुर वाणी से हृदयों में हाहाकार मचा चुकी, और भोजशाला से निकलकर बाइसिकिल पर बैठी। उधर कवि–सम्मेलन में इस तरह मिसरा पढ़ा गया —

कोई दीवाना बनाए, कोई दीवाना बने।

इधर चक्रधर चुपके से लूसी के पीछे हो लिए और साईकिल को भयंकर वेग से दौड़ाते हुए उसे आधे रास्ते में जा पकड़ा। वह इन्हें इस व्यग्रता से दौड़े आते देखकर सहम उठी कि कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई, बोली — वेल पंडितजी! क्या बात है? आप इतने बदहवास क्यों है? कुशल तो है?

चक्रधर का गला भर आया, कम्पित स्वर से बोलो — अब आपसे सदैव के लिए बिछुड़ ही जाऊँगा, यह कठिन विरह–पीड़ा कैसे सही सही जाएगी! मुझे तो शंका है, कहीं पागल न हो जाऊँ!

लूसी ने विस्मित होकर पूछा — आपकी मंशा क्या है? आप बीमार है क्या?'

चक्रधर — आह डियर डार्लिंग, तुम पूछती हो, बीमार हूँ? मैं मर रहा हूँ, प्राण निकल चुके है केवल प्रेमाभिलाषा का अवलम्बन है!

यह कहकर आपने उसका हाथ पकड़ना चाहा। वह उनका उन्माद देखकर भयभीत हो गई। क्रोध में आकर बोली — आप मुझे यहाँ रोककर मेरा अपमान कर रहे है, इसके लिए आपको पछताना पड़ेगा।

चक्रधर — लूसी, देखो चलते–चलते इतनी निष्ठुरता न करो। मैंने ये विरह के दिन किस तरह काटे है, सो मेरा दिल ही जानता है। मैं ही ऐसा बेहया हूँ कि अब तक जीता हूँ, दूसरा होता तो अब तक चल बसा होता, बस, केवल तुम्हारी सुधामयी पत्रिकाएँ ही मेरे जीवन का एकमात्र आधार थी।

लूसी — मेरी पत्रिकाएँ! कैसी? मैं आपको कब पत्र लिखे! आप कोई नशा तो नहीं खा आए है?

चक्रधर — डियर डार्लिंग, इतनी जल्द न भूल जाओ। इतनी निर्दयता न दिखाओ, तुम्हारे वे प्रेम–पत्र, जो तुमने मुझे लिखे है, मेरे जीवन की सबसे बड़ी सम्पति रहेंगे। तुम्हारे अनुरोध से मैंने यह वेष धारण किया, अपना संध्या–हवन छोड़ा, यह आचार–व्यवहार ग्रहण किया। देखो तो जरा, मेरे हृदय पर हाथ रखकर, कैसी धड़कन हो रही है, मालूम होता है, बाहर निकल पड़ेगा। तुम्हारा यह कुटिल हास्य मेरे प्राण ही लेकर छोड़ेगा, मेरी अभिलाषाओं...।

लूसी — तुम भंग तो नहीं खा गए हो या किसी ने तुम्हें चकमा तो नहीं दिया है? मैं तुमको प्रेम–पत्र लिखती! हः हः! जरा अपनी सूरत तो देखो, खासे बनैले सूअर मालूम होते हो।

किन्तु पंडितजी अभी तक यही समझ रहे थे कि वह मुझसे विनोद कर रही है। उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करके बोले — प्रिये, बहुत दिनों के बाद यह सुअवसर मिला है, अब न भागने पाओगी।

लूसी को अब क्रोध आ गया। उसने जोर से एक चाँटा उनके लगाया, और सिंहनी की भाँति गरजकर बोली — यू ब्लाड़ी! हट जा रास्ते से, नहीं तो, अभी पुलिस को बुलाती हूँ, रॉस्कल!

पंडितजी चाँटा खाकर चौंधिया गए। आँखों के सामने अंधेरा छा गया, मानसिक आघात पर वह शारीरिक वज्रपात! यह दुहरी विपत्ति! वह तो चाँटा मारकर हवा हो गई और यह वहीं जमीन

पर बैठकर इस सम्पूर्ण वृतान्त की मन–ही–मन आलोचना करने लगे। चाँटे ने बाहर की आँखें आँसुओं से भर दी थीं, पर अन्दर की आँखें खोल दी थीं। कहीं कॉलेज के लौंडों ने तो यह शरारत नहीं की? अवश्य यही बात है, आह! पाजियों ने बड़ा चकमा दिया! तभी सब–के–सब मुझे देख–देखकर हँसा करते थे! मैं भी कुछ कमअक्ल हूँ नहीं तो इनके हाथों टेसू क्यों बनता! बड़ा झाँसा दिया, उम्र–भर याद रहेगा, वहाँ से झल्लाए हुए आए और नईम से बोले — तुम बड़े दगाबाज हो, परले सिरे के धूर्त, पाजी उल्लू, गधे, शैतान!

नईम — आखिर कोई बात भी कहिए, या गालियाँ हो देते जाइएगा?

गिरिधर — क्या बात हुई, कहीं लूसी से आपने कुछ कहा तो नहीं?

चक्रधर — उसी के पास से आ रहा हूँ, चाँटा खाकर और मुँह में कालिख लगवाकर! तुम दोनों ने मिलकर मुझे खूब उल्लू बनाया, इसकी कसर न लूँ तो मेरा नाम नहीं। मैं नहीं जानता था कि तुम लोग मित्र बनकर मेरी गरदन पर छुरा चला रहे हो! अच्छा जो वह गुस्से में आकर पिस्तौल चला देती तो।'

नईम — अरे यार माशूकों की घातें निराली होती है!

चक्रधर — 'तुम्हारा सिर! माशूक चाँटे लगाया करते है, वे आँखों से तीर चलाते है, कटार मारते है, या हाथों से मुष्टि–प्रहार करते है?

गिरिधर — उससे आपने क्या कहा?

चक्रधर — कहा क्या अपनी बिरह व्यथा की गाथा सुनाता रहा, इस पर उसने ऐसा चाँटा रसीद किया कि कान भन्ना उठे, हाथ है उसके कि पत्थर!'

गिरिधर — गजब ही हो गया, आप है निरे चोंच! भले आदमी, इतनी मोटी बुद्धि है तुम्हारी! हम क्या जानते थे कि आप ऐसे छिछोरे है, नहीं तो मजाक ही क्यों करते। अब आपके साथ हम लोगों पर भी आफत आई। कहीं उसने प्रिंसिपल से शिकायत कर दी तो न इधर के हुए न उधर के, और जो कहीं अपने किसी अंग्रेज आशना से कहा तो जान के लाले पड़ जाएँगे। बड़े बेवकूफ हो यार, निरे चोंच, इतना भी नहीं समझे कि वह सब दिल्लगी थी, ऐसे बड़े खूबसूरत भी तो नहीं हो।

चक्रधर — दिल्लगी तुम्हारे लिए थी, मेरी तो मौत हो गई। चिड़िया जान से गई, लड़कों का खेल हुआ, अब चुपके से मेरे पाँच सौ रुपए लौटा दीजिए, नहीं तो गरदन ही तोड़ दूँगा!

नईम — रुपयों के बदले खिदमत चाहे ले लो, कहो तुम्हारी हजामत बना दें, जूते साफ कर दें, सिर सहला दें, बस, खाना देते जाना। कसम ले लो जो जिन्दगी–भर कहीं जाऊँ, या तरक्की के लिए कहूँ, माँ–बाप के सिर से तो बोझ टल जाएगा।

चक्रधर — मत जले पर नमक छिड़को, जी! आप–के–आप गए, मुझे ले डूबे। तुम्हारी तो अंग्रेजी अच्छी है, लोट–पोटकर निकल जाओगे, मैं तो पास भी न हूँगा। बदनाम हुआ, वह अलग। पाँच सौ की चपत भी पड़ी। यह दिल्लगी है कि गला काटना? खैर समझूँगा और चाहे मैं न समझूँ, पर ईश्वर जरूर समझेंगे।

नईम — गलती हुई भाई, मुझे अब खुद इसका अफसोस है।

गिरिधर — खैर, रोने–धोने का अभी बहुत मौका है, अब यह बतलाइए कि लूसी ने प्रिंसिपल से कह दिया तो क्या नतीजा होगी, तीनों आदमी निकाल दिए जाएँगे, नौकरी से भी हाथ धोना पड़ेगा! फिर?

चक्रधर — मैं तो प्रिंसिपल से तुम लोगों की सारी कलई खोल दूँगा।'

नईम — क्यों यार, दोस्त के यही माने है?

चक्रधर — जी हाँ, आप जैसे दोस्तों की यही सजा है।

उधर तो रात-भर मुशायरे का बाजार गरम रहा और इधर यह त्रिमूर्ति बैठी प्राण-रक्षा के उपाय सोच रही थी। प्रिंसिपल के कानों तक बात पहुँची और आफत आई। अंग्रेज वाली बात है, न जाने क्या कर बैठे। आखिर बहुत वाद-विवाद के पश्चात यह निश्चित हुआ कि नईम और गिरिधर प्रातःकाल मिस लूसी के बंगले पर जाएँ, उससे क्षमा-याचना करें, और इस अपमान के लिए वह जो प्रायश्चित कहे, उसे स्वीकार करें।

चक्रधर — मैं एक कौड़ी न दूँगा।

नईम — न देना भाई! हमारी जान तो है न।'

गिरिधर — जान लेकर वह चाटेगी, पहले रुपए की फिक्र कर लो! वह बिना तावान लिए न मानेगी।

नईम — भाई, चक्रधर, खुदा के लिए इस वक्त दिल न छोटा करो, नहीं तो हम तीनों की मिट्टी खराब होगी, जो कुछ हुआ उसे मुआफ करो, अब फिर ऐसी खता न होगी।

चक्रधर — ऊँह, यही न होगा कि निकाल दिया जाऊँगा, दुकान खोल लूँगा, तुम्हारी मिट्टी भी खराब होगी, इस शरारत का मजा चखोगे, ओह कैसा चकमा दिया।

बहुत खुशामद और चिरौरी के बाद देवता सीधे हुए। प्रातःकाल नईम लूसी के बंगले पर पहुँचे, वहाँ मालूम हुआ कि वह प्रिंसिपल के बंगले पर गई है। अब काटो तो बदन में लहू नहीं। या अली, तुम्हीं मुश्किल को आसान करने वाले हो, अब जान की खैर नहीं। प्रिंसिपल ने सुना तो कच्चा खा जाएगा, नमक तक न माँगेगा। इस कमबख़्त पंडित की बदौलत अजाब में जान फँसी। इस बेहूदे को सूझी क्या? चला नाजनीन से इश्क जताने! बनविलास की-सी तो आपकी सूरत है और खब्त यह कि यह माहरू मुझ पर रीझ गई। हमें भी अपने साथ डूबोये देता है, कहीं लूसी से रास्ते में मुलाकात हो गई तो शायद आरजू-मिन्नत करने से मान जाए, लेकिन जो वहाँ पहुँच चुकी है तो फिर कोई उम्मीद नहीं। वह फिर पैरगाड़ी पर बैठे और बेतहाशा प्रिंसिपल के बंगले की तरफ भागे। ऐसे तेज जा रहे थे, मानो पीछे मौत आ रही है, जरा-सी ठोकर लगती तो हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाती। पर शोक! कहीं लूसी का पता नहीं, आधा रास्ता निकल गया और लूसी की गर्द तक न नजर आई। नैराश्य ने गति को मन्द कर दिया, फिर हिम्मत करके चले। बंगले के द्वार पर भी मिल गई तो जान बच जाएगी। सहसा लूसी दिखाई दी। नईम ने पैरों को और तेज चलाना शुरू किया, वह प्रिंसिपल के बंगले पर पहुँच चुकी थी, एक सेकंड में वारा-न्यारा होता था, नाव डूबती थी या

पार जाती थी। हृदय उछल-उछलकर कंठ तक आ रहा था। जोर से पुकारा — मिस टरनर, हेलो मिस टरनर, जरा ठहर जाओ।

लूसी ने पीछे फिरकर देखा, नईम को पहचान गई और बोली — मुझसे पंडित की सिफारिश करने तो नहीं आए हो! मैं प्रिंसिपल से उसकी शिकायत करने जा रही हूँ।

नईम — तो पहले मुझे और गिरिधर — दोनों को गोली मार दो, फिर जाना।

लूसी — बेहया लोगों पर गोली का असर नहीं होता, उसने मुझे बहुत इंसल्ट किया है।

नईम — लूसी, तुम्हारे कसूरवार हमीं दोनों है, वह बेचारा पंडित तो हमारे हाथ का खिलौना था, सारी शरारत हम लोगों की थी, कसम तुम्हारे सिर की!

लूसी — You naughty boy!

नईम — हम दोनों उसे दिल-बहलाव का एक स्वाँग बनाए हुए थे, इसकी हमें जरा भी खबर न थी, कि वह तुम्हें छेड़ने लगेगा। हम तो समझते थे कि उससे इतनी हिम्मत ही नहीं है। खुदा के

लिए मुआफ करो, वरना हम तीनों का खून तुम्हारी गरदन पर होगा।

लूसी — खैर, तुम कहते हो तो प्रिंसिपल से न कहूँगी, लेकिन शर्त यह है कि पंडित मेरे सामने बीस मरतबा कान पकड़कर उठे–बैठे और मुझे कम–से–कम 200 रुपए तावान दे।

नईम — लूसी, इतनी बेरहमी न करो, यह समझो, उस गरीब के दिल पर क्या गुजर रही होगी, काश, अगर तुम इतनी हसीन न होती।

लूसी मुस्कराकर बोली — खुशामद करना कोई तुमसे सीख ले।

नईम — तो अब वापस चलो।

लूसी — मेरी दोनों शर्तें बातें मंजूर करते हो न?'

नईम — तुम्हारी दूसरी शर्त तो हम मिलकर पूरी कर देंगे, लेकिन पहली शर्त सख्त है, बेचारा जहर खाकर मर जाएगा। हाँ, उसके एवज में मैं पचास दफा कान पकड़कर उठ–बैठ सकता हूँ।

लूसी — तुम छंटे हुए शोहदे हो, तुम्हें शर्म कहाँ! मैं उसी को सजा देना चाहती हूँ, बदमाश, मेरा हाथ पकड़ना चाहता था।

नईम — जरा भी रहम न करोगी!

लूसी — नहीं, सौ बार नहीं।

नईम लूसी को साथ लाए। पंडित के सामने दोनों शर्तें रखी गई तो बेचारा बिलबिला उठा। लूसी के पैरों पर गिर पड़ा और सिसक–सिसककर रोने लगा। नईम और गिरिधर भी अपने कुकृत्य पर लज्जित हुए। अन्त में लूसी को दया आई और बोली — अच्छा, इन दोनों में से कोई एक शर्त मंजूर कर लो मैं माफ कर दूँगी।

लोगों को विश्वास था कि चक्रधर रुपए वाली शर्त स्वीकार करेंगे। लूसी के सामने वह कभी कान पकड़कर उठा–बैठी न करेगा, इसलिए जब चक्रधर ने कहा — 'मैं रुपए तो न दूँगा, हाँ, बीस की जगह चालीस बार उठा–बैठी कर लूँगा।' तो सब लोग चकित हो गए, नईम ने कहा — 'यार, क्यों हम लोगों को जलील करते हो? रुपए क्यों नहीं देते?'

चक्रधर — रुपए बहुत खर्च कर चुका, अब इस चुड़ैल के लिए कानी कौड़ी तो खर्च करूँगा नहीं, दो सौ बहुत होते है। इसने समझा होगा, चलकर मजे से दो सौ रुपए मार लाऊँगी। यह न होगा, अब तक रुपए खर्च करके अपनी हँसी कराई है, अब बिन खर्च किए हँसी कराऊँगा। मेरे पैरों मे दर्द हो बला से, सब लोग हँस बला से, पर इसकी मुट्ठी तो न गरम होगी।

यह कहकर चक्रधर ने कुरता उतार फेंका, धोती ऊपर चढ़ा ली और बरामदे से नीचे मैदान में उतरकर उठा–बैठी करने लगे। मुखमंडल क्रोध से तमतमाता हुआ था, पर वह बैठकें लगाए जाते थे, मालूम होता था, कोई पहलवान अपना करतब दिखा रहा है। पंडित ने अगर बुद्धिमत्ता का कभी परिचय दिया तो इसी अवसर पर। सब लोग खड़े थे, पर किसी के होठों पर हँसी न थी? सब लोग दिन नें कटे जाते थे। यहाँ तक कि लूसी को भी सिर उठाने का साहस न होता था, सिर गड़ाये बैठी थी, शायद उसे खेद हो रहा था कि मैंने नाहक यह दंड–योजना की।

बीस बार उठते–बैठते कितनी देर लगती है, पंडित ने खूब उच्च स्वर से गिन–गिनकर बीस की संख्या पूरी की और गर्व से सिर उठाए अपने कमरे में चले गए, लूसी ने उन्हें अपमानित करना चाहा था, उलटे उसी का अपमान हो गया।

इस दुर्घटना के पश्चात एक सप्ताह तक कॉलेज खुला रहा, किन्तु पंडितजी को किसी ने हँसते नहीं देखा। वह विमन और विरक्त भाव से अपने कमरे में बैठे रहते थे, लूसी का नाम ज़बान पर आते झल्ला पड़ते थे।

इस साल की परीक्षा में पंडितजी फेल हो गए, पर इस कॉलेज में फिर न आए, शायद अलीगढ़ चले गए।

〇〇〇